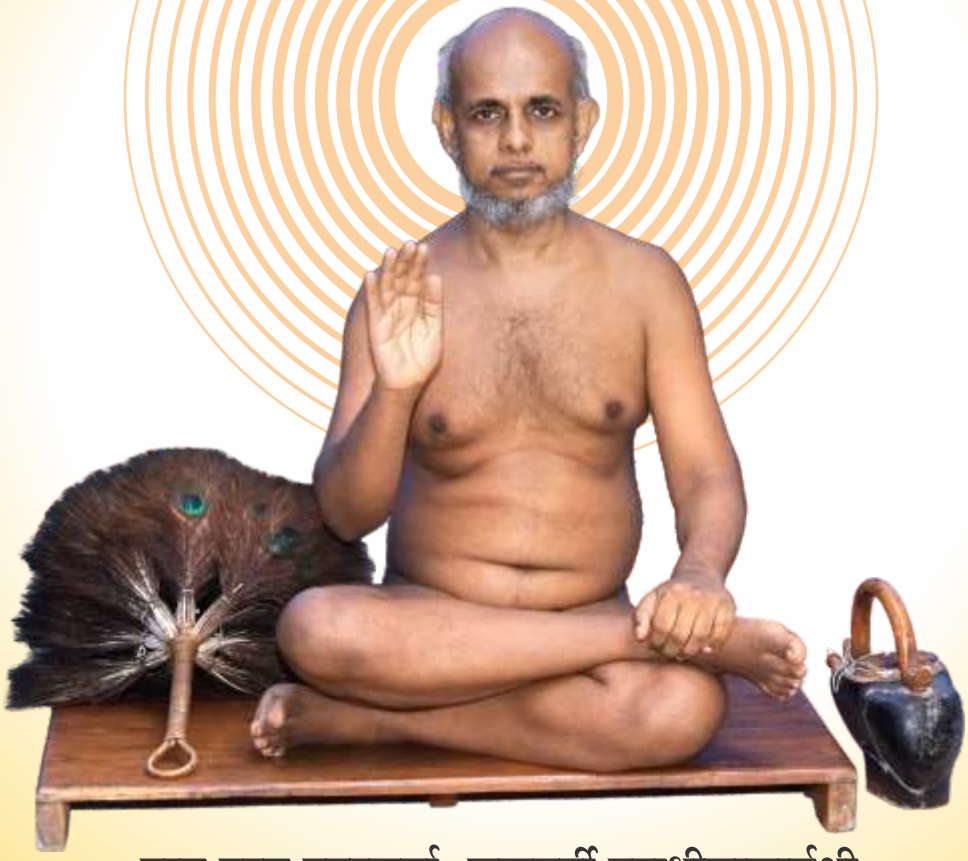

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

वाग्भटालंकार

ग्रन्थकर्त्ता : वाग्भट्ट जी

मुद्रक
व्यंकटेश मुद्रणालय मुम्बई [महाराष्ट्र]

(परम्परानायक)

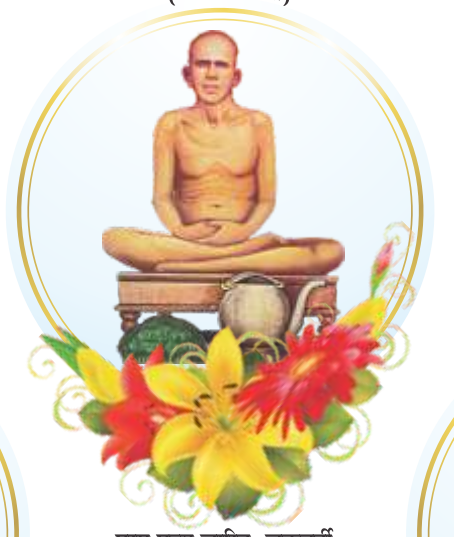

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

॥ श्रीः ॥

वाग्भटालङ्कारः।

फर्रुखनगरनिवासिराजवैद्यपण्डितमुरलीधरशर्मणाविरचितः

सान्वयसंस्कृतटीका-भाषाटीकोपेतः।

स च

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः।

पुनर्मुद्रणादिसर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाधीशने स्वाधीनरक्खाहै।

॥ श्रीः ॥

अथ वाग्भटालंकारस्य विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठ.
प्रथमपरिच्छेदः ।	
मंगलाचरण	१
प्रतिभालक्षण...	३
व्युत्पत्ति	४
अभ्यासलक्षण ...	५
छन्दःकारण ...	६
संक्षिप्तकाव्यनियम	११
यमकका उदाहरण	१५
श्लेषका उदाहरण	१६
चित्रका उदाहरण	१७
हारबंध चित्र...	१९
छत्रबंध चित्र...	२१
द्वितीयपरिच्छेदः ।	
अनर्थक	२७
श्रुतिकटुक	,,
अलक्षण	२९
स्वसंकेतप्रकृतार्थ	३०
अप्रसिद्ध	३१
असमत	३२
अथ वाक्यदोष	३४
खंडितदोष	३५
न्यस्तसक्थ	३६
असमित	३७
अपक्रम	३८
छन्दोभ्रष्ट	३९
रीतिभ्रष्ट	४०
यतिभ्रष्ट	४१
असंकिया	४२
दूषितवाक्य	४३
तृतीयपरिच्छेदः ।	
गुणाः	४७
औदार्य	४८
समता और कांति	४९
समताका उदाहरण	५०
कांतिका उदाहरण	५१
अर्थव्यक्ति	५२
प्रसन्नता	५३
समाधि	५४
श्लेष और ओजके लक्षण ...	५५
श्लेषका उदाहरण	५६
ओजका उदाहरण	५७
माधुर्य और सौकुमार्यके लक्षण	५८
माधुर्यका उदाहरण	५९
सौकुमार्यका उदाहरण ...	६०
अथ चतुर्थपरिच्छेदः ।	
अलंकारगणना	६३
पद्मबंधचित्रका उदाहरण ...	६४
षोडशदलपद्मबंधचित्रस्वरूप ...	६५

विषय.	पृष्ठ.
दशदलपद्मबंध	७२
भाभूत्रिकाबध...	,,
वक्रोक्ति	७३
प्रथम सभंगश्लेषवक्रोक्तिका उदाहरण	७४
अभंगश्लेषवक्रोक्तिका उदाहरण	७५
अनुप्रासलक्षण	७६
छेकानुप्रासका उदाहरण ...	७७
लाटानुप्रासके उदाहरण ...	७८
यमकलक्षण	८१
पादयमकके उदाहरण ...	८२
पदयमक	८९
अथार्थालंकाराः।	
स्वभावोक्ति	१०३
प्राकृतउदाहरण	१०५
उपमालक्षण	१०६
प्राकृत	११०
उपमालक्षण भाषा	१११
अन्योन्योपमा	,,
अनन्वयालकार	११२
अनन्वयलक्षण भाषा	११३
समुच्चयोपमालकार	,,
मालोपमा	११४
मालोपमालक्षण भाषा... ...	११५
रूपक	११९
प्रतिवस्तूपमा...	१२५
भ्रांति	१२७
उदाहरण प्राकृत	,,
आक्षेप	१२८
अक्षेपका उदाहरण	१२९

विषय.	पृष्ठ.
संशय व निश्चय	१३१
संशयका उदाहरण	१३२
दृष्टान्तालंकार	१३४
व्यतिरेक	१३५
अपह्नुति	१३७
तुल्ययोगिता	१३८
उल्लेक्षा	१४०
अर्थान्तरन्यास	१४२
श्लेषरहितअर्थान्तरन्यास ...	१४३
समासोक्ति	१४५
विभावना	१४७
दीपक	१४८
अतिशयालंकार	१५०
हेतु	१५२
प्राकृत उदाहरण	१५३
पर्यायोक्ति	१५५
समाहित	१५७
परिवृत्ति	१५८
यथासख्य	१६१
विषमालंकार...	१६२
सहोक्ति	१६४
विरोध	१६५
अवसर	१६८
स्वर	१६९
श्लेष	१७१
भिन्नपदश्लेषका उदाहरण ...	१७२
समुच्चय	१७४
अप्रस्तुतप्रशंसा	१७६
एकावली	१७७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अनमानालङ्कार	१७८	स्वकीया	२०७
परिसख्या	१८२	परकीया	२०९
प्रश्नोत्तर तथा सकर	१८३	सामान्या	२१०
व्यक्त प्रश्नोत्तरोदाहरण	१८४	विप्रलभ	२१२
गर्भ प्रश्नोत्तरोदाहरण	१८५	पूर्वानुराग	,
सकर	१८७	मान प्रवास	२१३
अथ रीतिवर्णनम् ।		करुणा	२१४
		वीररस	२१७
रीतिद्वार	१८९	करुणा	२१८
गौडीका उदाहरण	१९१	हास्य	२२०
वैदर्भीका उदाहरण ..	१९३	अद्भुत	२२२
अथ पञ्चमपरिच्छेद ।		भयानक	२२४
		रौद्र	२२५
रसोका वणन	१९५	बीभत्स	२२७
नायकलक्षण	२०१	शान्त	२२९
नायकभद	२०२	परिशिष्ट	२३१
अनुकूल और दक्षिणकेलक्षण	२०३	रसाना विरोध दर्पणे	२३२
नायिकावणन	२०४	टीक कारस्य म परिचायका श्लोका	२३५
अनढालक्षण	२०५	ग्रथसमाप्ति	२३६

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता

श्रीगणेशायनमः ।

वाग्भटालंकारः ।

सान्वयसंस्कृतटीका-भाषाटीकोपेतः ।

प्रथमपरिच्छेदः ।

श्रीगोपालं नमस्कृत्य करोति मुरलीधरः ।
वाग्भटालंकृतेष्टीकामन्वयार्थप्रबोधिनीम् ॥

श्रीगोपालं नमस्कृत्य मुरलीधरः अन्वयार्थप्रबोधिनीं वाग्भटालंकृतेः टीकां करोति इत्यन्वयः॥ श्रीगोपालम् गां वेदवाणीं पृथिवीं वा पालयतीति अथवा श्रीवृंदावने गाः पालयतीतिश्रियासहितम् श्रीकृष्णावतारस्वरूपं विष्णुम् अन्वयार्थप्रबोधिनीम् अन्वयार्थयोः प्रबोधकारिणीं वाग्भटालंकृतेः वाग्भटालंकारस्यग्रंथस्य निर्विघ्नतापरिसमाप्त्यर्थमिदं मंगलं स्वेष्टदेवता नमस्कारात्मकमाचरितम् ॥

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा । मोक्षमार्गं सतां ब्रूते यदागमपदावली ॥ १ ॥

टीका--यदागमपदावली सतां मोक्षमार्गं ब्रूते (स) श्रीनाभेयजिनः देवः वः सदा श्रियं दिशतु इत्यन्वयः ॥

जयति संसारमिति जिनः जिञ् जये धातोर्नक् प्रत्ययः। ब्रह्मा विष्णुः बुद्धः (इति शब्दस्तोम०) नाभेयः नाभिजन्मा श्रीविधातादेवः वः श्रियं संपत्तिं लक्ष्मीं बुद्धिं वा दिशतु। अथवा ग्रंथकर्तुरिष्टदेवो जिनः नाभिनामा नृपतिः जिनस्य जनकः तदपत्यत्वान्नाभेय इति॥ १ ॥

अर्थ-जिनके आगमनकी पदावली सत्पुरुषोंको मोक्षमार्गके बतानेवाली है सो श्रीनाभेय जिन भगवान् आपको सदैव लक्ष्मी अथवा बुद्धिके देनेवाले हो (नाभेयका अर्थ जो नाभिसे उत्पन्न हो अथवा नाभिनाम राजाका पुत्र हो और जिनका अर्थ जो संसारको जीतसके इससे कई नाभेयजिनका अर्थ नाभिसे उत्पन्न होनेवाले विधाता ऐसा करतेहैं और कईक ऐसा कहतेहैं कि इसग्रन्थ के रचयिता जैनमतावलंबी थे इससे नाभेयजिन का अर्थ नाभि नामक नरेशके पुत्र जिन (भगवान् ऋषभदेव) मानतेहैं ॥ १ ॥

साधुशब्दार्थसंदर्भं गुणालंकारभूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये २

टीका--कीर्तये काव्यं कुर्वीत, किंभूतं काव्यं साधुशब्दार्थसंदर्भगुणालंकारभूषितं स्फुटरीतिरसोपेतम् इत्यन्वयः ॥ साधुशब्दार्थयोः संदर्भो रचनाक्रमो यत्र तत् गुणाः प्रसादादयः अलंकाराश्च चित्रादयः उपमादयश्च तैर्भूषितं रीतिः गौडीत्यादिका रसाश्च शृंगारादयस्तैरुपेतम् ॥ २ ॥

अर्थ-श्रेष्ठ शब्द और अर्थसे गुंफित तथा प्रसादादि गुणों तथा चित्रादिक शब्दालंकारों और उपमादिक अर्थालंकारोंसे

विभूषित और स्फुट गौडी आदि रीतियों तथा शृंगारादि रसोंसे उपयुक्त काव्यकी रचना कीर्तिके अर्थ कवि करे ॥ २ ॥

प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम् । भृशोत्पत्तिकृदभ्यास इत्याद्यकविसंकथा ॥ ३ ॥

टीका--तस्य काव्यस्य कारणं प्रतिभा विभूषणं व्युत्पत्तिः अभ्यासः भृशोत्पत्तिकृत् इति आद्यकविसंकथा (भवति) इत्यन्वयः ॥ अतिशयेन काव्यरचनोत्पत्तिकरणं भृशोत्पत्तिकृत् ॥ ३ ॥

अर्थ–उस काव्य (कवित्व) का कारण कविकी स्फुरणशीला बुद्धि होतीहै और विभूषण व्युत्पन्नता है और अतिशयकाव्य रचना करनेसे अभ्यास होताहै आद्यकवियोंका इसप्रकार कथन है ॥ ३ ॥

प्रतिभालक्षणम् ।

प्रसन्नपदनव्यार्थयुक्त्युद्बोधविधायिनी । स्फुरंती सत्कवेर्बुद्धिः प्रतिभा सर्वतोमुखी ॥ ४ ॥

टीका--सर्वतोमुखी स्फुरंती सत्कवेर्बुद्धिः प्रतिभा (भवति) किंविशिष्टा सा प्रसन्नपदनव्यार्थयुक्त्युद्बोध विधायिनी इत्यन्वयः ॥ प्रसन्नानि मनोहराणि पदानि नव्यार्थाः नूतनार्थाश्च तेषां युक्तिः योजनं तदुद्बोध-

विधायिनी स्फुरंती स्फुरणशीला सर्वतोमुखी सर्वेषु विषयेषु प्रवृत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ-सब विषयोंमें प्रवृत्त होनेवाली स्फुरणशीला जो सत्कवि की बुद्धि उसे प्रतिभा कहतेहैं वह कैसी हो कि मनोहर पदों और नवीन अर्थोंकी योजनाका उद्बोध करनेवाली हो ॥ ४ ॥

व्युत्पत्तिः ।

शब्दधर्मार्थकामादिशास्त्रेष्वाम्नायपूर्विका। प्रतिपत्तिरसामान्या व्युत्पत्तिरभिधीयते ॥ ५ ॥

टीका--शब्दधर्मार्थकामादिशास्त्रेषु आम्नायपूर्विका असामान्या प्रतिपत्तिः व्युत्पत्तिः अभिधीयते इत्यन्वयः ॥ शब्दशास्त्राणि व्याकरणकोशादीनि धर्मशास्त्राणि श्रुतिस्मृतिपुराणादीनि कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि आदिशब्देन काव्यालंकारादीनां ग्रहणम् तेषु आम्नाय पूर्विका गुरुपरंपरया चोपदेशपूर्विका असामान्या असाधारणरूपा प्रतिपत्तिः प्रवृत्तिः ॥ ५ ॥

अर्थ-व्याकरण कोशादिक शब्दशास्त्र और श्रुति स्मृति पुराणादिक धर्मशास्त्र और वात्स्यायन कोकादिक कामशास्त्र तथा आदिशब्दसे काव्यालंकारादि शास्त्र इन सबमें जो गुरुपरंपरासे रीतिपूर्वक उपदेश ग्रहण कर असाधारण प्रतिपत्ति(परिज्ञान) होना उसको व्युत्पत्ति कहतेहैं ॥ ५ ॥

अभ्यास लक्षणम् ।

अनारतं गुरूपांते यः काव्ये रचनादरः। तमभ्यासं विदुस्तस्य क्रमः कोप्युपदिश्यते ॥ ६ ॥

टीका--अनारतं (यथास्यात्तथा) गुरूपांते काव्ये यः रचनादरः बुधाः तम् अभ्यासं विदुः तस्य कोपि क्रमःउपदिश्यते इत्यन्वयः ॥ अनारतं निरंतरं गुरूपांते गुरुसमीपे रचनादरः रचनारंभः ॥ आदरः सन्माने आरंभे च(इति शब्दस्तोम०) ॥ ६ ॥

अर्थ-निरंतर बहुतसमयतक गुरुके समीपमें जो काव्यकी रचनाका आरंभ उसे विद्वान् अभ्यास कहतेहैं (अब इस ग्रंथमें) उसके कुछ क्रमोंका उपदेश कियाजाताहै ॥ ६ ॥

छंदःकारणम् ।

बिभ्रत्या बंधचारुत्वं पदावल्यार्थशून्यया । वशीकुर्वीत काव्याय च्छंदांसि निखिलान्यपि ॥ ७ ॥

टीका-बंधचारुत्वं बिभ्रत्या अर्थशून्यया पदावल्या अपि काव्याय निखिलानि छंदांसि वशीकुर्वीत (कविरिति शेषेण) अन्वयः ॥ बंधचारुत्वं छंदसां चारुत्वम् अर्थशून्यया वर्णमात्रोच्चारणरूपया ध्वन्यात्मकरूपया वा पदावल्या अपीति कथनेन अर्थसहि-

तया अपि-निखिलानि छंदांसि श्रीप्रभृतीनि एको गः श्रीः इत्यादीनि एको ग श्रीः इति तु सार्थकं का खा गा घा इति निरर्थकं परंतु श्रीछंदस्त्वमुभयत्रैव केचि-दिति व्याख्यानयंति पदावल्या अष्टगणरूपया ॥ ७॥

अर्थ-छंदोंकी मनोहरता (रीतिक्रम) धारणकरनेवाली अर्थ शून्य पदावली करके भी कवि काव्यके लिये समस्त श्री इत्यादि छंदोंका निबंध करसक्ताहै (तथा सार्थकपदावलियोंसे तौ छंदों का निबंध होताहीहै) ("एको गः श्री" अर्थात् एक अक्षर गुरु जिसके एक चरणमें हो वह श्रीछंदहै अस्तु यहां सार्थक पदावली-से श्रीछंद हुआ) और 'देवं वंदे' भी सार्थक श्रीछंद हुआ परंतु "काखागाघा' यह निरर्थक होनेपर भी श्रीछंद बनगया और कई ऐसा कहतेहैं कि मगण आदि अष्टगण रूप पदावलीसे छंद होतेहैं तीनों गुरुका मगण ऽऽऽ, तीनों लघुका नगण ।।।,आदि गुरुका भगण ऽ।।,आदि लघुका यगण ।ऽऽ, मध्यगुरुका जगण ।ऽ।, भध्यलघुका रगण ऽ।ऽ, अन्तगुरुका सगण ।।ऽ, और अंतलघुका तगणऽऽ।, होताहै ॥ ७ ॥

पश्चाद्गुरुत्वं संयोगाद्विसर्गाणामलोपनम् ।
विसंधिवर्जनं चेति बंधचारुत्वहेतवः ॥८॥
शिते कृपाणे विधृते त्वया घोरे रणे कृते
त्रधीश क्षितिपा भीत्या वन एव गतो
जवात् ॥ ९ ॥

टीका--संयोगात् पश्चाद्गुरुत्वं विसर्गाणाम् अलोपनं च विसंधिवर्जनम् इति बंधचारुत्वहेतवः (संति)इत्य-

न्वयः ॥ संयोगात् संयुक्तवर्णात् पूर्वं गुर्वक्षरवदुच्चारणं विसंधिवर्जनं विकटसंधिविवर्जनं बंधचारुत्वहेतवः छंदोरचनाचारुत्वस्य कारणानि ॥ ८ ॥ (उदाहरणम्) हे व्रधीश त्वया शिते कृपाणे विधृते घोरे रणे कृते (सति) क्षितिपा भीत्या जवात् वने एव गताः (इत्यन्वयः) ॥ शिते तीक्ष्णे नृणाम् अधीशः व्रधीश स्तत्संबुद्धौ व्रधीश । क्षितिपाः वैरिणो राजानः । जवात् वेगेन । अत्र व्रधीश इत्यत्र विकटसंधिकरणात बंधाचारुत्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ-संयुक्त अक्षरसे पीछे लघु वर्णका भी गुरुवत् उच्चारण करना और विसर्गोंका लोप (अनुच्चारण) नहीं करना और विकट अमनोज्ञ संधिका नहीं करना ये श्लोकादिकोंकी सुंदरताके हेतु होते हैं ॥ ८ ॥ (इसका उदाहरण दिखाते हैं) हे व्रधीश ! नरोंके अधीश आपके तीक्ष्ण खड्ग धारण करके घोर संग्राम करनेपर (आपके शत्रु) सब राजा भयसे शीघ्रही वनको भाग गये इसमें व्रधीश पद नृ-अधीशकी संधिसे बना है और यह संधि विकट है अर्थात् मनोहर नहीं इससे यह सुंदरताका हेतु नहीं किंतु सुंदरतामें क्षति होगई (व्रधीश पद संधिवैकट्य होनेहीसे प्रचलित नहीं किंतु नरेश नृपति आदि ही प्रायः प्रचलित हैं ॥ ९ ॥

अनुच्छसंत्यां नव्यार्थयुक्तावभिनवत्वतः । अर्थसंकलनातत्त्वमभ्यसेत् संकथास्वपि ॥ १० ॥ आगम्यतां सरवे गाढमालिं-

ग्यात्र निषीद च संदिष्टं यन्निजभ्रातृ-
जायया तन्निवेदय ॥ ११ ॥

टीका--अभिनवत्वतः नव्यार्थयुक्तौ अनुल्लसंत्यां संकथासु अपि अर्थसंकलनातत्त्वम् अभ्यसेत् इत्यन्वयः ॥ अनुल्लसंत्याम् अप्रकाशमानायाम् अनुबुध्यमानायां (सत्यां) नव्यार्थयुक्तौ नवीनार्थनियुक्तौ नवीनस्य पूर्वैः अनुद्भावितस्य अर्थस्य नियोजनायाम् इत्यर्थः । अभिनवत्वतः अभिनवत्वेन संकथासु वार्तालापादिषु इतिहासादिषु च अर्थसंकलनातत्त्वं अर्थ संयोजनचारुत्वम् ॥१०॥ (उदाहरणं) हे सखे आगम्यतां गाढम् आलिंग्य च अत्र निषीद यत् निजभ्रातृ जायया संदिष्टं तत् निवेदय इत्यन्वयः ॥ अत्र मत्समीपे निषीद उपविश निजभ्रातृजायया निजभ्रातृपत्न्या ॥ ११ ॥

अर्थ--नवीन प्रकारसे नूतन अर्थ योजनाका प्रकाश (उद्बोध) न होनेपर कथाओं वार्तालापादि तथा इतिहासादिकमें भी अर्थ योजनाकी सुंदरताका अभ्यास करे ॥ १० ॥ (इसका उदाहरण) हे मित्र ! आओ गाढ आलिंगन करके यहां मेरे पास बैठो और हमारी भोजाईने जो संदेशा भेजा सो कहो अथवा आपकी भोजाई (मेरी स्त्री) ने जो संदेशा भेजा सो कहो (निजभ्रातृ जाया कथनसे हमारी भोजाई ऐसा भी अर्थ हो सकता है और आपकी भोजाई (मेरी स्त्री) ऐसा भी अर्थ हो सकता है । प्रयोजन यह (कि इतिहासों और वार्तालापादिकोंमें जहां विशेष

नवीन अर्थोंकी (तथा ललितशब्दोंकी) योजनाका प्रकाश और उद्बोध नहींहो तौ अर्थकी सुन्दरताका अभ्यास करे)॥ ११ ॥

पदार्थबंधाद्यश्च स्यादभ्यासो वाच्यसंगतौ । स न श्रेयान् यतोऽनेन कविर्भवति तस्करः ॥ १२ ॥

टीका–वाच्यसंगतौ परार्थबंधात् च यः अभ्यासः स्यात् स न श्रेयान् यतः अनेन कविः तस्करो भवति इत्यन्वयः॥ वाच्यसंगतौ वचनरचनायां परस्य अर्थात् अभिप्रायात् बंधात् श्लोकादितोभ्यासः पराभिप्रायं श्लोकादिकं वा गृहीत्वा निबध्नातीतिभावः स न श्रेयान् न श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ १२ ॥

अर्थ–वचनरचनामें (श्लोकादिरचनामें) पराये अर्थसे अर्थ लेना अथवा पराये श्लोकादिसे पद लेना (अथवा पराये रचितको अपना बताना) यह अभ्यास श्रेष्ठ नहीं क्योंकि ऐसा करनेसे कवि चोर होताहै ॥ १२ ॥

परकाव्यग्रहोपि स्यात् समस्यायां कवेर्गुणः । अर्थं तदर्थानुगतं नवं हि रचयत्यसौ॥ १३ ॥

टीका–समस्यायां परकाव्यग्रहः अपि कवेः गुणः स्यात् हि असौ तदर्थानुगतं नवम् अर्थं रचयति इत्यन्वयः ॥ परकाव्यग्रहः परकाव्यात् ग्रहणं समस्यायां

संक्षेपेण उक्तस्य श्लोकपादादेः शेषस्य पूरणार्थं कृतप्रश्नरूपायां तदर्थानुगतं समस्यार्थानुगतम् ॥१३॥

अर्थ-समस्यामें पराये काव्यका ग्रहण (पराये अर्थ अथवा पदादिका ग्रहण) होजाना कविका गुण होताहै क्योंकि वह समस्याके अर्थके अनुगत नवीन अर्थकी रचना करताहै, (और पदार्थ तथा पर पदोंका परिज्ञान भी समस्यापूर्तिमें एक दूसरे कविको नहीं होता इससे यदि दो कवियों या कई कवियोंका आशय अथवा पद एक भी हो तौ एक दूसरे कविका गुण होता है दोष अर्थात् चोरत्व नहीं चोरत्व जभी होताहे कि जब जान बूझकर कवि दूसरेके आशय या रचना पदादिका ग्रहणकरे) (समस्या उसे कहतेहैं जहां अंतका पद या कोई अंश बताकर उस श्लोकादिकी तदनुसार पूर्ति करनेका प्रश्न हो) ॥ १३ ॥

दोहा-अन्य कविनके अर्थपद, ग्रहण चोर सम होय।
अपर समस्या पूर्तिमें, गुण कहलावत सोय ॥

मनःप्रसत्तिः प्रतिभा प्रातःकालोऽभियोगता । अनेकशास्त्रदर्शित्वमित्यर्थालोक हेतवः ॥ १४ ॥

टीका--मनःप्रसत्तीत्यादयः अर्थालोकहेतवः इति सरलान्वयः ॥ मनःप्रसत्तिः मनसः प्रसन्नता प्रतिभा पूर्वोक्ता सत्कवेर्बुद्धिः प्रातःकालःप्रभातसमयःअभियोगता विलक्षण पदार्थादीनामवलोकनसंयोगत्वम्। प्रातः कालेभियोगिता इति वा पाठः । तत्र प्रभाते रचनायां प्रवर्तनमिति अनेकशास्त्रदर्शित्वं अनेकशास्त्राणामलो-

कनकारित्वम् इति अर्थालोकहेतवः अर्थस्य उद्देश्यस्य आलोकहेतवः उद्योतहेतवः आलोकः उद्योतः (इति श. स्तो.) ॥ १४ ॥

अर्थ–मनकी प्रसन्नता कविकी स्फुरणशीला बुद्धिः प्रातःकाल-का समय विलक्षण पदार्थोंका दर्शनसंयोग तथा अनेक शास्त्रों-का देखना ये सब (काव्यरचनामें) वर्णनीयमें चारुत्वके उद्योत होनेके कारण हैं (अर्थात् इनसे कवितामें सुंदरता होती है) ॥१४॥

संक्षिप्त काव्यनियमाः ।

समाप्तमिव पूर्वार्द्धं कुर्यादर्थप्रकाशनम् ।
तत्पुरुषबहुव्रीही न मिथः प्रत्ययावहौ १५

टीका--पूर्वार्द्धं अर्थप्रकाशनं समाप्तमिव कुर्यात् (तथा) तत्पुरुषबहुव्रीहिसमासौ मिथः प्रत्ययावहौ न इत्यन्वयः ॥ पूर्वार्द्धं श्लोकस्य पूर्वार्द्धं अर्थप्रकाशनं समाप्तमिव कुर्यात् अत एव द्वितीयपादांतस्य तृतीय-पादाद्येन सह संधिसमासौ न कर्तव्यौ इतिभावः। तत्पु-रुषबहुव्रीही मिथः परस्परं प्रत्ययावहौ विश्वासयोग्यौ न कार्यौ असंदिग्धौ कार्यौ इत्यर्थः ॥ १५ ॥

अर्थ–श्लोकके पूर्वार्द्धमें अर्थप्रकाशकी समाप्ति सी ही कर देनी चाहिये यदि कुछ अर्थांश रहे तौ भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें अर्थात् द्वितीय पदके अंत और तृतीय पदके आदिमें संधि अथवा समास आदि कुछ नहीं करना चाहिये प्रयोजन यह कि पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध जुदे जुदे से रहने उचित हैं तथा तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास एकत्र संदेहयुक्त नहीं रखने चाहियें (जैसे

"कृष्णपुत्र" पदमें कृष्णका पुत्र "कृष्णपुत्र" यह तत्पुरुष समास है और इसीमें कृष्ण है पुत्र जिसका सो "कृष्णपुत्र" यह बहुव्रीहि है अर्थात् कंही अवसर हो तौ विशेषणोंसे वहांही संदेह निवृत्त करदेना चाहिये ॥ १५ ॥

एकस्यैवाभिधेयस्य समासं व्यासमेव च । अभ्यसेत्कर्तुमाधानं निःशेषालंक्रियास्वपि ॥ १६ ॥ स्यादनर्द्धांतपादांतेऽप्यशैथिल्ये लघुर्गुरुः । पादादौ न च वक्तव्या श्चादयः प्रायशो बुधैः ॥ १७ ॥

टीका-निःशेषालंक्रियासु अपि एकस्य अभिधेयस्य एव समासं व्यासं च आधानं कर्तुं अभ्यसेत् इत्यन्वयः ॥ अभिधेयस्य प्रतिपाद्यस्य समासं संक्षेपतःव्यासं विस्तारतः कथनम् आधानम् आरोपणं निःशेषालंक्रियासु सर्वत्रालंकारेषु ॥ १६ ॥ अनर्द्धांत पादांते अपि अशैथिल्ये (सति) लघुः गुरुः स्यात् । च बुधैः प्रायशः पादादौ चादयः न वक्तव्याः इत्यन्वयः ॥ अनर्द्धांतपादांते प्रथमतृतीयपादांते अशैथिल्ये गुरूच्चारणावश्यकत्वे ॥ १७ ॥

अर्थ-समस्त अलंकारोंमें एक वर्णनीयका संक्षेपसे वर्णन करने अथवा विस्तारसे वर्णन करनेके आरोपण करनेका अभ्यास करें प्रयोजन यह कि जिस प्रकार आरंभ करें वैसे ही समाप्त

करना चाहिये ॥ १६ ॥ पहले और तीसरे पदके अंतमें भी यदि गुरु वर्णके उच्चारण की आवश्यकता हो तो वहांका लघु वर्ण भी गुरुके समान होताहै (और श्लोकार्द्ध अर्थात् दूसरे पदके अंतमें तौ ऐसा होताहै ही) और प्रायः विद्वानों का ऐसा कथन है कि पदके आदिमें चकारादि अव्ययोंका नियोजन करना उचित नहीं (किंतु हे भो अहो हा हंत दिष्ट्या इत्यादि अव्यय पदके आदिमें हों तो अनुचित नहीं जैसे "दिष्ट्यांवते कुक्षिगतः परः पुमान्" इसमें पदके आदिमें "दिष्ट्या" अव्यय है सो अनुचित नहीं ॥ १७ ॥

भुवनानि निवध्नीयात् त्रीणि सप्त चतुर्द्दश । अप्यदृश्या सितां कीर्तिमकीर्तिं च ततोऽन्यथा ॥ १८ ॥ वारणं शुभ्रमिंद्रस्य चतुरः सप्त वाम्बुधीन् चतस्रः कीर्तयेद्वाष्टौ दश वा ककुभः क्वचित् ॥१९॥

टीका--भुवनानि त्रीणि सप्त चतुर्दश निबध्नीयात् कीर्तिम् अदृश्याम् अपि सिताम् अकीर्तिं च ततःअन्यथा (निबध्नीयात्) इत्यन्वयः ॥ सिताम् शुभ्रां ततोन्यथा कृष्णाम् ॥ १८ ॥ इंद्रस्य वारणं शुभ्रं अंबुधीन् चतुरः सप्त वा ककुभः चतस्रः वा अष्टौ क्वचित् दश कीर्तयेत् इत्यन्वयः ॥ वारणं गजम् ॥ १९ ॥

अर्थ--कवितामें भुवनोंको (लोकोंको) तीन या सात या चौदह वर्णन करना चाहिये जैसे त्रिभुवन लोकत्रय सप्तलोक

इत्यादि और कीर्त्ति दीखनेवाली नहीं है तौभी उसे श्वेत रूपसे वर्णन करना चाहिये और अकीर्ति अपयशको काले रूपसे वर्णन करना जैसे "त्वं कर्तुं धवलच्छविं स्वयशसाऽलं सर्वमुर्वीतलम्" इति। अर्थात् तुम अपने यश करके सम्पूर्ण पृथ्वीको श्वेत कर सक्तेहो॥१८॥इंद्रका हाथी श्वेत रूपसे वर्णन करना चाहिये समुद्रोंको चार अथवा सात वर्णन करे और दिशाओंको चार अथवा आठ अथवा दश वर्णन करे ॥ १९ ॥

यमकश्लेषचित्रेषु बवयोर्डलयोर्न भित्।
नानुस्वारविसर्गौ च चित्रभंगाय संमतौ २०

टीका--यमकश्लेषचित्रेषु बवयोः डलयोः न भित् च अनुस्वारविसर्गौ चित्रभंगाय न संमतौ इत्यन्वयः॥ यमकश्लेषचित्रादयः शब्दालंकाराः तत्र बवयोर्न भित् बकारवकारयोः डकारलकारयोश्च न भेदः इत्यर्थः। चित्रभंगाय चित्रव्याघाताय न संमतौ न गणितौ॥२०॥

अर्थ--यमक और श्लेष और चित्र इत्यादि शब्दालंकारोंमें बकार वकारका तथा डकार लकारका भेद नहीं समझा जाता है और अनुस्वार एवं विसर्गोंसे चित्र भंग (चित्रकाव्यका भंग) नहीं होता (यमक तुकमिलने जुडनेको कहते हैं श्लेष दो पक्षमें अर्थ देनेवाले शब्दालंकारको कहते हैं और चित्र हारबंध पद्मबंध आदि रचनाको कहते हैं इन सबके उदाहरण अगाडी लिखे हैं)॥ २० ॥

यमककाउदाहरण ।

शंकमानैर्महीपाल कारागारविडंबनम् ।
त्वद्वैरिभिः सपत्नीकैः श्रितं बहुविडं
बनम् ॥ २१ ॥

टीका–हे महीपाल सपत्नीकैः शंकमानैः त्वद्वैरिभिः बहुविडं (बहुविलं) कारागारविडंबनं वनं श्रितम् इत्यन्वयः ॥ शंकमानैः चिंतायुक्तैः कारागारविडंबनं कारागार इव विडंबनं क्लेशः यत्र एवं भूतं वनं बहुविडम् अर्थात् बहुविलं बहूनि विलानि सर्पादिव सविवराणि यत्र एतादृशं वनं श्रितम् आश्रितम् अत्र द्वितीयपादांते चतुर्थपादांते उभयत्र विडंबनं विडंबनम् इति वर्णसादृश्येन यमकं तत्र डलयोर्भेदाभावः ॥२१॥

अर्थ–हे महीपाल ! चिंतायुक्त आपके वैरी सपत्नीक अर्थात् स्त्रीसहित ऐसे वनमें प्राप्त होगये हैं (जाकर छिपे हैं) जिसमें अनेक सर्पादिकोंके बहुतसे बिल हैं और जिसमें कैदखाने जैसा क्लेश है । यहां बहुविड अर्थात् बहुबिल युक्त वन ऐसे डकारके बदले लकार मानकर अर्थ किया इसका प्रयोजन यमककी सिद्धि समझना जहां समानस्वर व्यंजनोंकरके तुक से तुक मिलजाय उसे यमक कहतेहैं जैसे यहां दूसरे पदके अंतमें 'विडंबनं' है और चौथे पदके अंतमें भी उसी प्रकार 'विडंबनं' है ॥ २१ ॥

श्लेषका उदाहरण ।

त्वया दयार्द्रेण विभो रिपूणां न केवलं संयमिता न बालाः ॥ तत्कामिनीभिश्च वियोगिनीभिः मुहुर्महीपातविधूसरांगाः ॥२२॥

टीका—हे विभो दयार्द्रेण त्वया केवलं रिपूणां बालाः न संयमिता इति न किंतु संयमिता एव कीदृशा बाला मुहुर्महीपातविधूसरांगाः च वियोगिनीभिः तत्कामिनीभिः बाला केशा न संयमिता इति न कीदृशा बालाः मुहुर्महीपातविधूसरांगाः इत्यन्वयः ॥ संयमिता संस्थापिताः बालाः स्त्रियः बालकाः अथवा केशाः वियोगिनीभिः पतिरहिताभिः मुहुर्महीपातविधूसरांगाःमुहुः महीपतनेन विधूसराणिमलिनानि अंगानि यासां येषां वा अत्र बालाः इति श्लेषे बवयोरभेदः २२॥

अर्थ--हे विभो (हे राजन्) आपने दयावान् होकर केवल शत्रुओंकी स्त्रियां नहीं सँभाली ऐसा नहीं किंतु आपने अवश्य उनको सँभाला और उन वियोगिनी स्त्रियोंने अपने बिखरेबाल नही सँभाले ऐसा नहीं किंतु उन्होंने भी अपने बाल सँभाल कर बांधे कैसी वे स्त्रियां हैं कि बार बार पृथ्वीमें पडने से मलिन होगये हैं अंग जिनके अथवा वे बाल केश कैसे हैं कि बार बार पृथ्वीमें गिरनेसे मलिन होगयेहैं अंग जिनके कई बाला कथनसे शत्रुवोंके बालक ऐसा अर्थ भी करते हैं यहां बाला शब्दका अर्थ स्त्रियां अथवा बालक तथा केश है और 'मुहुर्महीपातविधूसरांगा, दोनों तीनों पक्षोंका विशेषणहै तथा बाला शब्द

कई पक्षमें अर्थ देताहै इससे श्लेष अलंकार हुआ और बकार वकारका अभेद दिखाया गया ॥ २२ ॥

देव युष्मद्यशोराशिं स्तोतुमेनं जडात्मकम् ॥ उत्कंठयति मां भक्तिरिंदुलेखेव सागरम् ॥ २३ ॥

टीका--हे देव भक्तिः एनं जडात्मकं मां युष्मद्यशोराशिं स्तोतुम् उत्कंठयति इंदुलेखा जलात्मकं सागरम् इव इत्यन्वयः ॥ जडात्मकं मूर्खं सागरपक्षे डलयोरभेदात् 'जडात्मक' इत्यस्य स्थाने 'जलात्मकम्' इति विशेषणम् ॥ २३ ॥

अर्थ--हे देव भक्ति (जो है सो ही) इस जडबुद्धि मुझको आपकी यशोराशिकी स्तुति करनेको उत्साहित करती है जैसे चंद्रमाकी कला जडात्मक (जलात्मक) समुद्रको उत्कंठित (उत्तंभित) करती है यहां भी श्लेषमें डकार और लकारका अभेद है मांका विशेषण जडात्मक है और समुद्रके विशेषणके लिये इसे जलात्मक समझो ॥ २३ ॥

चित्रका उदाहरण ।

चंद्रेडितं चटुलितस्वरधीतसाररत्नासनं रभसकल्पितशोकजातम्। पश्यामि पाप तिमिरक्षयकारकायमल्पेतरामलतपः कचलोपलोचम् ॥ २४ ॥

टीका--(अहं) जिनं (शिवं वा) पश्यामि कीदृशं जिनं वा शिवं चंद्रेडितम् पुनः कीदृशं चटुलितस्वरधी-

तसाररत्नासनम् पुनः कीदृशं रभसकल्पितशोकजातम् । पुनः कीदृशं पापतिमिरक्षयकारकायम् पुनः कीदृशं अल्पेतरामलतपः कचलोपलोचम् इत्यन्वयः ॥ चंद्रेडितं चद्रेण ईडितं स्तुतम् अथवा चंद्र इव ईडितं स्वर धीतसाररत्नासनं रत्नानाम् आसनं रत्नासनं स्वर्लोके अधीतः सारो सिद्धांतो यस्य स स्वरधीतसारः इंद्रः तस्य रत्नासनं स्वरधीतसाररत्नासनं चटुलितं प्रकंपितं स्वरधीतसाररत्नासनं येन तम्, रभसकल्पितशोकजातं रभसेन वेगेन कल्पितं खंडितं शोकजातं दुःखादिकं येन तम्, पापतिमिरक्षयकारकायं पापमेव तिमिरं तस्य क्षयकारः ध्वंसकारी कायः शरीरं यस्य तम् अल्पे तरामलतपः कचलोपलोचम् अल्पेतरं प्रचुरम् अमलं तपः तेन कचानां लोपः तदेव लोचम् आलोचं दर्शनं यस्य तम् ॥ २४ ॥

अर्थ--मैं जिन (या शिव) को देखूं (दर्शनकरूं) कैसे जिन (या शिव हैं) कि चंद्रमा जिनका पूजन करें और जिन्होंने इंद्र का रत्नसिंहासन कंपित करदिया और शोकजात (दुःखादिक) जिन्होंने शीघ्रही नष्ट करदिये और पाप रूप अंधकारके क्षय कर नेवाला जिनका शरीरहै और प्रचुर निर्मल तपसे गिरे हुए बाल ऐसा है दर्शन जिन्होंका अथवा प्रचुरतपसे बालोंका गिरना ऐसी ही बुद्धि जिनकी (अर्थात् ऐसे घोर तपमें बुद्धि स्थित करें कि जिससे केश तक गिर जावें यह हारबंध चित्र है इसमें ड-कार और लकारका अभेद है ॥ २४ ॥

और अनुस्वार तथा विसर्गादिकी गणना चित्रभंगके लिये नहीं होती है जो नीचे हारबंध चित्रसे प्रगट होता है।

हारबंध चित्र।

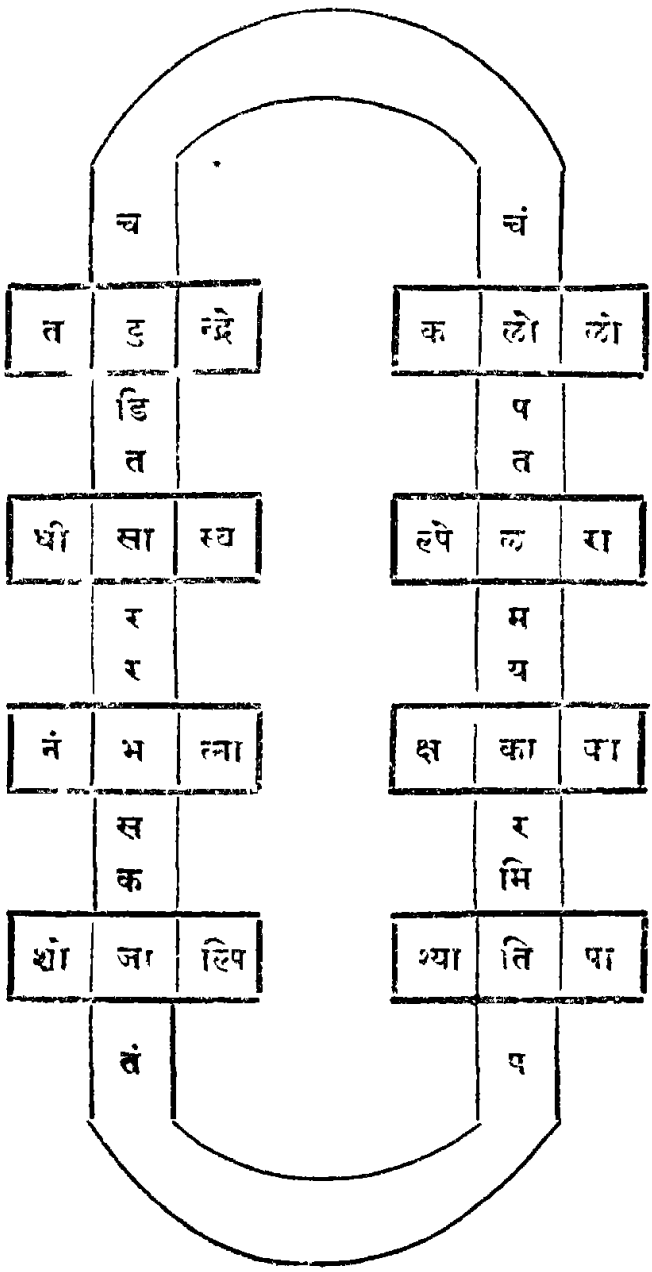

प्रचंडबल निष्काम प्रकाशितमहागम ॥ भावतत्त्वनिधे देव भालमत्राद्भुतं तव ॥ २५ ॥

टीका—हे प्रचंडबल हे निष्काम हे प्रकाशितमहागम हे भावतत्त्वनिधे हे देव अत्र तव भालम् अद्भुतम् इत्यन्वयः ॥ प्रचंडं बलं यस्य तत्संबोधनं निष्काम निर्गतः कामो यस्मात् प्रकाशितमहागम प्रकाशितः महान् आगमः शास्त्रं येन भावतत्त्वनिधे भावानां समस्तपदार्थानां तत्त्वम् तस्य निधिः तत्संबुद्धौ भालं मस्तकं (भालमत्राद्भुता इति वा क्वचित् पाठः तत्र तव भा कांतिः अद्भुता अलम् इति) ॥ २५ ॥

अर्थ--हे प्रचंडबलयुक्त कामरहित हे महत् शास्त्रोंके प्रकाशित करनेवाले हे समस्तपदार्थोंके तत्त्वके निधान देव इस संसारमें आपका मस्तक अद्भुतहै यह छत्रबंध है इसमें बकार वकार का अभेद है ॥ २५ ॥

छत्रबंधचित्र।

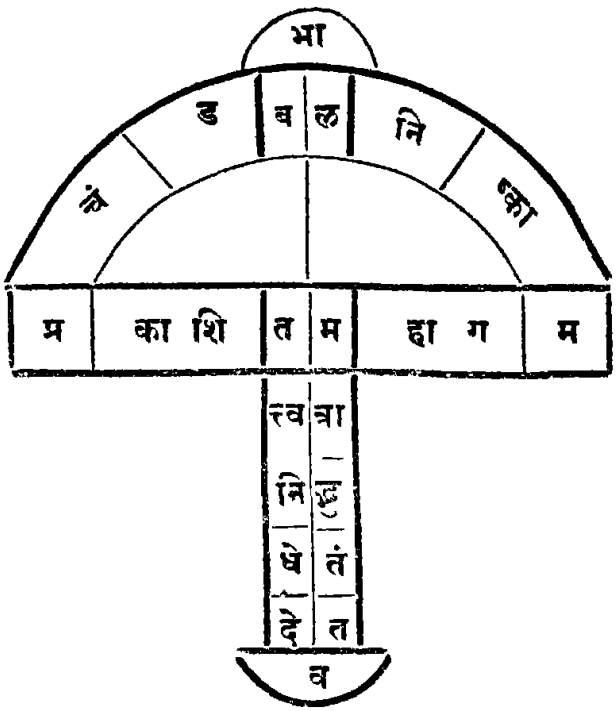

भवकाननमत्तेभ भग्नमायातमःप्रभ ॥
विनयात्त्वां स्तुवे वीर विनतत्रिदशेश्वर २६

टीका--हे भवकाननमत्तेभ हे भग्नमायातमःप्रभ हे वीर हे त्रिदशेश्वर अहं विनयात् त्वां स्तुवे इत्यन्वयः॥ भव एव काननं भवकाननं तत्र मत्तः इभः मातंगः तत्संबोधनम्। तमश्च प्रभा च तमःप्रभे मायाया तमः प्रभे मायातमःप्रभे भग्ने मायातमःप्रभे येन स भग्न मायातमःप्रभः तत्संबोधनम् विनतः त्रिदशेश्वरः यस्मिन् यत्समीपे तत्संबोधनं विनतत्रिदशेश्वर विनयात् नम्रीभावात् त्वां स्तुवे स्तवनं कुर्वे अहमिति शेषः॥२६॥

अर्थ--हे संसार रूप वनके मतवाले मातंगरूप हे मायाके अंधकार ओर चमकके नष्टकरने वाले हे इंद्र करके वंदित हे देव (मैं) विनयपूर्वक आपकी स्तुति करताहूं यह भी छत्रबंध चित्र है इसमें भी बकार वकारका अभेद है हम छत्रबंधका चित्र पहले छत्र रूपमें लिखकर भी दिखाचुके हैं उसी भाँत इसे जानो ॥ २६ ॥

अधीत्य शास्त्राण्यभियोगयोगादभ्यासवश्यार्थपदप्रपंचः॥ तंतं विदित्वा समयं कवीनां मनःप्रसत्तौ कवितां विदध्यात्॥२७॥

टीका--अभ्यासवश्यार्थपदप्रपञ्चः (कविः) शास्त्राणि अधीत्य कवीनां तंतं समयं विदित्वा मनःप्रसत्तौ अभियोगयोगात् कवितां विदध्यात् इत्यन्वयः ॥ अर्थानां पदानां च प्रपंचः अर्थपदप्रपंचः अभ्यासेन वश्यः अर्थपदप्रपंचः यस्य एवंभूतः कविः शास्त्राणि व्याकरणकोशकाव्यालंकारादीनि कवीनां तंतं समयं प्राचीनानां पूर्वोक्तवक्ष्यमाणादिकं सिद्धांतम् अभियोगयोगात् विलक्षणदर्शनादियोगात् अथवा अभिनिवेशवशात् मनःप्रसत्तौ मनसः प्रसन्नतायां कवितां विदध्यात् श्लोकादिरचनां कुर्यात् ॥ २७ ॥

अर्थ--अर्थों और पदोंका प्रपंच अभ्यासवश होगया है जिसके ऐसा कवि व्याकरण छंदालंकारादि शास्त्रोंको पढ़कर और प्राचीन कवियोंके पूर्वोक्त सिद्धान्तोंको जानकर (समझकर) मनकी प्रसन्नताके समय विलक्षण दर्शन श्रवणादिके संयोगसे तदनुरूप स्फूर्तिसे श्लोकादिकी रचना करे ॥ २७ ॥

इति वाग्भटालंकारे प्रथमः परिच्छेदः ।

द्वितीयपरिच्छेदः ।

संस्कृतं प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूतभाषितम् ॥ इति भाषाश्चतस्रोपि यांति काव्यस्य कायताम् ॥ १ ॥

टीका--संस्कृतं प्राकृतं तस्य अपभ्रंशः भूतभाषितम् इति चतस्रः अपि भाषाः काव्यस्य कायतां यांति इत्यन्वयः ॥ काव्यस्य कायतां काव्यांगतां यातीति॥१ ॥

अर्थ--संस्कृत और प्राकृत और उसका अपभ्रंश और भूतभाषा ये चारों भाषा काव्यका अंग होसक्तीहैं इन चारोंमें काव्य रचना होसक्ती है ॥ १ ॥

संस्कृतं स्वर्गिणां भाषा शब्दशास्त्रेषु निश्चिता ॥ प्राकृतं तज्जं तत्तुल्यं देश्यादिकमनेकधा ॥ २ ॥

टीका--संस्कृतं शब्दशास्त्रेषु निश्चिता स्वर्गिणां भाषा प्राकृतं तज्जं तत्तुल्यम् अनेकधा देश्यादिकम् इत्यन्वयः ॥ शब्दशास्त्रेषु व्याकरणादिषु निश्चिता निश्चितरूपा स्वर्गिणां देवानां भाषा प्राकृतं प्रकृतेः संस्कृतात् समुद्भूतं तज्जं संस्कृतजं तत्तुल्यं तदनुरूपं अनेकधा देश्यादिकं मागधं महाराष्ट्रियम् इत्यादि ॥ २ ॥

अर्थ--व्याकरणादि शब्दशास्त्रसे निश्चित अर्थात् नियमबद्ध संस्कृत देवताओंकी भाषा है अर्थात् व्याकरण शास्त्रसे संस्कार

कीहुई देवताओंकी भाषा संस्कृत कहलाती है और उस संस्कृत-से ही निकली हुई और उसके तुल्य अनेक देशोंमें अनेक रूपकी प्राकृत भाषा हुई जैसे मागधी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत इत्यादि अनेकदेशभेदसे अनेक प्रकारकी प्राकृत हुई ॥ २ ॥

अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्॥
यद्भूतैरुच्यते किंचित्तद्भौतिकमिति स्मृतम् ॥ ३ ॥

टीका--यत् तत्तद्देशेषु शुद्धं भाषितं तत् अपभ्रंशः । यत् किंचित् भूतैः उच्यते तत् भौतिकम् इति स्मृतम् इत्यन्वयः ॥ तत्तद्देशेषु यवनबर्बरादिषु शुद्धं तत्तद्रीत्या एव शुद्धम् अपभ्रंशः अपभ्रंश्यते अधर्महेतुतया पत्यते अनेन इत्यपभ्रंशः साधुशब्दभिन्ने अपशब्दे यज्ञादौ तत्कथनेन पापहेतुत्वात् (इति शब्दस्तोममहानिधिः) (अथवा "यदशुद्धमपभ्रंशः" इति पाठांतरं केचित्पठंति तत्र यत् अशुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितं तत् अपभ्रंशः यथा समुद्रस्थाने समंदर इति) भूतैः प्राणिभिः देवयोनिविशेषैश्च ॥ ३ ॥

अर्थ -जो दूसरे दूसरे देशोंमे शुद्ध भाषा संस्कृतसे भिन्न बोली जाती हैं उसे अपभ्रंश कहते हैं जैसे अरबी यूनानी इत्यादि (अथवा "यदशुद्धमपभ्रंशः" ऐसा पाठांतर कई मानते है और ऐसा अर्थ करते हैं जो संस्कृत प्राकृतसे बिगडकर अशुद्ध भाषा देशोंमें बोली जाने लगी उसे अपभ्रंश कहते है जैसे समुद्रका अपभ्रंश समंदर) और जो कहीं कुछ प्राणी मनुष्य स्वयं कल्पित

भाषा बोलने लगे उसे भौतिक कहते हैं अथवा भूत (देवयोनि) राक्षस यक्ष पिशाचादिकी भाषा भूतभाषा कहलाती है ॥ ३ ॥

छंदोनिबद्धमच्छंद इति तद्वाङ्मयं द्विधा ॥
पद्यमाद्यं तदन्यच्च गद्यं मिश्रं च तद्वयम् ४॥

टीका--छंदोनिबद्धम् अच्छंदः इति तत् द्विधा वाङ्मयं (तत्र) आद्यं पद्यं तदन्यच्च गद्यं तद्वयं मिश्रम् इत्यन्वयः ॥ अच्छंदः छंदोरहितं वाङ्मयं काव्यं भाषामात्रं वा आद्यं छंदोनिबद्धं पद्यं तदन्यच्च छंदोरहितं गद्यं तद्द्वयं पद्यगद्यात्मकं मिश्रम् ॥ ४ ॥

अर्थ--छंदबद्ध तथा छंदरहित इस प्रकार काव्य (या भाषा मात्र) के दो भेद हैं उनमें से छंदबद्ध (श्लोकबद्ध) को पद्य और छंदरहितको गद्य कहतेहैं तथा जिसमें गद्य पद्य दोनों हों उसको मिश्र (मिश्रित) कहते हैं ॥ ४ ॥

अदुष्टमेव तत्कीर्त्यै स्वर्गसोपानपंक्तये ॥
परिहार्यानतो दोषाँस्तानेवादौ प्रचक्ष्महे ॥
॥ ५ ॥ अनर्थकं श्रुतिकटु व्याहतार्थमलक्षणम् ॥ स्वसंकेतप्रकल्पार्थमप्रसिद्धमसम्मतम् ॥ ६ ॥ ग्राम्यं यच्च प्रजायेत पदं तन्न प्रयुज्यते॥ क्वचिदिष्टा च विद्वद्भिरेषामप्यपदोषता ॥ ७ ॥

टीका--तत् अदुष्टम् एव कीर्त्यै स्वर्गसोपानपंक्तये (भवति इति शेषः) अतः तान् परिहार्य्यान् दोषान् आदौ एव प्रचक्ष्महे इत्यन्वयः ॥ तत् काव्यम् अदुष्टं दोषरहितं कीर्त्यै इह यशसे परत्र च स्वर्गसोपानपंक्तये परिहार्य्यान् परित्याज्यान् ॥ ५ ॥ अनर्थकम् इत्यादि पदैर्दोषाणां गणना एव कथिता तेषां पार्थक्येन लक्षणानि सोदाहरणानि चाग्रे वक्ष्यंते क्वचित् विद्वद्भिः एषां दोषाणाम् अपदोषता निर्दोषता च इष्टा तत्राह "इतिहासपुराणादौ देवतानां नुतौ स्तुतौ शब्दालंकारके चार्षे दोषाणामप्यदोषता" इति अत्र दोषाणाम् अनर्थकादीनामपि निर्दोषता ॥ ६ ॥ ७ ॥

अर्थ--वह गद्यपद्यात्मक काव्य दोषोंसे रहित रचाजानेसे संसारमें कीर्ति देता है और परलोकमें स्वर्गप्राप्तिका हेतु होताहै इससे जो त्याज्य दोष हैं उन्हींको पहले वर्णन करते हैं॥५॥वे दोष इस प्रकारसेहैं १ अनर्थक, २ श्रुतिकटुक, ३व्याहतार्थ, ४ अलक्षण, ५ स्वसंकेतप्रकृतार्थ, ६ अप्रसिद्ध, ७ असंमत, ८ ग्राम्य, जो पद उनका प्रयोग इस प्रकार ये ८ शाब्द दोष हैं विद्वानोंने कहीं इन दोषोंकी निर्दोषता भी मानी है जहां इनकी निर्दोषता मानी है वे इसप्रकार हैं कि इतिहास पुराणादिक और देवताओंकी स्तुति तथा नमन तथा चित्रादिक शब्दालंकार और आर्ष (ऋषि प्रोक्त वाक्य) इतने स्थानोंमें ये शब्ददोष हों तौ भी इनका विशेष दूषण नहीं समझना चाहिये इन सब अनर्थकादिक दोषोंके जुदे जुदे लक्षण और उदाहरण अब अगाड़ी वर्णन किये जाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनर्थक ।

प्रस्तुतेऽनुपयुक्तं यत्तदनर्थकमुच्यते ॥
यथा विनायकं वंदे लंबोदरमहं हि तु॥८॥

टीका--यत् प्रस्तुते अनुपयुक्तं तत् अनर्थकम् उच्यते यथा लंबोदरं हि तु विनायकम् अहं वंदे इत्यन्वयः ॥ प्रस्तुते स्तवनकृते अनुपयुक्तं स्तुतिविरुद्धं निरर्थकम् योग्यं वा--तत अनर्थकं नाम दोषः यथा विनायकस्य स्तुतिविषये लंबोदरमिति विशेषणं स्तुतिविरुद्धं तथा च हि तु पदद्वयं निरर्थकम् ॥ ८ ॥

अर्थ--जो स्तुतिमें स्तुतिके विरुद्ध (निंदासूचक) पद आजावे अथवा निरर्थक पद आजावे तो उसे "अनर्थक" दोष कहते हैं जैसे मैं लंबे पेटवाले गणेशजीको वंदना करता हूं इसमें गणेशजीके वंदना करनेमें लंबे पेटवाले ऐसा विशेषण स्तुतिके विरुद्ध है तथा हि और तु अव्यय निरर्थक हैं ॥ ८ ॥

(उदाहरण) दोहा--अनुपयुक्त जो स्तुतिविषें, होत अनर्थक सोइ । नमन करूं गणनाथको लंबपेटयुत जोइ ॥

श्रुतिकटुक ।

निष्ठुराक्षरमत्यंतं बुधैः श्रुतिकटु स्मृतम् ॥
एकाग्रमनसा मन्ये स्रष्ट्रेयं निर्मिता यथा९॥

टीका--अत्यंतं निष्ठुराक्षरं बुधैः श्रुतिकटु स्मृतं यथा स्रष्ट्रा इयमेकाग्रमनसा निर्मिता (अहम् इति) मन्ये

इत्यन्वयः ॥ निष्ठुरं कठोरं यदक्षरं निष्ठुराक्षरं अथवा अत्यंतं निष्ठुरम् अक्षरं यत्र तत् श्रुतिकटु कर्णकटुकं श्रवणकटुकं वा एकाग्रमनसा एकाग्रेण मनसा स्रष्ट्रा विधात्रा इयं सुंदरी यत्र अत्यंतं निष्ठुराक्षरं तत् श्रुति कटुकं नाम दूषणं यथा इयं सुंदरी स्रष्ट्रा एकाग्रमनसा निर्मिता अत्र स्रष्ट्रा अत्यंतं निष्ठुराक्षरं (एतद्दूषणं वि-शेषतया शृंगाररसे करुणारसे च वर्जनीयं न तु वीररसे रौद्ररसे च ॥ ९ ॥

अर्थ-जहां अत्यंत कठोर शब्द (शृंगारादिके वर्णनमें) हो उसे विद्वान् श्रुतिकटु या कर्णकटुक दोष कहतेहैं जैसे यह सुंदरी 'स्रष्ट्रा' अर्थात् विधाताने एकाग्रचित्त होकर ही बनाईहै मैं ऐसा जानताहूं इसमें स्रष्ट्रा शब्द अत्यंत कठोर है ॥ ९ ॥

(उदाहरण दोहा) अति कठोर जहँ वर्ण हो, कर्णकटुक तिंहि जान । मुक्तासे माणिक भई दाष्ट्रा चाबें पान ॥ यह श्रुतिकटुक दोष शृंगार रसमें दूषित है बीररौद्रादिमें दूषित नहीं ।

व्याहतार्थं यदिष्टार्थबाधकार्थांतराश्रयम् ॥
रतस्त्वमेव भूपालं भूतलोपकृतौ यथा १०

टीका--यत् इष्टार्थबाधकार्थांतराश्रयम् (तत्) व्याहतार्थम् । यथा हे भूपाल त्वं भूतलोपकृतौ एव रतः इत्यन्वयः ॥ इष्टार्थस्य वांछितार्थस्य यत् बाध-कार्थांतरम् तदाश्रयम् यत्र वांछितार्थस्य बाधकम् अर्थान्तराश्रयं दृश्यते तत् व्याहतार्थं दूषणं भवति

यथा हे भूपाल त्वं भूतलोपकृतौ भूतलस्य उपकृतौ उपकारे रतः एव अत्र भूतलोपकृतौ पदे भूतानां प्राणिनां लोपः नाशः भूतलोपः तस्य कृतौ करणे रतः इति इष्टार्थस्य बाधकार्थांतरदर्शनात् व्याहतार्थं भवति ॥ १० ॥

अर्थ--जहां वांछितार्थसे विपरीत दूसरा अर्थ भी प्रकाशित हो तो उसे व्याहतार्थ दोष कहते हैं जैसे हे भूपाल तुम भूतलोपकृतिमें रत हो अर्थात् भूतलकी उपकृति (उपकार) में रत हो यहां भूतलोपकृति इस पदमें भूतलकी उपकृतिके सिवाय भूते लोप कृति अर्थात् प्राणियोंका नाश करना ऐसा विरुद्ध अर्थ भी प्रकाशित होता है इससे व्याहतार्थ दोष हुवा ॥ १० ॥

(उदाहरण) दोहा--व्याहतार्थ जहँ इष्टका, बाधक अर्थ लखाय । भूतलोपकारी नृपति तुम सबतें अधिकाय ॥

अलक्षण ।

शब्दशास्त्रविरुद्धं यत्तदलक्षणमुच्यते ॥
मानिनीमानदलनो यथेंदुर्विजयत्यसौ ११

टीका--यत् शब्दशास्त्रविरुद्धं तत् अलक्षणम् उच्यते यथा मानिनीमानदलनः असौ इंदुः विजयति इत्यन्वयः ॥ शब्दशास्त्रविरुद्धं व्याकरण विरुद्धं मानिनी मानदलनः माननीनां मानवतीनां सुंदरीणां मानस्य दलनः विध्वंसकः इंदुश्चंद्रमाः अत्र विजयति इति वि पूर्वात् जयते धातोरात्मनेपदानुशासनात् परस्मैपद प्रयागो व्याकरणविरुद्धस्तस्मादलक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ--जो शब्दशास्त्र (व्याकरण) के विरुद्ध पद हो उसे अलक्षण दोष कहतेहैं जैसे मानवती सुंदरियोंके मानका नष्ट करनेवाला यह चंद्रमा उत्कर्ष करके वर्तमानहै अर्थात् प्रकाशमान होरहाहै यहां 'विजयति' परस्मैपद व्याकरण विरुद्धहै किंतु विजयते आत्मनेपद उचित था इससे अलक्ष्ण दोष हुआ ॥११॥

(उदाहरण)दोहा-शब्दशास्त्र वरतावते, पृथक अलक्षण होत । तारकविचे अकाशमें होत चंद्र उद्योत ॥

स्वसंकेतप्रकृप्तार्थ ।

स्वसंकेतप्रकृप्तार्थं ज्ञेयार्थांतरवाचकम् । यथा विभाति शैलोयं पुष्पितैर्वानर-ध्वजैः ॥ १२ ॥

टीका--ज्ञेयार्थांतरवाचकम् स्वसंकेतप्रकृप्तार्थं यथा अयं शैलः पुष्पि ै : वानरध्वजैः विभाति इत्यन्वयः ॥ स्वसंकेतेन प्रकृप्तो रचितोऽर्थो येन तत् स्वसंकेतप्रकृप्तार्थं ज्ञेयस्य ज्ञातुं योग्यस्य यत् अर्थांतरवाचकं तत् ज्ञेयार्थांतरवाचकम् यथा पुष्पितैः वानरध्वजैः अर्जुन वृक्षैः अयं शैलो बिभाति वानरध्वजकथनेन पार्थस्या र्जुनस्य ग्रहणं भवितुमर्हति न तु अर्जुनवृक्षस्य तत्र स्व संकेतकल्पितार्थत्वेन वानरध्वजशब्देऽर्जुनवृक्षस्य ग्रह-णमेव स्वसंकेतप्रकृप्तार्थं दूषणम् भवति ॥ १२ ॥

अर्थ--जहां ज्ञेय पदार्थसे अर्थात् वाचकको अपने संकेत कल्पित अर्थमें उपयोग किया जाय उसे स्वसंकेतप्रकृप्तार्थ नाम

दूषण कहतेहैं जैसे यह पर्वत फूले हुए वानरध्वज नाम अर्जुनके वृक्षोंसे शोभायमान होरहा है वानरध्वज शब्दसे पांडव अर्जुन का बोध होसक्ताहै अर्जुनवृक्षका नहीं परंतु यहां अपने संकेत कल्पनासे वानरध्वजका अर्थ अर्जुनवृक्ष किया गया इसीसे स्वसंकेतप्रकृप्तार्थ दोष हुवा ॥ १२ ॥

(उदाहरण) दोहा--स्वसंकेतकृप्तार्थ जो, संकेतार्थविकाश ।
रावणसुत मुखमें धरे, होत काशका नाश ॥

अप्रसिद्ध ।

यस्य नास्ति प्रसिद्धिस्तदप्रसिद्धं विदुर्यथा ॥ राजेंद्र भवतः कीर्तिश्चतुरो हंति वारिधीन् ॥ १३ ॥

टीका--यस्य प्रसिद्धिः नास्ति तत् अप्रसिद्धं (बुधाः) विदुः । यथा हे राजेंद्र भवतः कीर्तिः चतुरो वारिधीन् हंति इत्यन्वयः ॥ बुधा इति शेषः वारिधीन् समुद्रान् हंति गच्छंति अत्र हनहिंसागत्योर्धातोः गमनार्थस्य अप्रसिद्धत्वादप्रसिद्धं दूषणम् ॥१३॥

अर्थ--जिसकी प्रासिद्धि नहीं हो ऐसे अर्थका पद उपयोगहो तो उसे अप्रसिद्ध दोष कहतेहैं जैसे हे राजेंद्र आपकी कीर्ति चारों समुद्रोंपर्यंत गमन करतीहै इसमें हंतिका अर्थ जाना कियाहै जो प्रसिद्ध नहीं है किंतु हंतिका अर्थ मारना प्रसिद्धहै इसीसे अप्रसिद्ध दोष हुवा ॥ १३ ॥

(उदाहरण) दोहा--अप्रसिद्ध जहँ अर्थमें, अप्रसिद्धपद योग ।
ग्रीषम ऋतुमें अधिक वन, पीवतहैं सब लोग ॥

असंमत ।

शक्तमप्यर्थमाख्यातुं यन्न सर्वत्र संमतम्॥
असंमतं तमोंभोजं क्षालयंत्यंशवो रवेः १४

टीका--अर्थम् आख्यातुं शक्तमपि यत् सर्वत्र न संमतं (तत्) असंमतम् (यथा) रवेः अंशवः तमों-भोजं क्षालयंति इत्यन्वयः ॥ तमोंभोजं तमसः अंभोजं पंकम् अथवा तमः एव अंभोजम् अंशवः किरणाः रवेः अंशवः तमोंभोजं क्षालयंति इत्यत्र अंभोजशब्दः अंभसोजातत्वात् कमलकर्दमादौ वर्तते अपि परं च योगरूढत्वेन कमले एव स्थितः नतु पंकादौ अत्र पंकार्थे ग्रहणत्वादसंमतं नाम दूषणम् ॥ १४ ॥

अर्थ--जो अर्थके कहनेमें समर्थ भी हो पर वह पद सर्वत्र संमत नहीं हो तो उसे असंमत दोष कहते हैं जैसे सूर्यकी किरण तमोंभोज अर्थात् अंधकार रूप कीचड़को धो (साफकर) सक्तीहैं अंभोज पदका अर्थ जलसे पैदा होने वाले कमल कीचड़ शैवाल आदि सभी होसक्तेहैं परंतु योगरूढित्व करके अंभोज पदका अर्थ कमल ही मुख्यतासे होताहै कीचड़ आदि नहीं होते और यहां अंभोज पदका अर्थ कीचड है इसीसे असंमत दोष हुवा ॥ १४ ॥

(उदाहरण) दोहा-योगरूढि पदमें जहां, अर्थ योगवश होय।
दोष असंमत सो यथा, ओढ अँगरखा सोय ॥

प्रसंगवश यहां पर हम रूढी आदि शाब्दिक शक्तियोंका वर्णन करते हैं वह शाब्दिक शक्ति संक्षेपसे तीन प्रकारकी होतीहै (१)

रूढि (२) यौगिक (३) योगरूढि देखो साहित्यसार श्लोक "सापुनस्त्रिविधारूढियोगतन्मिश्रभेदतः । समुदायैकशक्तिर्या सैव रूढिर्यथाशिवः १ योगो वयनमात्रस्य शक्तिर्यद्वत्प्रबोधकः उभयोः शंकरो योगरूढिः नारायणो यथा २" साहित्य शास्त्रके अनुसार शाब्दिक शक्ति ३ प्रकारकी होतीहै जैसे रूढि, यौगिक, तन्मिश्र अर्थात् योगरूढि उनमेंसे जो धातुप्रत्ययादिके आश्रय न होकर केवल समुदायके आश्रयसे अर्थ प्रकाश करे जैसे शिव अथवा भाषामें गाडी जो गाडी हुई न होकर उसके विपरीत चलने वाली होकर गाडी कहलाती है इसे रूढि कहतेहै ॥ और जो अवयव (पदोंके टुकडे अथवा धातुप्रत्ययादि) के आश्रयसे अर्थ प्रकाश करे उसे योग अर्थात् यौगिक कहतेहैं जैसे प्रबोधक या पाठक पढ़ाने वाला अर्थात् जो पढ़ाताहो वही पाठक कहलाता है ॥ तीसरे योगरूढि उसे कहतेहैं जिसमें दोनोंके आश्रयसे अर्थ प्रकाश हो अर्थात् टुकडोंसे या धातु प्रत्ययादिसे अर्थ प्रकाश होकर भी एक ही पदार्थमें नियत रहे जैसे नारायण अथवा अंभोज अंभोजका अर्थ जलसे पैदा होने वाले कमल कीचड शिवाल आदि कई हो सक्तेहैं तौ भी जलसे पैदा होने वाले एक मात्र कमल ही को मुख्यतासे अंभोज कहते हैं कीचड़ आदिको अंभोज नहीं कहतेहैं ॥ १४ ॥

यद्यत्रानुचितं तद्धि तत्र ग्राम्यं स्मृतं यथा॥ छादयित्वा सुरान्पुष्पैः पुरो धान्यं क्षिपाम्यहम् ॥ १५ ॥

टीका–यत् यत्र अनुचितं तत् तत्र ग्राम्यं स्मृतम् यथा अहम् सुरान् पुष्पैः छादयित्वा पुरः धान्यं

क्षिपामि इत्यन्वयः ॥ छादयित्वा संपूज्य पुरः अग्रतः धान्यं क्षिपामि अक्षतं समर्पयामि अत्र पुष्पैः छादयित्वा धान्यं क्षिपामि च ग्राम्यं पदम् ॥ १५ ॥

अर्थ--जहां जो कोई अनुचित अयुक्त ग्रामीण पद हो तो उसे ग्राम्यपद (ग्राम्यपद प्रयुक्ति नाम) दोष कहतेहैं जैसे मैं देवताओंको पुष्पोंसे ढककर उनके आगे धान्य बखेरताहूं यहां पुष्पोंसे पूजन करनेकी जगह ढककर और अक्षत समर्पण करनेकी जगह धान्य बखेरना ग्राम्य पद है इसीसे ग्राम्यपदप्रयुक्ति नाम दूषण हुवा ॥ १५ ॥

(उदाहरण)दोहा--नागर कवि जो ग्राम्यपद, युक्त करे नहि ठीक । जिमि विशाल प्रासादमें न लघु ओवरीनीक ॥

अथ वाक्यदोष ।

पदात्मकत्वाद्वाक्यस्य तद्दोषाः संतिशाब्दिकाः ॥ अपदस्थास्तु ये वाक्यदोषास्तान्ब्रूमहेऽधुना ॥ १६ ॥

टीका--वाक्यस्य पदात्मकत्वात् तद्दोषाः शाब्दिकाः संति तु अपदस्था ये वाक्यदोषाः तान् अधुना ब्रूमहे इत्यन्वयः ॥ तद्दोषाः उक्तदोषाः तद्दोषाः संति शाब्दिका इत्यत्र तद्दोषाः संति तत्र हि इति वा पाठांतरः अपदस्थाः पदाश्रयेण न स्थिताः इत्यर्थः ॥१६॥

अर्थ--वाक्यके पदोंमें होनेसे जो दोष पीछे कहे गयेहैं वे शाब्दिक अर्थात् शब्ददोष अथवा पददोष हैं और जो पदमात्रके

आश्रय नहीं होकर वाक्यके आश्रय दोष होतेहैं उन्हें अब अगाड़ी वर्णन करते हैं ॥ १६ ॥

खंडितं व्यस्तसंबंधमसंमितमपक्रमम् ॥ छंदोरीतियतिभ्रष्टं दुष्टवाक्यमसत्क्रियम् ॥ १७ ॥

टीका--खंडितम् इत्यादि पदैः वाक्यदोषाणां गणना एव कृता । स्फुटान्वयः । छंदोरीतियतिभ्रष्टम् इति छंदोभ्रष्टं रीतिभ्रष्टं यतिभ्रष्टम् इति दोषत्रयम् ॥ १७ ॥

अर्थ--वाक्यदोष इस प्रकारसेहैं कि १ खंडित, २ व्यस्तसंबंध, ३ असंमित, ४ अपक्रम, ५ छंदोभ्रष्ट, ६रीतिभ्रष्ट, ७यतिभ्रष्ट, ८ दुष्टवाक्य, अर्थात् दूषितवाक्य, ९ असत्क्रिया इनके लक्षण और उदाहरण यथाक्रम आगाड़ी कहते हैं ॥ १७ ॥

खंडितदोष ।

वाक्यान्तरप्रवेशेन विच्छिन्नं खंडितं मतम्। यथा पातु सदा स्वामी यमिंद्रः स्तौति वो जिनः ॥ १८ ॥

टीका--वाक्यान्तरप्रवेशेन (यत्) विच्छिन्नं (तत्) खंडितं मतम् यथा यम् इंद्रस्तौति (स) जिनः स्वामी सदा वः पातु इत्यन्वयः ॥ अत्र जिनः स्वामी सदा वः पातु इति वाक्यं यमिंद्रः स्तौति इति वाक्यांतरप्रवेशेन विच्छिन्नं भवति अतः खंडितं नाम दोषः॥ १८॥

अर्थ-जो वाक्य दूसरे वाक्यांतरके बीचमें आजाने से विच्छिन्न होजावे तौ उसे खंडित दोष कहतेहैं जैसे वह जिन स्वामी, जिनकी इन्द्र स्तुति करता है सदा तुम्हारी रक्षा करो यहाँ वह जिन स्वामी सदा तुम्हारी रक्षा करो के बीचमें जिनकी इन्द्र स्तुति करता है वाक्यांतर आजानेसे खंडित नाम वाक्यदोष हुवा ॥ १८ ॥

(उदाहरण) दोहा-वाक्यांतरसे वाक्यमें, खंडित दोष बखान । जिन जिनकी स्तुति सुर करें करो सदा कल्यान ॥

व्यस्तसंबंध ।

संबंधिपददूरत्वे व्यस्तसंबंधमुच्यते ॥ यथाद्यः संपदं ज्ञाता देयात्तत्त्वानि वोऽर्हताम् ॥ १९ ॥

टीका--पूर्वार्द्धस्यान्वयः सरलः ॥ यथा अर्हता माद्यः तत्त्वानि ज्ञाता वः संपदं देयात् इत्युत्तरार्द्धस्यान्वयः ॥ अत्र अर्हताम् आद्य इत्यादिसंबंधिपददूरत्वे सति व्यस्तसंबंधनामकं दूषणं भवति ॥ १९ ॥

अर्थ-जहां सबंधिपद दूर होताहै उसे व्यस्तसंबंध नामक दोष कहते हैं जैसे अर्हतोंमें तत्त्वोंको जानने वाले ऋषभदेवजी आपको संपत्ति दो यहां आद्यका संबंधिपद अर्हताम् दूर होनेसे व्यस्तसंबंध नामक वाक्यदोष हुवा ॥ १९ ॥

(उदाहरण) दोहा-संबंधी पद दूरते, होत व्यस्तसंबंध । भवको दीनदयाल प्रभु कब काटोगे फंध ॥

असंमित।

शब्दार्थौ यत्र न तुलाविधृताविव संमतौ। तदसंमितामित्याहुर्वाक्यं वाक्यविदो यथा॥ २०॥ मानसौकः पतद्यानदेवासनविलोचनः। तमोरिपुविपक्षारिप्रियां दिशतु वो जिनः॥ २१॥

टीका—यत्र शब्दार्थौ तुलाविधृतौ इव न संमितौ तत् वाक्यं वाक्यविदः असंमितम् इति आहुः इत्यन्वयः॥ तुलाविधृतौ तुलायां संस्थापितौ इव यथा पदस्य अग्रिमेण सह संबंधः॥ २०॥ यथा मानसौकः पतद्यानदेवासनविलोचनः जिनः तमोरिपुविपक्षारिप्रियां वः दिशतु इत्यन्वयः॥ मानसौकः पतद्यानदेवासनविलोचनः मानसं नामकं सरः तदेव ओकः स्थानं यस्य स मानसौका हंसः मानसौकाः चासौ पतत् पक्षी च मानसौकःपतत् स एव यानं यस्य स मानसौकःपतद्यानः स एव देवः मानसौकःपतद्यानदेवः ब्रह्मा तस्य आसनं कमलं तद्वत् लोचनं यस्य स मानसौकःपतद्यानदेवासनविलोचनः तमोरिपुविपक्षारिप्रियां तमसो रिपुः तमोरिपुः सूर्यः तस्य विपक्षो राहुः तस्य अरिः विष्णुः तस्य प्रिया लक्ष्मीः तां तमोरिपुविपक्षारिप्रियाम्। अत्र शब्दास्तु बहवः अर्थः स्वल्प

एव अतः न शब्दार्थयोः तुलाविधृतयोरिव माने साम्यं एतस्मादेव असंमितनामकं वाक्यदूषणम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जहां शब्द और अर्थ तराजूमें तुलें जैसे ठीक नहीं हों तो वाक्य विद्वान् पंडित उसे असंमित दोष कहते हैं (वाक्ति अक्षर स्वल्प होकर अर्थ अधिक होना तो श्रेष्ठ होताहै परंतु अक्षर अधिक होकर अर्थ स्वल्प होना दूषित है) ॥ २० ॥ जैसे जिन भगवान् आपको तमोरिपुविपक्षारिप्रिया अर्थात् लक्ष्मी दो इसमें तमोरिपुविपक्षारिप्रियाका अर्थ लक्ष्मी इसप्रकार हुवा कि तम अन्धकार इसका रिपु सूर्य सूर्यका विपक्षी राहु राहुका अरि शत्रु विष्णु विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी हुई इसी प्रकार मानसौकःपतद्यान देवासनविलोचनका अर्थ जिन होकर विशेषण हुवा कि मानस-मानसरोवर है ओक स्थान जिस पक्षीका सो हंस वह हंस है वाहन जिस देवका सो ब्रह्मा उस ब्रह्माका आसन कमल, कमल जैसे हैं विलोचन नेत्र जिनके ऐसे जिन भगवान् यहां मानसौकः पतद्यानदेवासनविलोचन और तमोरिपुविपक्षारिप्रिया इनपदोंमें अक्षर बहुतहैं अर्थ क्लेश कल्पना करनेसे स्वल्प निकलताहै इससे असंमित दोष हुवा ॥ २१ ॥

(असंमितलक्षण) दोहा-शब्द अर्थ जहँ वाक्यमें, तुलै न होय समान। शब्द बहुत अरु अर्थ लघु ताहि असंमित जान ॥

(उदाहरण-अन्यकविका) दोहा-अजासहेली तासु रिपु ताजननी भरतार। ताके सुतके मित्रको भजिये बारम्बार ॥

अपक्रम ।

अपक्रमं भवेद्यत्र प्रसिद्धक्रमलंघनम् ॥ यथा भुक्त्वा कृतस्नानो गुरून्देवांश्च वंदते ॥ २२ ॥

टीका—यत्र प्रसिद्धक्रमलंघनम् भवेत् (तत्) अप क्रमम् यथा भुक्त्वा कृतस्नानः गुरून् च देवान् वंदते इत्यन्वयः ॥ प्रसिद्धस्य क्रमस्य लंघनं प्रसिद्धक्रमलं-घनम् अत्र भुक्त्वा स्नानकरणं तत्पश्चात् गुरूणां देवानां च वंदनम् इति न प्रसिद्धक्रमः किंतु स्नानानंतरं गुरुदेवा दीनां वंदनं तत्पश्चात् भोजनमिति प्रसिद्धः क्रमः तल्लं घनादेव अपक्रमं नाम दूषणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जहां वाक्यमें प्रसिद्ध क्रमका उल्लंघन हो उसे अपक्रम वाक्यदोष कहतेहैं जैसे किसीने भोजनकरके स्नानकिया और फिर गुरु और देवताओंको वंदना करी यहाँ प्रसिद्ध क्रमका लंघन होनेसे अपक्रम वाक्यदोष हुवा प्रसिद्धक्रम यह है कि पहले स्नान करना फिर गुरुदेवादिकी वंदना करना फिर भोजन करना परंतु यहां पहले भोजन फिर स्नान फिर गुरु देवादिवंदना होनेसे ही अपक्रम होगया ॥ २२ ॥

(उदाहरण दोहा) क्रम प्रसिद्ध लंघन किये, होत अपक्रम जाय।
तिलक किये न्हाये पिया पौढे पलँग बिछाय ॥

छंदोभ्रष्ट ।

छंदःशास्त्रविरुद्धं यच्छंदोभ्रष्टं हि तद्यथा ॥
स जयति जिनपतिः परब्रह्ममहानिधिः २३

टीका—यत् छंदःशास्त्रविरुद्धं तत् छंदोभ्रष्टं हि यथा स परब्रह्म महानिधिः जिनपतिः जयति इत्य-न्वयः ॥ छंदःशास्त्रेण विरुद्धं छंदःशास्त्रविरुद्धं परं

च तत् ब्रह्म च परब्रह्म परमात्मा स एव महानिधिः परब्रह्ममहानिधिः छंदोभ्रष्टत्वं पद्यवाक्ये छंदोबद्धे एव संभवति यथा स जयति जिनपतिः अत्र श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयमित्यनुष्टुप्छंदोलक्षणवैपरीत्यात् छंदोभ्रष्टत्वमेव ॥ २३ ॥

अर्थ–जो पद्यात्मक वाक्य छंदशास्त्रसे विरुद्ध हो उसे छंदोभ्रष्ट कहतेहैं जैसे वे परब्रह्म महानिधि जिनपति जयको प्राप्त हो यहां स जयति जिनपति अनुष्टुप् श्लोकका पद है और अनुष्टुप् के लक्षणोंसे विरुद्धहै अनुष्टुप्के लक्षण ये हैं कि " श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम् इत्यादि ॥ २३ ॥

(उदाहरण) दोहा–छंदोभ्रष्ट जो पद्यमें,छंदरीति विपरीत। कांता कंबल कुथ बिन, सभीको सतावे शीत ॥ दोहेके प्रथम और तीसरे चरणमें १३ मात्राहोती हैं और दूसरे चौथे पदमें ११ मात्रा यहां चौथेमें मात्रा बढनेसे छंदोभ्रष्ट हुवा ॥

रीतिभ्रष्ट ।

रीतिभ्रष्टमनिर्वाहो यत्र रीतेर्भवेद्यथा ॥
जिनो जयति स श्रीमानिंद्राद्यमरवंदितः ॥ २४ ॥

टीका–यत्र रीतेः अनिर्बाहो भवेत् (तत्) रीतिभ्रष्टम् यथा स इंद्राद्यमरवंदितः श्रीमान् जिनः जयति इत्यन्वयः ॥ इंद्राद्यमरवंदितः इंद्रादिभिः अमरैः देवैः वंदितः यत्र गौडी वैदर्भीत्यादिरीतीनां पूर्वापरतया

निर्बाहो न भवेत् तदा रीतिभ्रष्टं बाहुल्येन असमस्तानां पदानां प्रयोगो वैदर्भी रीतिः तथा च समासबाहुल्यतया पदप्रयोगो गौडी रितिः। तथा चोक्तं साहित्यदर्पणे।"माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका॥अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरुच्यते १ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बंधआडंबरः पुनः॥ समासबहुला गौडी रीतिरुक्ता मनीषिभिः॥ २॥"इति अत्रोदाहरणे प्रथमपदे वैदर्भी रीतिः द्वितीये गौडी इति रीतिविरोधाद्रीतिभ्रष्टम् ॥२४॥

अर्थ–जहां गौडी वैदर्भी आदि रीतियोंका पूर्वापर निर्वाह नहीं हो तो उसे रीतिभ्रष्ट कहतेहै जैसे वे इन्द्रादि देवताओं करके वंदित श्रीमान् जिन भगवान् जयको प्राप्तहो। यहां उदाहरण रूप उत्तरार्द्धके प्रथम पदमें वैदर्भी रीति प्रतीत होतीहै और दूसरेमें गौडी इससे आद्योपांत एक रीतिका निर्वाह न होनेसे रीतिभ्रष्ट दोष हुवा॥ जिसमें विशेष कर समासरहित पदोंका विशेष प्रयोग होताहै वह रीति वैदर्भी कहलातीहै और जहां विशेषकर समासांत पदोंका अधिक प्रयोग होताहै वह गौडी रीति होती है (भाषामें इस प्रकारकी रीतियां प्रतीत नहीं होती इससे उदाहरण नहीं दिया)॥ २४॥

यतिभ्रष्ट।

पदांतविरतिः प्रोक्तं यतिभ्रष्टं बुधैर्यथा॥
नमस्तस्मै जगत्स्वामिने सदा नेमयेऽर्हते॥ २५॥

टीका-पदांतार्विरतिः बुधैः यतिभ्रष्टं प्रोक्त यथा तस्मै जगत्स्वामिने अर्हते नेमये सदा नमः इत्यन्वयः॥ पदस्य विभक्त्यंतस्य अंतः मध्ये विरतिः विच्छेदः यथा जगत्स्वामिने अर्हते नमः अत्र जगत्स्वामिने विभक्त्यंतपदमध्ये जगत्स्वामि इत्यात्मके स्थाने पूर्व स्य पदस्य समाप्तित्वात् विरतिरेव एतस्मात् यतिभ्रष्टं नाम दूषणम् ॥ २५ ॥

अर्थ-जहां पदके बीचमें विराम अर्थात् तोड़ (छंदका विश्राम) आजावे तो उसे यतिभ्रष्ट कहतेहैं जैसे वे जो जगत्के स्वामी पूज्य नेमिनाथ हैं उनको प्रणाम हो यहांपर स्वामिने पदके बीचमें पहला पद समाप्त होनेसे केवल ने टूटकर अगले पदमें चला गया और बीचमेंसे पद टूटगया इससे यतिभ्रष्ट हुवा ॥ २५ ॥

(उदाहरण) दोहा-यतिभ्रष्टमें होतहै, पदके बीच विराम । जैसे रे नर जाय गं-गा तट भज हरिनाम ॥

असत्क्रिया ।

क्रियापदविहीनं यत्तदसत्क्रियमुच्यते । यथा सरस्वतीं पुष्पैः श्रीखंडैर्घुमृणैः स्तवैः ॥ २६ ॥

टीका--यत् क्रियापदविहीनं तत् असत्क्रियम् उच्यते । यथा पुष्पैः श्रीखंडैः घुसृणैः स्तवैः सरस्वतीं (अर्चयामीति) शेषेणान्वयः ॥ क्रियापदविहीनमित्यत्र

सत्क्रियापदहीनम् इति ना पाठांतरः असात्क्रियमसती न विद्यमाना क्रिया यत्र श्रीखंडैः चंदनैः घुसृणैः कुंकुमैः अत्र पूजयामि इत्यादि क्रियापदाभावात् असत्क्रियं नाम दूषणम् ॥ २६ ॥

अर्थ–जहां (क्रियासाध्य वाक्यमें) क्रियापद नहीं हो तो उसे असत्क्रिय दोष कहते हैं पुष्पोंसे चंदनसे केशरसे और स्तुतिसे सरस्वतीको इस इतने वाक्यमें कोई क्रियापद नहीं होनेसे असत्क्रिय दोष हुवा । तथा इसमें पूजयामि अर्थात् पूजन करूँ इस क्रियायोग किये बिना अर्थ नहीं होता इसीसे इस अनुक्त क्रियाका उपयोग होनेसे अर्थ हुवा ॥ २६ ॥

(उदाहरण) दोहा–क्रिया न हो जहँ वाक्यमें,ताहि असत्क्रिय जान । गंधाक्षत फल विमल जल, पुष्पोंसे भगवान ॥

दूषितवाक्य ।

देशकालागमावस्थाद्रव्यादिषु विरोधिनम्। काव्येष्वर्थं न बध्नीयाद्विशिष्टं कारणं विना ॥ २७ ॥

टीका–विशिष्टं कारणं विना देशकालागमावस्थाद्रव्यादिषु विरोधिनम् अर्थं काव्येषु न बध्नीयात् इत्यन्वयः ॥ देशविरोधिनं कालविरोधिनमागमविरोधिनमवस्थाविरोधिनं द्रव्यादिविरोधिनं च अर्थमितिभावः आदिशब्देन गुणक्रियाजात्यादीनां ग्रहणमेषु विषयेषु विरोधिनं विरुद्धतया प्रतिभासमानं विशिष्टं कारणं

विशेषकारणमसंगत्याद्यलंकाररूपकं विनेत्यर्थः । यदा देशकालादिविरोधिनं बध्नीयात् तदा दूषितं वाक्यं भवतीति फलितार्थः ॥ २७ ॥

अर्थ-किसी विशेष कारणके विना देशके विरुद्ध कालके विरुद्ध आगम (शास्त्र) के विरुद्ध अवस्थाके विरुद्ध तथा द्रव्यादिके विरुद्ध अर्थकी योजना करनी काव्यमें उचित नहीं, आदि शब्दसे गुणके विरुद्ध जातिके विरुद्ध इत्यादिकी योजना भी नही करनी चाहिये (विशेष कारणसे प्रयोजन कोई नियत कारण अथवा असंगति आदि अलंकार इत्यादि हैं अर्थात् कोई विशेष कारण या असंगति आदि अलंकारोंमें विरुद्ध अर्थ की योजना होसक्तीहै अन्यत्र नहीं) (और यदि कोई विशेष कारण विना देश कालादिके विरुद्ध अर्थकी योजना करे तो वह दूषित वाक्य होताहै इसका उदाहरण अगाड़ी लिखते हैं ॥ २७ ॥

प्रवेशे चैत्रस्य स्फुटकुटजराजिस्मित दिशि प्रचंडे मार्तंडे हिमकणसमानोष्म महसि । जलक्रीडायातं मरुसरसि बाल द्विपकुलं मदेनांधं विध्यंत्यसमशरपातैः प्रशमिनः ॥ २८ ॥

टीका--प्रशमिनः मदेन अंधं बालद्विपकुलम् असमशरपातैः विध्यंति कीदृशम् बालद्विपकुलं मरुसरसि जलक्रीडायातम् कदा चैत्रस्य प्रवेशे किंभूते चैत्रस्य प्रवेशे स्फुटकुटजराजिस्मितादिशि।पुनः कसति

हिमकणसमानोष्ममहसि मार्तंडे प्रचंडे सति इत्यन्वयः ॥ चैत्रस्य प्रवेशे वसंततौ स्फुटा विकसिता कुटजानां गिरिमल्लिकानां राजिः पंक्तिः स्फुटकुटजराजिभ्यः स्मिता दिशः यत्र तस्मिन् हिमस्य कणाः बिंदवः तैः समानानि ऊष्ममहांसि उष्णतेजांसि यस्य तस्मिन् जलक्रीडायै आयातं जल क्रीडायातं बालद्विपकुलं करिकलभवृन्दम् असमशरपातैः तीक्ष्णशरप्रहारैः अत्र चैत्रस्य प्रवेशे मार्तंडस्य प्रचंडत्वं कालविरुद्धम् मरुसरसि देशविरुद्धं मदेन अंधं बालद्विपकुलम् इति अवस्थाविरुद्धम् प्रशमिनः असमशरपातैः विध्यंति इति आगमविरुद्धं स्वभाव विरुद्धं च ॥ २८ ॥

अर्थ–फूलीहुई कुटज (पहाड़ीमल्लिका) की पंक्तियोंसे मानो हँसरही हैं दिशा जिसमें ऐसे चैत्रके प्रवेश अर्थात् वसंत ऋतुमें जब कि बरफके कणोंके समान है उष्णताकी तीक्ष्णता जिसमें ऐसे सूर्यके प्रचंड होनेपर मरु देश (बागड) के सरोवरोंमें क्रीडाके लिये आया हुवा जो मदांध (मतवाला) हाथीके बच्चोंका समूह उसको शान्ति वाले (मुनीश्वर) तीखे बाणोंके प्रहारसे मारते हैं यहां चैत्रके प्रवेशमें सूर्यका प्रचंड होना समय विरुद्ध है बागडके सरोवरोंमें क्रीडा देशविरुद्ध है हाथीके बच्चोंका मदांध (मतवाला पन) अवस्थाके विरुद्ध है तथा शांत मुनियोंके हाथीके बच्चे मारना शास्त्र (आगम) विरुद्ध है इसीसे ऐसे अर्थोंके प्रयोग करनेसे वाक्यदूषित कहलाता है ॥ २८ ॥

(भाषालक्षण) दोहा-देश समय वय आदिके, होत विरुद्ध प्रतीत। ऐसी कविता जनि करो, बिन कारण विपरीत ॥

(उदाहरण) बुढिया चढी पहाडते, उतरी सागर पार। पूंछ उठाकर देखले, होलीके दिन चार ॥

इति दोषविषनिषेकैरकलंकितमुज्ज्वलं सदा विबुधैः ॥ कविहृदयसागरोत्थितम मृतमिवास्वाद्यते काव्यम् ॥ २९ ॥

टीका-विबुधैः इति दोषविषनिसेकैः अकलंकितम् उज्ज्वलं कविहृदयसागरोत्थितं काव्यम् अमृतम् इव सदा आस्वाद्यते इत्यन्वयः॥इति दोषा एव विषाणि तेषां निषेकाः मिश्रीभावाः तैः अकलंकितं शुद्धम् उज्ज्वलं निर्मलं कवेः हृदयं कविहृदयं तदेव सागरः तस्मात् उत्थितं समुद्भूतं काव्यम् अमृतमिव विबुधैः पंडितैः सदा आस्वाद्यते ॥ २९ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त जो दोषरूप विष उनके संसर्गके कलंकसे रहित निर्मल और कविके हृदयरूप सागरसे उत्पन्न हुवा जो काव्य है उसे पंडित लोग अमृतकी भांति पान करते हैं अर्थात् उत्तम कविताका आनन्द लेना विद्वानोंको अवश्य परमप्रिय होता है२९॥

इति वाग्भटालकारे द्वितीयपरिच्छेदः ।

तृतीयपरिच्छेदः।

गुणाः।

अदोषावपि शब्दार्थौ प्रशस्येते न यैर्विना ॥ तानिदानीं यथाशक्ति ब्रूमोऽभिव्यक्तये गुणान् ॥ १ ॥ औदार्यं समता कांतिरर्थव्यक्तिः प्रसन्नता॥ समाधिः श्लेष ओजोथ माधुर्यं सुकुमारता ॥ २ ॥

टीका--अदोषौ अपि शब्दार्थौ यैः विना न प्रशस्येते तान् गुणान् इदानीम् अभिव्यक्तये यथाशक्ति ब्रूमः इत्यन्वयः ॥ अदोषौ उक्तानर्थकादिदोषरहितौ अभिव्यक्तये प्रकटीकरणाय ॥ १ ॥ औदार्यमित्यादि पदैर्वक्ष्यमाणं गुणानां संख्या व्याख्याता यथा १ औदार्यम्, २ समता, ३ कांतिः, ४ अर्थव्यक्ति, ५ प्रसन्नता, ६ समाधिः, ७ श्लेषः, ८ ओजः, ९ माधुर्यम्, १० सुकुमारता, इति दशसंख्यात्मका काव्यस्य गुणाः कथिता तेषां सोदाहरणानि लक्षणानि वक्ष्यंतेऽग्रे ॥ २ ॥

अर्थ--पूर्वाध्यायोक्त अनर्थकादि दोषोंसे रहित शब्दार्थ भी जिन गुणोंके विना श्रेष्ठताको प्राप्त नहीं होते उन गुणोंको परिज्ञात होनेके लिये हम अब अगाड़ी यथाशक्ति वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ वे गुण इस प्रकार हैं कि १ औदार्य, २ समता, ३ कांति, ४ अर्थव्यक्ति, ५ प्रसन्नता, ६ समाधि, ७ श्लेष, ८ ओज, ९

माधुर्य, १०सुकुमारता, ये १० गुण काव्यके होतेहैं (इनके लक्षण और उदाहरण अगाड़ीके श्लोकोंमें यथाक्रम वर्णन करतेहैं)॥२॥

औदार्य ।

पदानामर्थचारुत्वप्रत्यायकपदांतरैः ॥ मिलितानां यदाधानं तदौदार्यं स्मृतं यथा ॥ ॥ ३ ॥ गंधेभविभ्राजितधाम लक्ष्मीलीलाम्बुजच्छत्रमपास्य राज्यम् ॥ क्रीडागिरौ रैवतके तपांसि श्रीनेमिनाथोऽत्र चिरं चकार ॥ ४ ॥

टीका-अर्थचारुत्वप्रत्यायकपदांतरैः मिलितानां पदानांयत् आधानं तत्औदार्यं स्मृतम् यथाइत्यन्वयः॥ अर्थस्य चारुत्वं मनोज्ञत्वं तस्य प्रत्यायकानि प्रबोधकानि पदांतराणि तैः अर्थचारुत्वप्रत्यायकपदांतरैः मिलितानां परस्परसंमिलितानां पदानां विभक्त्यंतानां यत् आधानम् आरोपणं स्यात् तत् औदार्यं नाम गुणः स्यात् । यथेति वक्ष्यमाणोदाहरणार्थम् ॥ ॥ ३ ॥ (औदार्यस्योदाहरणं दर्शयति गंधेभेति) श्रीनेमिनाथः अत्र रैवतके क्रीडागिरौ चिरं तपांसि चकार (किं कृत्वा) राज्यम् अपास्य कीदृशं राज्यं गंधेभविभ्राजितधाम । पुनः कीदृशं लक्ष्मीलीलांबुजच्छत्रम् इत्यन्वयः ॥ गंधप्रधानाः इभा हस्तिनः गंधेभाः तैः

विभ्राजितानि शोभितानि धामानि यस्मिन् तथोक्तं राज्यं लक्ष्म्याः राजश्रियाः लीलाम्बुजम् इव छत्रं यस्मिन् तथोक्तं च राज्यम् इतिभावः। अत्र गंधशब्देन इभानां लीलांबुजशब्देन च छत्रस्य तेनैव राजश्रियाः चारुत्वं द्योत्यते तेन औदार्यं नाम गुणः ॥ ४ ॥

अर्थ–(चारुत्वअर्थ अर्थकी श्रेष्ठता) के बोधक पदांतरों करके संमिलित पदोंका जहां आधान (नियोजन हो) उसे औदार्य नाम गुण कहते हैं ॥ ३ ॥ (जैसे) श्रीनेमिनाथ रैवतक नाम क्रीडापर्वत पर चिरकाल तक तप करते भये क्याकरके कि मदकी गंधवाले हस्तियोंसे शोभित धाम और राजलक्ष्मीके लीला कमलके समान छत्रयुक्त राज्यको छोडकर: यहां गंधसे हस्तियोंका और लीलांबुज शब्दसे हस्तियोंका तथा लक्ष्मीका और छत्रका तथा इन सबसे राज्यश्रीका चारुत्व (श्रेष्ठत्व) द्योतन होताहै इससे औदार्य नामक गुण हुवा ॥ ४ ॥

(भाषा) दोहा–मिलित चारुता बोधकर, होत पदोंका योग।
ताहि कहत औदार्य गुण काव्यरशिग जे लोग ॥ १ ॥

यथा– गंधहस्तिशोभित सदन, श्रीरतिपंकज छत्र।
नेमिराज तज कीन्ह तप, रैवत गिरि एकत्र ॥ २ ॥

समता और कांति।

बंधस्य यदवैषम्यं समता सोच्यते बुधैः॥
यदुज्ज्वलत्वं तस्यैव सा कांतिरुदिता यथा ॥ ५ ॥

टीका--बंधस्य यत् अवैषम्यं बुधैः सा समता उच्यते तस्य एव यत् उज्ज्वलत्वं सा कांतिः उदिता-(यथावक्ष्यमाणोदाहरणार्थम् इत्यन्वयः) ॥ बंधस्य श्लोकादेः अवैषम्यं विषमतारहितत्वम् उज्ज्वलत्वम्-उद्दीप्तत्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ--बंध अर्थात् श्लोकादिकी रचनामें अवैषम्य विषमताका अभाव अर्थात् समता (सरलता) होतो उसे "समता" नामक गुण कहतेहैं और जहां बंध (श्लोकादि) में अर्थ तथा-पदोंकी उज्ज्वलता हो तो उसे "कांति" नाम गुण जानो॥ ५ ॥

(भाषा) दोहा--अविषमता जहँ बंधमें, सो समता गुन जान। जहँ उज्ज्वल हों अर्थ पद सो गुन कांति बखान ॥

समताका उदाहरण ।

कुचकलशविसारिस्फारलावण्यधारामनु वदति यदंगासंगिनी हारवल्ली ॥ असदृशमहिमानं तामनन्योपमेयां कथय कथ महंते चेतसि व्यंजयामि ॥ ६ ॥

टीका--यदंगासंगिनी हारवल्ली ताम् अनन्योपमेयाम् असदृशमहिमानं कुचकलशविसारिस्फारलावण्य धाराम् अनुवदति अहं ते चेतसि कथं व्यंजयामि (इति) कथय इत्यन्वयः ॥ यदंगासंगिनी अंगस्थिता हारवल्ली हारलता अनन्योपमेयाम् अन्याभिः

उपमातुम् अशक्याम् असदृशमहिमानम् असामान्य महत्वयुक्तां कुचकलशयोः विसारिणी प्रसारिणी स्फारा उत्कटा लावण्यधारा यस्याः ताम् अनुवदति अनुकथयति ते चेतसि तव हृदये कथं व्यंजयामि। अत्र अवैषम्येन समता नाम गुणः स्यात्॥ ६॥

अर्थ—कांताके अंगस्थित हारवल्ली (हारकी लडी) उस अनन्योपमेय अर्थात् जिसकी उपमा नहीं होसके और असामान्य महत्व युक्त कुचकलशों पर फैली हुई उत्कट लावण्यकी धारा हैं जिसके उसके प्रति कहतीहैं कि तेरे हृदय पर मैं किस प्रकारसे प्रकाशमान हो सक्तीहूं अर्थात् तेरे कुचकलशोंपर लावण्यकी उत्कट धारा मुक्ता रूपसे शोभायमान है फिर कहो मैं हारकी एक लड़ी तेरे हृदय पर कैसे प्रकाशमान हो सक्ती हूँ अर्थात् लावण्यधाराके सामने मैं प्रकाशमान नहीं हो सक्ती यहां बंधकीविषमता नहीं होनेसे समता नाम गुण हुवा॥ ६॥

(भाषा) दोहा—कुचपर अति लावण्यकी, शोभित धार अपार। मुक्तामाणकसम जटित, कहा वापुरो हार॥

क्रांतिका उदाहरण।

फलैः कृत्साहारः प्रथममपि निर्गत्य सदनादनासक्तः सौख्ये क्वचिदपि पुराजन्मनि कृती॥ तपस्यन्नश्रांतं ननु वनभुवि श्रीफलदलैरखंडैः खंडेन्दोश्चिरमकृत पादार्चनमसौ॥ ७॥

टीका--असौ पुराजन्मनि कृती प्रथमम् अपि सदनात् निर्गत्य वनभुवि अखंडैः श्रीफलदलैः खंडेन्दोः पादार्चनं चिरम् अकृत किं कुर्वन् ननु अश्रांतं तपस्यन् कथंभूतोसौ क्वचित् अपि सौख्ये अनासक्तः पुनः किंभूतोसौ फलैः कृताहारः इत्यन्वयः ॥ पुराजन्मनि कृती पूर्वजन्मनि कृतसत्कर्मा सदनात् गृहात् निर्गत्य गत्वा सौख्ये अनासक्तः सुखभोगे आसक्तिरहितः अश्रांतम् अविरतं तपस्यन् तपः कुर्वन् ननु निश्चयेन श्रीफलदलैः बिल्वपत्रैः अखंडैः अखंडितैः खंडेंदोः शिवस्य पादार्चनम् अकृत चरणपूजनं कृतवान् इत्यर्थः ॥ ७ ॥

अर्थ--यह पुरुष जिसने पूर्व जन्ममें सुकर्म कियाहै प्रथम ही घरसे निकलकर बनकी भूमिमें अखंडित बिल्वपत्रोंसे शिवजीकी बहुत समय तक पादार्चन (चरणपूजा) करताभया क्या करता हुवा अविश्रांत तपश्चर्या करता हुवा कैसा पुरुषहै फलोंसे ही आहार कल्पना कर रक्खाहै जिसने तथा कभी भी सुख भोगोंमें आसक्त नहीं हुवाहै यहांपर बंधमें शब्द और अर्थकी उज्ज्वलता होनेसे कांति गुण है ॥ ७ ॥

(भाषा) दोहा--इस कृतिने पर जन्ममें, तज घर बनफल खाय। बिल्वदलनसे हर चरण पूजे अति चितलाय ॥

अर्थव्यक्ति ।

यदमेयत्वमर्थस्य सार्थव्यक्तिः स्मृता

यथा ॥ त्वत्सैन्यरजसा लुप्ते सूर्ये रात्रिरभूद्दिवा ॥ ८ ॥

टीका–यत् अर्थस्य अमेयत्वं सा अर्थव्यक्तिः स्मृता यथा त्वत्सैन्यरजसा सूर्ये लुप्ते (सति) दिवा रात्रिः अभूत् इत्यन्वयः ॥ अमेयत्वं प्रमाणस्य अनावश्यकत्वं--सुखबोध्यत्वं वा सूर्ये लुप्ते तु अवश्यम् एव रात्रिर्भवितुमर्हति नात्र प्रमाणावश्यकत्वम् अतोऽर्थव्यक्तिनामको गुणः ॥ ८ ॥

अर्थ–जहां अर्थको प्रमाणकी आवश्यकता न हो अथवा सुखबोध्यता हो उसे अर्थव्यक्ति नामक गुण कहतेहैं जैसे तुम्हारी सेनाकी रजसे सूर्य लोप होनेपर दिनसे रात्री होगई जबकि सूर्य लोप होजाताहै तब रात्रि होती है इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं और अर्थकी सुखबोधता भी है इसीसे अर्थव्यक्ति गुण हुवा ॥ ८ ॥

(भाषा) दोहा–जहँ अमेयता अर्थमें, अर्थव्यक्ति बरवान। तुम दल रज सूरज छिपे, दिन हो रजनि समान ॥

प्रसन्नता।

झटित्यर्थापकत्वं यत्प्रसत्तिः सोच्यते यथा ॥ कल्पद्रुम इवाभाति वांछितार्थप्रदो जिनः ॥ ९ ॥

टीका--यत् झटिति अर्थापकत्वं सा प्रसत्तिः उच्यते यथा वांछितार्थप्रदो जिनः कल्पद्रुम इव आभाति इत्यन्वयः ॥झटितीत्यव्ययं शीघ्रम् अर्थापकत्वम् अर्थस्य आपकत्वं बोधकत्वं सा प्रसत्तिः प्रसादः वा प्रसन्नता नाम गुणः । यथा कल्पद्रुमवत् वांछितार्थप्रदः वांछितस्य अर्थस्य प्रदाता इति अत्र शीघ्रार्थावबोधकत्वात् प्रसन्नता नाम गुणः स्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ-जहां शीघ्र श्रवणमात्रसे ही अर्थका बोध होजावे तो उसे प्रसत्ति अर्थात् प्रसाद अथवा प्रसन्नता नाम गुण कहतेहैं जैसे कल्पवृक्षकी तुल्य वांछित अर्थके देने वाली जिन शोभाको प्राप्त होतेहैं यहां पर शीघ्रही अर्थका बोध होनेसे प्रसत्ति अर्थात् प्रसाद या प्रसन्नता नाम गुण हुवा ॥ ९ ॥

(भाषा) दोहा-अर्थबोध जहँ शीघ्र हो, सो प्रसाद गुण नाम।
सोहहिं सुरतरु सम सदा, वांछितार्थप्रद राम ॥

समाधि ।

स समाधिर्यदन्यस्य गुणोन्यत्र निवेश्यते ॥ यथाऽश्रुभिररिस्त्रीणां राज्ञः पल्लवितं यशः ॥ १० ॥

टीका--यत् अन्यस्य गुणः अन्यत्र निवेश्यते स समाधिः । यथा अरिस्त्रीणाम् अश्रुभिः राज्ञो यशः पल्लवितम् इत्यन्वयः ॥ अन्यस्य वस्तुनो गुणः अन्यस्मिन् वस्तुनि यत्र निवेश्यते यथा शत्रुवनिताश्रुभिः

राज्ञो यशसि पल्लवितत्वं लतावृक्षादेर्गुणो निवेश्यते अनेन समाधिर्नाम गुणो भवति ॥ १० ॥

अर्थ--जहां अन्य वस्तुका गुण अन्यमें नियुक्त किया जावे तो वह समाधि नाम गुण कहाताहै जैसे शत्रुवोंकी स्त्रियोंके आँसुवोंसे राजाका यश पल्लवित होगया अर्थात् यशमें अंकुर फूटकर सपत्र होगया (वृद्धिको प्राप्तहुवा) यहां शत्रुकी स्त्रियोंके आँसुवोंसे राजाके यशमें पल्लवित होना लता वृक्षादिका गुण निविष्ट हुवा इससे समाधि नाम गुण होगया ॥ १० ॥

(भाषा) दोहा—सो समाधिगुण अन्यके, हो निवेश अन्यत्र । अरिनारी अँसुवनसुं हों, नृपयश अंकुर पत्र ॥

श्लेष और ओजके लक्षण ।

श्लेषो यत्र पदानि स्युः स्यूतानीव परस्परम् । ओजः समासभूयस्त्वं तद्गद्येष्वतिसुंदरम् ॥ ११ ॥

टीका--यत्र पदानि परस्परं स्यूतानि इव स्युः स श्लेषः । समासभूयस्त्वम् ओजः तत् गद्येषु अतिसुंदरम् इत्यन्वयः ॥ स्यूतानि गुंफितानि संश्लिष्टानि समासभूयस्त्वं समासबाहुल्यं तत् ओजः गद्येषु अतिसुंदरम् ॥ ११ ॥

अर्थ--जहां परस्पर आपसमें गुंफित हुए से पद हों वह श्लेष नामक गुण कहलाता है । और समासकी बहुलता होना अर्थात् मनोहर बडे समास होना ओज नामक गुण कहलाता है

और वह ओज नामक गुण विशेष करके गद्यमें अतिसुंदर होता है ॥ ११ ॥

श्लेषका उदाहरण ।

मुदा यस्योद्गीतं सह सहचरीभिर्वनचरै-
र्मुहुः श्रुत्वा हेलोद्धतधरणिभारं भुजबलम्।
दरोद्गच्छद्दर्भांकुरनिकरदंभात्पुलकिता-
श्चमत्कारोद्रेकं कुलशिखरिणस्तेपि द-
धिरे ॥ १२ ॥

टीका-यस्य हेलोद्धतधरणिभारं भुजबलं सहच-
रीभिः सह वनचरैः मुदा उद्गीतं मुहुः श्रुत्वा कुल-
शिखरिणः ते अपि दरोद्गच्छद्दर्भांकुरनिकरदंभात्
पुलकिताः चमत्कारोद्रेकं दधिरे इत्यन्वयः ॥ हेलया
लीलया उद्धृतः धरणेर्भारः येन तत् भुजबलं बाहुबलं
मुदा हर्षेण उद्गीतम् उच्चैर्गीतं दरोद्गच्छद्दर्भांकुरनिकर-
दंभात् इति दर ईषत् उद्गच्छंतो ये दर्भांकुराः तेषां
निकरः समूहः तस्य दंभात् व्याजात् पुलकिताः कुल-
शिखरिणः कुलपर्वताः चमत्कारस्य उद्रेकम् आधिक्यं
चमत्कारोद्रेकं दधिरे धृतवंतः "महेंद्रो निषधः सह्यः
शुक्तिमान् पारियात्रकः ॥ विंध्यो हिमगिरिश्चैव सप्तैते
कुलपर्वताः" अत्र पदानां परस्परं स्यूतत्वेन श्लेषो
गुणः स्यात् ॥ १२ ॥

अर्थ-इस (राजा) की लीला करके धारण किया है धरणीका भार जिसमें ऐसे भुजबलको सहचरी सहित बनचरों करके आनंदसे खूब गाया हुवा बार बार सुनकर कुलपर्वत (बडे बडे पर्वत) वे भी थोडे थोडे निकले हुए दर्भके अंकुरोंके समूहके दंभ (मिस) से पुलकित हुए हुए चमत्कारके उद्रेकको धारण करते भये (महेन्द्र निषध सह्य शुक्तिमान् पारियात्र विंध्य और हिमाचल इन सात पर्वतोंको कुलपर्वत कहते हैं) यहां परस्पर पदोंमें गुंफना सी होनेसे श्लेष गुण हुवा ॥ १२ ॥

(भाषा) दोहा-होत परस्पर पद जहां, गुंफित से सो श्लेष। तरुवर तर वरविनतियहिं, युगसम जात निमेष ॥

ओजका उदाहरण।

समराजिरस्फुरदरिनरेशकरिनिकराशिरः सरसासिंदूरपूरपरिचयेनेवारुणितकरतलो देवः ॥ १३ ॥ इतिगद्यम् ॥

टीका-देवः (राजा) समराजिरस्फुरदरिनरेशकरिनिकराशिरःसरसासिंदूरपूरपरिचयेन इव अरुणितकरतलः इत्यन्वयः ॥ समरः एव अजिरम् अंगणं तत्र स्फुरंति यानि अरिनरेशानां करिनिकरस्य हस्तिसमूहस्य शिरांसि तेषु सरसा आर्द्रा ये सिंदूरपूराः तेषां परिचयेन संगेन इव अरुणितकरतलः रक्ताकृतकरतलः तथाभूतो देवः राजा भातीति शेषः। अत्र समासबाहुल्येन ओजो नाम गुणः स्यात् ॥ १३ ॥

अर्थ--देव (राजा) अरुणित करतल अर्थात् रक्त होरहीहैं हाथोंकी हथेली जिसकी (सो शोभाको प्राप्त होरहाहै) (मानो) समररूपी अंगणमें स्फुरायमान जो शत्रु नरेशोंके गज समूहके शिर उनपर जो सरस गीला सिंदूर पूर (सिंदूरकी पूरणा) उसके परिचय (संयोग) से ही हाथलाल होगयेहैं यहां इस गद्यमें समासकी बहुलता होनेसे ओज नामक गुण हुवा ॥ १३ ॥

"प्रचलित हिंदी भाषाके गद्य सरल निबंधों उपन्यासों में अधिक समास युक्त वाक्योंका विशेष उपयोग नहीं होता इससे भाषा उदाहरण नहीं लिखा ॥

माधुर्य और सौकुमार्यके लक्षण ।

सरसार्थपदत्वं यत्तन्माधुर्यमुदाहृतम् ॥
अनिष्ठुराक्षरत्वं यत्सौकुमार्यमिदं यथा १४

टीका--यत् सरसार्थपदत्वं तत् माधुर्यम् उदाहृतम् । यत् अनिष्ठुराक्षरत्वं (तत्) इदम् सौकुमार्यम् इत्यन्वयः ॥ यथा वक्ष्यमाणोदाहरणार्थं सरसार्थपदत्वं सरसार्थत्वं सरसपदत्वं च अनिष्ठुराक्षरत्वं वर्णानां कोमलत्वं तत् सौकुमार्यं शृंगारकरुणादि रसेषु विशेषतो ग्राह्यम् ॥ १४ ॥

अर्थ--जो अर्थ तथा पदोंमें सरसत्व हो तो उसे माधुर्य नामक गुण कहते हैं और जहां अक्षर कठोर न हो उसे सौकुमार्य (सुकुमारता गुण) समझे यह सुकुमारता गुण शृंगार करुणादि रसोंमें विशेष कर ग्राह्य और श्रेष्ठ समझाजाता है ॥ १४ ॥

(भाषा) दोहा--सरस अर्थ पद हों जहां, तिहिं माधुर्य निहार । जहँ कठोर अक्षर न हों, सो गुण हो सुकुमार ॥

माधुर्यका उदाहरण।

फणमणिकिरणालीस्यूतचंचन्निचोलः कुचकलशनिधानस्येव रक्षाधिकारी॥ उरसि विशदहारस्फारतामुज्जिहानः किमिति करसरोजे कुंडली कुंडलिन्याः १५॥

टीका--कुंडलिन्याः करसरोजे कुंडली किम् इति किंभूतः कुंडली फणमणिकिरणालीस्यूतचंचन्निचोलः कुचकलशनिधानस्य रक्षाधिकारी इव उरसि विशद हारस्फारताम् उज्जिहानम् इत्यन्वयः॥ कुंडलिन्याः कुंडलं कर्णभूषणं विद्यते यस्याः सा कुंडलिनी तस्याः करसरोजे हस्तकमले कुंडली सर्पः किम् इति कथम् इत्यर्थः। फणे मणिः फणमणिः तस्य किरणाली किरणानां पंक्तिः तया स्यूतः व्याप्तः चंचन् स्फुरन् निचोलः कंचुकः यस्य तथाभूतः कुंडली कुच एव कलशः कुचकलशः कुचकलशे निधानं निधिरूपकं तस्य रक्षाधिकारी रक्षायां नियुक्त इव उरसि हृदये विशदः स्वच्छः यः हारः तद्वत् स्फारताम् उज्ज्वलताम् उज्जिहानः प्राप्नुवन् नायिकाया हस्तस्थितं हारं दृष्ट्वा सर्पभ्रांत्या कस्यचित् कामिन उक्तिरियम् अत्र सरसार्थपदत्वेन माधुर्यं नाम गुणः॥ १५॥

अर्थ-कुंडल कर्णभूषणोंसे अलंकृत कामिनीके हाथमें सर्प क्यों है कैसा सर्प कि फणकी मणिकी किरणपंक्तियोंसे व्याप्त होरही है स्फुरित निचोल अर्थात् कंचुकी जिसकी और कुच-कलशके खजानेका मानो रक्षाधिकारी (रखवाला) ही है और हृदयपर उज्ज्वल हारकी शोभाको प्राप्त होरहा है (अर्थात् किसी सुंदरीने अपने वक्षःस्थलके हारको हाथमें लेलिया है उसे देखकर किसी कामीको सर्पकी भ्रांति हुई उसका यह वचन है) यहांपर अर्थ और पदोंकी सरसता होनेसे माधुर्य नामक गुण हुवा॥१५॥

(भाषा) दोहा-फण मणि किरण समूहसे, द्योतित सरस निचोल । कुचनिधि रक्षक हार सम तिय कर अहि किमिलोल ॥

सौकुमार्यका उदाहरण ।

प्रतापदीपांजनराजिरेव देव त्वदीयः करवाल एषः ॥ नोचेदनेन द्विषतां मुखानि श्यामायमानानि कथं कृतानि ॥ १६ ॥

टीका-हे देव त्वदीय एषः करवालः प्रतापदीपांजनराजिः नो चेत् एव (तदा) अनेन द्विषतां मुखानि श्यामायमानानि कथं कृतानि इत्यन्वयः ॥ हे देव हे राजन् त्वदीयः तावकः करवालः खड्गः प्रताप एव दीपः तस्य अंजनराजिः कज्जलश्रेणी यदि नोचेदेव (तदा) अनेन खड्गेन द्विषतां वैरिणां मुखानि आननानि श्यामायमानानि कृष्णानि कथं कृतानि ॥ १६ ॥

अर्थ–हे राजन् यह तेरा खड्ग जो कि प्रतापके दीपकके कज्जल की श्रेणी नहीं हो तो इसने शत्रुवोंके मुहँ काले कैसे कर दिये (वस्तुतः यह आपका खड्ग प्रतापके दीपकके कज्जलकी श्रेणी ही है मानों इसीसे इसने शत्रुवोंके मुहँ काले करदिये हैं) यहां कठोर अक्षर नहीं होनेसे सुकुमारता गुण हुवा ॥ १६ ॥

(भाषा) दोहा–तव प्रताप दीपक मसी, जो नहिं हो करबाल। सो इन किस विध करदिये, शत्रुनके मुख काल ॥

गुणैरमीभिः परितोऽनुविद्धं मुक्ताफलानामिव दाम रम्यम् ॥ देवी सरस्वत्यपि कंठपीठे करोत्यलंकारतया कवित्वम् ॥१७॥

टीका–देवी सरस्वती (कवेर्बुद्धिः) अपि अमीभिः गुणैः परितो अनुविद्धं कवित्वम् अलंकारतया कंठपीठे मुक्ताफलानां रम्यं दाम इव करोति इत्यन्वयः॥ सरस्वती कवेः प्रतिभा बुद्धिः अमीभिः उक्तैः औदार्यादिगुणैः गुणशब्देन सूत्रैरिति ध्वनितोर्थः। अनुविद्धं स्यूतं कवित्वं काव्यं मुक्ताफलानां रम्यं दाम इव कंठपीठे कंठदेशे अलंकारतया भूषणतया करोति (धारणं करोति) ॥ १७ ॥

अर्थ–सरस्वती कविकी बुद्धि इन औदार्यादि गुणोंसे अनुविद्ध (पिरोयी हुई) व्याप्त जो कविता है उसे आभूषण रूपसे मोतियोंकी रमणीक मालाकी भांत कंठदेशमें धारण करतीहै॥ १७॥

इति वाग्भटालंकारे तृतीयपरिच्छेदः ।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

दोषैर्मुक्तं गुणैर्युक्तमपि येनोज्झितं वचः ॥
स्त्रीरूपमिव नो भाति तं ब्रुवे लंक्रियोच्चयम् ॥ १ ॥

टीका--दोषैर्मुक्तं गुणैः युक्तम् अपि येन उज्झितं वचः स्त्रीरूपम् इव नो भाति तम् अलंक्रियोच्चयं ब्रुवे इत्यन्वयः ॥ दोषैः अनर्थादिकैः मुक्तं रहितं गुणैः औदार्यादिभिः युक्तं सहितं वचः काव्यम् उज्झितं त्यक्तम् अलंक्रियोच्चयम् अलंकारसमूहम् ॥ १ ॥

अर्थ-दोषों करके रहित और गुणों करके सहित भी वचन (काव्य) जिसके विना स्त्रीके रूपके समान शोभाको प्राप्त नहीं होता उस अलंकार समूहको (अब) वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अलंकारगणना ।

चित्रं वक्रोक्त्यनुप्रासो यमकं श्लेष्यलंक्रियाः ॥ अर्थालंकृतयो जातिरुपमा रूपकं तथा ॥ २ ॥ प्रतिवस्तूपमा भ्रांतिमानाक्षेपोऽथ संशयः ॥ दृष्टांतव्यतिरेकौ चापह्नुतिस्तुल्ययोगिता ॥ ३ ॥ उत्प्रेक्षार्थांतरन्यासः समासोक्तिर्विभावना ॥ दीपकातिशयौ हेतुः पर्यायोक्तिः

समाहितम् ॥ ४ ॥ परिवृत्तिर्यथासंख्यं विषमः स सहोक्तिकः ॥ विरोधोऽवसरः सारं संश्लेषश्च समुच्चयः ॥ ५ ॥ अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादेकावल्यनुमापि च॥परिसंख्या तथा प्रश्नोत्तरं संकर एव च ॥ ६ ॥

टीका–चित्रं वक्रोक्तिः अनुप्रासः यमकम् एते चत्वारः ध्वन्यलंक्रियाः शब्दालंकाराः अर्थालंकाराश्च जात्यादयः संकरांताः पंचभिः श्लोकैः अलंकाराणां नामान्येव (एषामन्वयः सरलः) ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अर्थ–इन पांच श्लोकोंमें केवल अलंकारोंके नाम मात्रकी गणना है जिसमें आरंभमें चित्र वक्रोक्ति अनुप्रास और यमक ये चार शब्दालंकार हैं और जातिकी आदिले संकर पर्यंत अर्थालंकारोंके नामोंकी गणना है इन सबके जुदे जुदे लक्षण भेद तथा उदाहरण अगाड़ी लिखे जावेंगे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥५॥ ६॥

यत्रांगसंधिस्तद्रूपैरक्षरैर्वस्तुकल्पना ॥ सत्यां प्रसत्तौ चित्रं स्यात्तच्चित्रं चित्रकृच्च यत् ॥ ७ ॥

टीका–यत्र प्रसत्तौ सत्यां यत् तद्रूपैः अक्षरैः वस्तु कल्पना चित्रं (यथा भवति तथा) चित्रकृत् अंगसंधिः स्यात् तत् चित्रम् इत्यन्वयः ॥ प्रसत्तौ सत्य

प्रसादगुणसत्त्वे तद्रूपैः तदनुकूलैः अक्षरैः वर्णैः वस्तुनः प्रतिपाद्यस्य कल्पना चित्रकृत् चमत्कारकृत् अथवा चित्ररूपकृत् अंगसंधिः अंगसंकलनं स्यात् तत् चित्रं चित्रनामकं शब्दालंकारः ॥ ७ ॥

अर्थ-जहां प्रसाद गुण होनेपर तद्रूप अक्षरोंसे चित्र होजावे तैसे वस्तु कल्पना रूपक चमत्कार करनेवाला अंग संकलन होजावे तौ उसे चित्र नामक शब्दालंकार कहतेहैं जैसे अक्षरोंसे कमल छत्र मुकुट आदि आकार बनजावें उसे पद्मबंध छत्रबन्ध आदि चित्रकाव्य कहते हैं ॥ ७ ॥

पद्मबंधचित्रका उदाहरण ।

जनस्य नयनस्थानध्वान एनश्छिनत्त्वि-
नः ॥ पुनःपुनर्जिनः पीनज्ञानध्यानधनः
स नः ॥ ८ ॥

टीका-स जिनः नः एनः पुनःपुनः छिनत्तु कीदृशो जिनः जनस्य नयनस्थानध्वानः पुनः कीदृशः इनः पुनः कीदृशो जिनः पीनज्ञानध्यानधनः इत्यन्वयः ॥ ध्वान इत्यत्र मानः इति वा पाठः । जनस्य लोकस्य नयनं स्थानं यस्य तादृशो ध्वानः निर्वाणप्रवर्तकशब्दः मानः पक्षे जनस्य नयनस्थानं तदेव मानं यस्य इनः स्वामी पीनज्ञानध्यानधनः पीनं महत् ज्ञानं ध्यानं

च धनं यस्य स नः अस्माकम् एनः पापं पुनःपुनः वारंवारं छिनत्तु नाशयतु ॥ एषः षोडशदलपद्मबंधः तथा गोमूत्रिकाबंधश्च ॥ ८ ॥

अर्थ–वे जिन भगवान् हमारे पापोंको बारबार नाश करो कैसेहैं जिन जनोंके नयनस्थान वहीहैं ध्वान (निर्वाणप्रवर्तकवचन- जिनके और ध्वानको कई मान ऐसा पाठांतर मानतेहैं अर्थात् मनुष्योंके नयनस्थान ही हैं मान (सन्मान) जिनका तथा फिर कैसे जिनहै कि इन अर्थात् पूज्यअथवा स्वामीहै और फिर कैसे हैं कि बृहत् ज्ञान और ध्यान ही है धन जिनका ॥ यह षोड शदलपद्मबंधहै तथा गोमूत्रिका बंध भी होसक्ताहै देखो चित्र ॥८॥

षोडशदलपद्मबंधचित्रस्य स्वरूपम्.

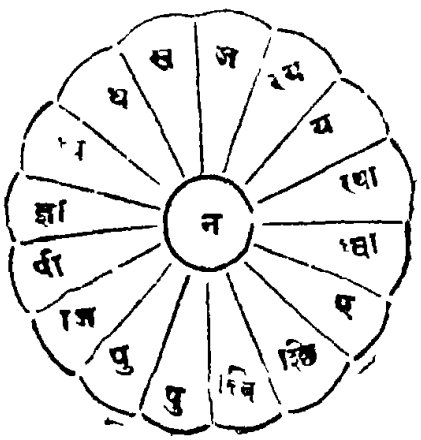

अयमेवगोमूत्रिकाबंधश्च यथा ।															
ज	न	स्य	न	य	न	स्था	न	ध्या	न	ए	न	श्छि	न	स्वि	न
पु	न.	पु	न	जि	न	पी	न	ह्मा	न	ध्या	न	ध	न	स	नः

गणवरगणवरकरतरचरण! परपदशरण-गजनपथकथक! ॥ अमदन! गतमद! गजकरयमल! शममय! जय भयघन-वनदहन!॥ ९॥

टीका-(हे) गणवरगणवरकरतरचरण (हे) परपद शरणगजनपथकथक (हे) अमदन (हे) गतमद (हे) गजकरयमल (हे) शममय (हे) भयघनवनदहन (त्वं) जय इत्यन्वयः॥ गणेषु वराः तेषां गणः संघः तस्य वरं वांछितार्थम् अतिशयेन करोति एवंभूतौ चरणौ यस्य तत्संबुद्धिः हे गणवरगणवरकरतरचरण परपदं निर्वाणं तस्मै शरणगा ये जनाः तेषां पथः पंथाः तस्य कथकः तत्संबुद्धिः हे परपदशरणगजनपथकथक हे अमदन मदेन रहित हे गतमद गतो मदः यस्मात् तत्संबुद्धिः तथा गजस्य करमिव करयमलं यस्य तत्संबुद्धिः हे गजकरयमल हे शममय शांतिरूप भय एव घनवनं तस्य दहनः तत्संबुद्धिः हे भयघनवनदहन त्वं जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व (एतत् एकस्वरचित्रम्)॥९॥

अर्थ-गणोंमें जो श्रेष्ठ सो गणवर उनके गण उनको वर वांछितार्थ करने वाले अतिशय करके हैं चरण जिनके तथा परपद (निर्वाण) के अर्थ शरणागत जो जन (मनुष्य) उनके मार्ग के उपदेश करने वाले तथा अमदन (कामदेव करके रहित)

और गतमद मदरहित तथा गजके कर (सुंड) वत् विशाल हैं दोनों भुजा जिनकी तथा शांतिमय और भयरूप घनघन उसके दग्ध करने वाले ऐसे जो श्रीजिनभगवान् आप जय हो। यह एक स्वर चित्र है अर्थात् इसमें अकारके सिवाय और स्वर (मात्रा) नहीं है ॥ ९ ॥

मूलस्थितिमधःकुर्वन् पात्रैर्जुष्टो गताक्षरैः ॥ विटः सेव्यः कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः ॥ १० ॥

टीका--मूलस्थितिम् अधःकुर्वन् सन् गताक्षरैः पात्रैः जुष्टः स विटः कुलीनस्य पथिकस्य तिष्ठतः सेव्यः इत्यन्वयः ॥ अत्र इकारच्युतौ विटस्थाने वटः इति चित्रम्। विटपक्षे मूलस्थितिं द्रव्यात्मिकां शक्तिम् अधः कुर्वन् भूतले संस्थापयन् अथवा मूलस्थितिम् अधः कुर्वन् द्रव्यानुरूपम् आडंबरं न संपादयन् सन् गताक्षरैः पात्रैः जुष्टः विद्याविहीनैः सत्पात्रैः जुष्टः युक्तः अथवा गताक्षरैः गतः आसमंतात क्षरः क्षरणं येभ्यः तथाभूतैः पात्रैः भांडादिभिर्जुष्टः स विटः महाजनः वैश्यः कुलीनस्य सत्कुलप्रसूतस्य पथिकस्य पथिवर्त्तमानस्य तिष्ठतः स्थितस्य सेव्यः सेवायोग्यः।तथा च वटपक्षे मूलस्थितिं मूलैः शिफाभिः स्थितिम् अधः कुर्वन् तलप्रदेशे कुर्वन् सन् गताक्षरैः पात्रैः गतानि प्राप्तानि अक्षरा-

णि दृढानि तथाभूतैः पात्रैः पत्रसमूहैः जुष्टः युक्तः स वटः कुलीनस्य कौ पृथिव्यां लीनस्य अध्वगमनश्रमादवसादं गतस्य एवंभूतस्य तिष्ठतः पथिकस्य सेव्यः सेवायोग्यः ॥ १० ॥

अर्थ—इस श्लोकमें विट शब्द इकार मात्रा हटानेसे वट होजाताहै और दोनों प्रकारसे अर्थ होताहै १ (विटपक्षमें) विटका अर्थ महाजन वैश्य है तहा मूलस्थितिको दबाते हुए सादे सत्पात्रों या नवीन बडे पात्रोंसे युक्त वह विट (महाजन) कुलीन (खांदानी) राह पर चलने वाले और स्थिति रखने वाले मनुष्योंको सेवनीय है और मूलस्थितिको दबानेके दो अभिप्राय हैं एकतो यह कि मूलस्थिति (मुख्यद्रव्य) को पृथिवी आदिमें दबाकर गुप्तरखना दूसरे यह कि मूलस्थिति अपने द्रव्यानुकूल शक्तिको नीचा रखना अर्थात् द्रव्यानुरूप आडंबर नहीं करना सादे ढंगसे रहना (जैसे कि प्रायः वैश्योंका व्यवहार बहुतही सीधा सादा था) २ (वटपक्षमें) मूलस्थिति जडोंकी स्थितिको नीचेको करते हुए प्राप्त हुए हैं नवीन पत्र जिसमें ऐसा वट वृक्ष मार्गकी थकावटसे पृथिवीमें लीन हुए बैठे हुए पथिक मुसाफिरोंको सेवनीय है ॥ १०॥

धर्माधर्मविदः साधुपक्षपातसमुद्यताः ॥
नरके दुःखिता यांति गुरूणां वंचने रताः ॥ ११ ॥

टीका—(अत्रास्मिन् श्लोके गुरूणां वंचने रता इत्यत्र अनुस्वारच्युतौ गुरूणां वचने रता इति चित्रम्)

(वंचने रताः इतिपक्षे) गुरूणां वंचने रताः धर्माधर्म विदः साधुपक्षपातसमुद्यताः दुःखिताः नरके यांति इत्यन्वयः ॥ गुरूणां पित्रादीनाम् उपदेशकर्तृणां वृद्धा नां वा वंचने प्रतारणे कापट्ये रताः निरताः धर्माधर्म विदः धर्मम् अधर्मम् अधर्मम् धर्मम् विदः इति जानंती-त्यर्थः। साधुपक्षपातसमुद्यताः साधूनां पक्षः तस्य पाते समुद्यताः इति (वचनेरताः इति पक्षे) हे नर गुरूणां वचने रताः धर्माधर्मविदः धर्माधर्मविवेकिनः साधुपक्ष पातसमुद्यताः साधौ पक्षपाते समुद्यताः अदुःखिताः के स्वर्गे यांति ॥ ११ ॥

अर्थ—इस श्लोकमें वंचने शब्दका अनुस्वार हटानेसे वचने होजाताहै और दोनों प्रकारसे अर्थ होताहै यही चित्रहै (वंचने पक्षमें) जो गुरुवों (बडों) के वंचनमें (ठगनेमें) रतहैं (वे) धर्मको अधर्म जानने वाले और साधुवोंके पक्ष अथवा उत्तम पक्ष को पात करने (बिगाड़ने) में उद्यत हैं (सो) दुःखित होकर नरकमें जातेहैं और (वचने पक्षमें) हे नर जो गुरुवोंके वचनों में रत रहतेहैं वे धर्माधर्मके विवेकी और साधुवोंके पक्षपातमें अथवा उत्तम पक्षपातमें उद्यतहैं वे दुःखरहित होकर क अर्थात् स्वर्ग में जातेहैं ॥ ११ ॥

ककाकुकंककेकांककेकिकोकैककुः ककः ॥
ककंकोकःकाककाककर्काकुकुककांककुः १२

टीका—ककंकोकः ककः (कीदृशः ककंकोकः)
ककाकुकंककेकांककेकिकोकैककुः (पुनः कीदृशः)

काककाककर्कांकुककांककुः इत्यन्वयः ॥ कं शब्दं कुर्वन्ति इति ककाः ककाः कोकाः (चक्रवाकाः) यस्मिन् स ककंकोकः समुद्रः कंकः कं सुखं करोतीति कंकः सुखकारक इत्यर्थः । ककाकुकंककेकाकेकिको-कैककुः कं सुखं तस्य काकुः पुनःपुनः उक्तिः सुख जनककाकुः इत्यर्थः । पुनःपुनरुक्तिः येषां ते कंकाः जलपक्षिणः केका मयूराणां वाणी तया अंकिताः के-किनः मयूराः कोकाः चक्रवाकाः तेषाम् एककुः अद्वि-तीयंस्थानमित्यर्थः। काककाककर्कांकुककांककुः।का-का एव काककाः स्वार्थेकन् तान् आकयंति प्रीण-यंति इति काककाकका ऋचः। ऋग्वेदीयमंत्रविशेषाः तत्तन्मंत्रैः काकेभ्यः बलिः उपाद्रियते इति तेषां मंत्रा-णां काकप्रीणनत्वमिति भावः ता एव ऋक्काकुवः ध्वनिविशेषाः तान् कोकति उच्चरति इति काककाक कर्कांकुककः तथाभूतः कः ब्रह्मा स ब्रह्मा अंके यस्य सः विष्णुः तस्य कु स्थानम् अत्र समुद्रस्य वर्णनम् । एकव्यंजनचित्रम् अत्रोर्द्ध्वगतो रेफः ऋकारसंजात-त्वान्न गणनीयः ॥ १२ ॥

अर्थ—कंका अर्थ शब्द उसका करने वाला कक कक अर्थात् शब्द करने वाले कोक चकवे है (विशेष) जहां ऐसा जो समुद्र सो ककः अर्थात् सुखका करने वालाहै कका अर्थ सुख भी है कैसाहै समुद्र क (सुख) की काकु (ध्वनि) करने वाले जो

कंक (पक्षी) और केका (मयूरोंकीवाणी) करके अंकित जो केकी (मयूर) और कोक (चक्रवाक) इन सबका एक कुः (अद्वितीय स्थान) है तथा काकोंको काकक भी कहतेहैं (क प्रत्यय होनेसे) इनको आषाहन या तृप्त करना काककाकक हुवा इसप्रकार ऋग्वेदमें काकबलिके मंत्रहैं सो ऋग्वेदोक्त काकु उसका कुकने वाला उच्चारण करनेवाला ब्रह्मा वह ब्रह्मा है अंक (गोद) में जिसके ऐसे विष्णु उनका कुः अर्थात् स्थान है यह एक व्यंजन चित्रहै इसमें जो ऊपर रकारहै सो ऋ स्वर का रूपहै इससे इस की गिनती नहीं (इस श्लोकमें समुद्रका वर्णनहै ॥ १२ ॥

कुर्वन्दिवाकराश्लेषं दधच्चरणडंबरम् ॥ देव यौष्माकसेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ॥१३॥

टीका--अत्र करेणुशब्दस्य ककारच्युतौ रेणुः इति चित्रम् (हे) देव यौष्माकसेनायाः असौ करेणुः अथवा रेणुः प्रसरति किंकुर्वन् दिवाकराश्लेषं कुर्वन् कीदृशः करेणुः रणडंबरं च दधत् रेणुः कीदृशः चरण-डंबरं दधत् इत्यन्वयः ॥ यौष्माकसेनायाः युष्माकं सेनायाः करेणुः हस्ती दिवा आकाशेन सह करस्य शुंडस्य आश्लेषम् आलिंगनं कुर्वन् चरणस्य संग्रामस्य डंबरम् आडंबरं दधत् ककारच्युतौ रेणुः धूलिः दिवा-करस्य सूर्यस्य आश्लेषम् अवरोधं कुर्वन् चरणानां पदानां डंबरम् आयोजनं दधत् प्रसरति चलति ॥१३॥

अर्थ-(इस श्लोकमें करेणुशब्दके ककार दूर कर देने-से रेणु होताहै तथा दोनों पक्षमें अर्थ होताहै यह चित्र है) हे

देव यह आपकी सेनाका करेणु (हस्ती) चलताहै अथवा रेणु (धूलि) उडताहै हस्ती दिशा (आकाशसे) कर (शुंड) का आश्लेष (स्पर्श) करताहुआ रणके आडंबरको धारण करने वालाहै तथा धूलि दिवाकर (सूर्य) का आश्लेष (अवरोध) करता हुवा चरणोंके आयोजनको धारण करने वालाहै ॥ १३ ॥

(भाषा) दोहा-हो विचित्रता वर्णते, या हो चित्र अकार । चित्र काव्य तिहिं कहतहै, ताके भेद अपार ॥

उदाहरण द्वादशदलपद्मबंध। चौपाई-पाहि पाहि मोहि गहि गहि बाँहि। तोहि गाँहि रहि रहि महि माँहि ॥

द्वादशदल पद्म बंध ।

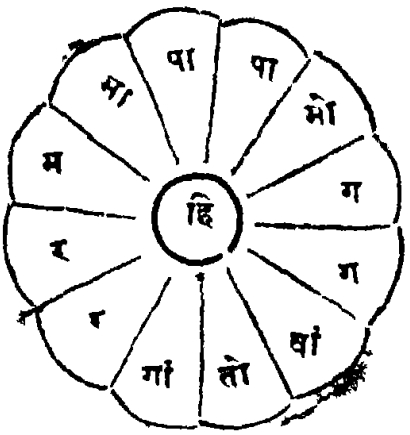

यही गोमूत्रिकाबंध भी होसक्ताहै ।

पा	हि	पा	हि	मो	हि	ग	हि	ग	हि	बाँ	हि
तो	हि	गाँ	हि	र	हि	र	हि	म	हि	माँ	हि

चित्र काव्यके भेद असंख्य होसक्तेहैं जैसे छत्रबंध, मुकुटबंध, गदाबंध, कपाटबंध इत्यादि तथा एकाक्षरादि ॥

वक्रोक्तिः ।

प्रस्तुतादपरं वाच्यमुपादायोत्तरप्रदः ॥
भंगश्लेषमुखेनाह यत्र वक्रोक्तिरेव सा॥१४॥

टीका--यत्र उत्तरप्रदः भंगश्लेषमुखेन प्रस्तुतात् अपरं वाच्यम् उपादाय आह सा एव वक्रोक्तिः इत्यन्वयः ॥ उत्तरप्रदः उत्तरदाता भंगश्लेषमुखेन भंगाश्रयेण श्लेषाश्रयेण च प्रस्तुतात् वक्तुः प्रस्ताविताद् अपरं वाच्यम् अन्यार्थसूचकं वाक्यम् उपादाय आश्रित्य आह प्रत्युत्तरं ब्रवीति सा एव वक्रोक्तिः वक्रोक्तिनामा शब्दालङ्कारः यत्र शब्दस्य खंडं कृत्वार्थांतरं प्रतिपाद्यते सा सभंगश्लेषवक्रोक्तिः यत्र शब्दस्यार्थान्तराश्रयेणोत्तरं प्रदीयते सा अभंगश्लेषवक्रोक्तिः ॥ १४॥

अर्थ--जहां उत्तर देनेवाला भंग (सभंगश्लेष) और श्लेष (अभंगश्लेष) के आश्रयसे वक्ताके प्रस्तावित वाक्यका अन्यार्थसूचक वचन संपादन करके (अन्यरीतिका) उत्तर दे अथवा वचन कहे तो उसे वक्रोक्ति कहतेहैं (जहां शब्दके टुकडे करके अर्थांतरका प्रतिपादन किया जावे उसे सभंगश्लेषवक्रोक्ति कहतेहैं और जहां शब्दके दूसरे अर्थके आश्रयसे उत्तर दिया जावे उसे अभंगश्लेषवक्रोक्ति जानो) सीधी बातको टेढी कहदेना वह वक्रोक्ति है ॥ १४ ॥

प्रथम सभंगश्लेषवक्रोक्तिका उदाहरण ।

नाथ मयूरो नृत्यति तुरगाननवक्षसः कुतो नृत्यम् ॥ ननु कथयामि कलापिनमिह सुखलापी प्रिये कोस्ति ॥ १५ ॥

टीका--(कांतया कथितं) हे नाथ मयूरः नृत्यति (कांतेन कथितं) तुरगाननवक्षसः नृत्यं कुतः (पुनः कांतया कथितं) ननु कलापिनं कथयामि (पुनः कांतेनोक्तं) हे प्रिये इह सुखलापी कः अस्ति इत्यन्वयः ॥ प्रस्तुतस्तु मयूरः पक्षिविशेषः वक्रोक्त्या अपरार्थमूचकं वाच्यं मयोः तुरगाननस्य यक्षस्य उरः वक्षः तुरंगवदनो मयुरित्यमरः पुनः प्रस्तुतस्तु कलापिन कलापः मयूरपिच्छः सोस्ति यस्य स कलापी तं कलापिनं मयूरमेव कथयामीति भावः पुनः वक्रोक्त्या अपरार्थसूचकं वाच्यं कं सुखं तदालापी कलापी इति भंगश्लेषवक्रोक्तिः ॥ १५ ॥

अर्थ-किसी कांतानें कहा हे नाथ मयूर (मोर) नाच रहाहै पुरुषने वक्रोक्तिसे कहा मयु यक्षका उर हृदय मयूर उसका नाचना कैसे होसंक फिर कांतानें कहा नहि मैतौ कलापी (मोर) को कहती हू फिर पुरुषनें वक्रोक्तिसे कहा कि क सुख उसका लापी आलाप करनेवाला कलापी सो हे प्रिये यहांपर सुखलापी कौन है यहां सभग श्लेषके आश्रयसे वक्रोक्ति हुई ॥ १५ ॥

अभंगश्लेष वक्रोक्तिका उदाहरण।

भर्तुः पार्वति नाम कीर्तय नचेत्त्वां ताडयिष्याम्यहं क्रीडाब्जेन शिवेति सत्यम नघे किं ते शृगालः पतिः ॥ नो स्थाणुः किमु कीलको नहि पशुस्वामी तु गोप्ता गवां दोलाखेलनकर्मणीति विजयागौर्य्योर्गिरः पांतु वः ॥ १६ ॥

टीका--दोलाखेलनकर्मणि इति विजयागौर्य्योः गिरः वः पांतु इतीति किम् (विजयोक्तिः) हे पार्वति भर्तुः नाम कीर्तय न चेत् अहं त्वां क्रीडाब्जेन ताडयिष्यामि (गौर्य्योक्तं) शिव इति सत्यं (विजयोक्तं) हे अनघे किं ते पतिः शृगालः (पुनर्गौर्योक्तं) नो स्थाणुः (विजयोक्तं) किम् उ कीलकः (पुनर्गौर्य्योक्तं) नहि पशुस्वामी (पुनर्विजयोक्तं) तु गवां गोप्ता इत्यन्वयः ॥ अत्र प्रस्तुतस्तु शिवः शंकरः वक्रोक्त्या अपरार्थमूचकं वाच्यं शिवः शृगालः पुनः प्रस्तुतः स्थाणुः शंभुः अपरार्थमूचकं वाच्यं स्थाणुः कीलकः एवमेव पशुस्वामी पशुपतिः गवां गोप्ता च इति अभंगश्लेषवक्रोक्तिः ॥ १६ ॥

श्लो० १६ अत्र शिवशब्दस्य शंकरवाचकत्वात् शृगालवाचकत्वाच्च एव स्थाणुशब्दस्यापि शिववाचित्वात् कीलकवाचित्वाच्च एवमेव पशुस्वामिशब्दस्य पशुपतिशिववाचित्वात् गोपवाचित्वाच्च अभंगश्लेषः।

अर्थ-हिंडोले झूलते समय विजया और गौरीके ये (हास्यात्मक) वचन तुह्मारी रक्षा करो जैसे विजयाने कहा हे पार्वति तुम भर्ताका नाम बतावो नहीं तो तुह्मे मैं क्रीडा कमलसे ताडना करूंगी गौरीने कहा सच्ची शिवहै (तब विजयाने अर्थ पलटके कहा) कि क्या तुह्मारा पति शिव अर्थात् शृगाल है फिर गौरीने कहा नहि स्थाणुः (शंकर) है फिर विजयाने कहा क्या स्थाणुः (अर्थात् कीलक) ठूंठ है फिर गौरीने कहा नहि पशुस्वामी (पशुपति) है फिर विजयाने कहा तो गौवोंका रखवाला है यह अभंगश्लेषवक्रोक्ति है ॥ १६ ॥

(भाषा) दोहा-काकु श्लेष व भंगसे अर्थ आनका आन। फेरफार उत्तर कहे वक्रउक्ति तेहि जान ॥ १ ॥ (उदाहरण) पीलो पानी तिय कहे पिय कहि का लें फूस। नहि जल लो हम क्यों जलें जलें हमारे दूस ॥ २ ॥ (दूस अर्थात् द्वेषी शत्रु)

अनुप्राम लक्षण ।

तुल्यश्रुत्यक्षरावृत्तिरनुप्रासः स्फुरद्गुणः ॥ अतत्पदः स्याच्छेकानां लाटानां तत्पदश्च सः ॥ १७ ॥

टीका-स्फुरद्गुणः तुल्यश्रुत्यक्षरावृत्तिः सः अनुप्रासः स्यात् अतत्पदः छेकानां च तत्पदः लाटानाम् इत्यन्वयः ॥ तुल्या श्रुतिः श्रवणं येषां तथा भूतानाम् अक्षराणाम् आवृत्तिः पुनःपुनः आवर्तनम् उच्चारणम् इत्यर्थः स्फुरद्गुणः स्फुरंतो माधुर्य्यादयो गुणा यत्र तथाभूतः स अनुप्रासः अनुप्रासो द्विविधः छेकानुप्रासो

लाटानुप्रासश्च तत्र अतत्पदः तत्पदरहितः छेकानां छेकानुप्रासः इत्यर्थः (छेको नागरे विदग्धः इति शब्दस्तोमः) तथा च तत्पदः तानि एव पदानि यत्र स तत्पदः लाटानां लाटानुप्रास इत्यर्थः (लाटो देशविशेषस्तत्र वासिनो लाटाः) ॥ १७ ॥

अर्थ-जहां तुल्यश्रुति (एकसे अथवा वैसेही) अक्षरोंकी वारंवार आवृत्ति हो अर्थात् उच्चारण हो और माधुर्य्यादि गुण स्फुरायमान हो तो उसे अनुप्रास कहतेहैं अनुप्रासके दो भेद हैं एक छेकानुप्रास दूसरा लाटानुप्रास जहांपर उन्हीं पदोंकी आवृत्ति न हो कुछ वर्णोंकी आवृत्ति हो वह छेकानुप्रास कहाताहै और जहां पूरे उन्हीं पदोंकी आवृत्ति हो उसे लाटानुप्रास कहतेहैं ॥ १७ ॥

छेकानुप्रासका उदाहरण ।

अलं कलंकशृंगारकरप्रसरहेलया ॥ चंद्र चंडीशनिर्माल्य मसि न स्पर्शमर्हसि॥१८॥

टीका-हे चंद्र हे कलंकशृंगार करप्रसरहेलया अलं (त्वं) चंडीशनिर्माल्यम् असि स्पर्शं न अर्हसि इत्यन्वयः ॥ कलंकः लांछनं शृंगारो यस्य स तत्संबुद्धिः हे कलंकशृंगार चंद्र करप्रसरहेलया किरणप्रसरणविलासेन अलं किरणप्रसारणं मा कुरु इत्यर्थः त्वं चंडीशस्य शिवस्य निर्माल्यं भुक्तशेषः उच्छिष्टः असि अंतः स्पर्शं न अर्हसि अग्राह्यं शिवनिर्माल्यमिति वच-

नात् न स्पर्शयोग्य इत्यर्थः अत्र पूर्वार्द्धे अलंकलंक इति वर्णावृत्तिः तथा रकारस्यावृत्तिः उत्तरार्द्धे सकारस्य चकारस्यावृत्तिः अतः अतत्पदावृत्या छेकानुप्रासः १८

अर्थ–हे कलंकशृंगार चंद्र तू अपनी किरण फैलानेके विलास को (बसकर) अर्थात् किरण मत फैला क्यों कि तू चंडीश (महादेव) का निर्माल्य है (उनके शिरसे उतरा हुवाहै) इससे स्पर्श करने योग्य नहीं है (शिवका निर्माल्य अग्राह्य होताहै) यह विरहिणी कांताका वचनहै इस श्लोकके पूर्वार्द्धमें अलंकलंक इत्यादि वर्णोंकी तथा रकारकी आवृत्तिहै और उत्तरार्द्धमें चकार और सकारकी आवृत्तिहै इससे अतत्पदावृत्ति होनेसे छेकानुप्रास हुवा ॥ १८ ॥

लाटानुप्रासके उदाहरण ।

रणे रणविदो हत्वा दानवान्दानवद्विषा ।
नीतिनिष्ठेन भूपाल भूरियं भूस्त्वया कृता ॥ १९ ॥

टीका--हे भूपाल रणे रणविदो दानवान् हत्वा दानवद्विषा नीतिनिष्ठेन त्वया इयं भूः भूः कृता इत्यन्वयः ॥ भुवं पृथिवीं पालयतीति भूपालः राम इति भावः तत्संबुद्धिर्हे भूपाल रणे संग्रामे रणविदः रणकोविदान् दानवान् असुरान् दानवान् द्वेष्टि इति दानवद्विट् तेन दानवद्विषा दानवारिणा नीतिनिष्ठेन नीतिपरायणेन इयं भूः पृथिवी भूः रत्नादीनां प्रसविनी कृता अत्र रण दानवभूपदानां पुनरावृत्त्या तत्पदो लाटानुप्रासः॥ १९॥

अर्थ—हे भूपाल (रामचंद्र) संग्राममें रणविज्ञ दानवोंको मारकर दानवद्वेषी राजनीतिनिपुण (जो आपहैं) आपने यह पृथिवी रत्नादिके उत्पन्न करने वाली बनादी यहां रण दानव और भूपदोंके दोबार आनेसे तत्पद लाटानुप्रास हुवा ॥ १९ ॥

त्वं प्रिया चेच्चकोराक्षि स्वर्गलोकसुखेन किम् ॥ त्वं प्रिया यदि न स्या मे स्वर्गलोकसुखेन किम् ॥ २० ॥

टीका—हे चकोराक्षि त्वं मे प्रिया चेत् (तदा) स्वर्गलोकसुखेन किं यदि त्वं मे प्रिया न स्याः (तदा) स्वर्गलोकसुखेन किम् इत्यन्वयः ॥ त्वं प्रिया चेत्तदा स्वर्गलोकसुखम् अमृताप्सरादिसंभोगरूपं तेन किं न किमपि प्रयोजनम् इत्यर्थः त्वं प्रिया न स्याः तदा स्वर्गलोकसुखेन किं स्वर्गलोकसुखेपि न सुखानुभव इत्यर्थः अत्र स्वर्गलोकसुखेन किम् इति पादस्य द्विरावृत्या पादावृत्तिको लाटानुप्रासः ॥ २० ॥

अर्थ—हे चकोराक्षि (चकोरनेत्रे) जो तू मेरी प्यारी हो तो मुझे स्वर्गलोकके सुखसे क्या प्रयोजन है अर्थात् स्वर्गके सुख अमृत पान अप्सरासंभोग आदिको भी आवश्यकता नहीं और जो तू मेरी प्रिया नहो तो भी स्वर्गलोकके सुखसे क्याहै अर्थात् तेरे विना स्वर्गलोकके समस्त सुख भी सुख मालूम नहीं होंगे (किंतु दुःख प्रतीत होंगे) यहां "स्वर्गलोकसुखेन किम्" इस पूरे पादकी आवृत्ति होनेसे अर्थात् पूरा पाद फिर आनेसे यह पादावृत्तिक लाटानुप्रास हुवा ॥ २० ॥

एकत्र पात्रे स्वकलत्रवक्त्रं नेत्रामृतं बिंबितमीक्षमाणः ॥ पश्चात्पपौ सीधुरसं पुरस्तान्ममाद कश्चिद्यदुभूमिपालः ॥ २१ ॥

टीका--कश्चित् यदुभूमिपालः स्वकलत्रवक्त्रं नेत्रामृतम् एकत्र पात्रे बिंबितम् ईक्षमाणः (सन्) पुरस्तात् ममाद पश्चात् सीधुरसं पपौ इत्यन्वयः ॥ यदुभूमिपालः यदुराजः स्वकलत्रवक्त्रं स्वकीयकांतामुखं नेत्रामृतं प्रेमाश्रु एकत्र पात्रे एकस्मिन् पानपात्रे बिंबितं प्रतिबिंबीभूतं पश्यन् पुरस्तात मद्यपानात् पूर्वम् एव ममाद मदोन्मत्तो बभूव अत्र पूर्वार्द्धे त्र इत्यक्षरस्य पुनःपुनरावृत्तिः उत्तरार्द्धे पकारस्य तस्मात् छेकानुप्रासः ॥ २१ ॥

अर्थ--कोई यदुराजा अपनी स्त्रीके मुखको और नेत्रामृत (प्रेमाश्रुपात) को एकही पात्रमे प्रतिबिंबित देखकर मद्यपानसे पहले ही मदोन्मत्त होताभया और पीछेसे सीधुरस (मद्य) पान किया यहां पहले पदोमे त्रकारकं बारबार आवृत्तिसे और पीछले पदमे पकारकी आवृत्ति होनेसे अतःपद छेकानुप्रास हुवा ॥ २१ ॥

(भाषा) दोहा--पुनि पुनि आवत वर्ण जहँ सो छेकानुप्रास । वह लाटानुप्रास हो जहँ पुनि पद हो खास ॥ १ ॥ (छेकानुप्रासका उदाहरण दोहा)--कच रचना लख पीयकी सुन सच वचन विलास । मुख रुख सुखदायक परख तिय हिय होत हुलास ॥ २ ॥ (लाटानुप्रासका उदाहरण दोहा)--पियप्यारी

जो संग हो तिन्हे स्वर्ग किहँ काम। पियप्यारी जो संग नहिं तिन्हे स्वर्ग किहँ काम ॥ ३ ॥

यमकलक्षण।

स्यात् पादपदवर्णानामावृत्तिः संयुतायुता ॥ यमकं भिन्नवाच्यानामादिमध्यांतगोचरम् ॥ २२ ॥

टीका--भिन्नवाच्यानां पादपदवर्णानां संयुतासंयुता आवृत्तिः आदिमध्यांतगोचरं यमकं स्यात् इत्यन्वयः॥ भिन्नवाच्यानां पृथगर्थानां पादपदवर्णानां पादः श्लोकस्य चतुर्थांशः पदं विभक्त्यंतं शब्दात्मकं वा वर्णाः अक्षराणि तेषां संयुता मिलिता असंयुता छिन्ना आवृत्तिः पुनरुक्तिः यमकं तत् आदिमध्यांतगोचरम् आदिगतं मध्यगतम् अंतगतं च तस्य पादपदवर्णभेदेन संयुतासंयुतभेदेन आदिमध्यांतगोचरत्वभेदन च अष्टादश भेदाः यमके पृथगर्थत्वं लाटानुप्रासे चैकार्थत्वमिति भेदः ॥ २२ ॥

अर्थ-पृथक् अर्थवाले पाद पद और अक्षरोंकी संयुत अखंड रूपसे और असंयुत छिन्न रूपसे आवृत्ति (पुनरुक्ति) हो उसे यमक कहतेहैं वह आदिगत मध्यगत और अंतगत होताहे पाद श्लोकके एक चरण (चतुर्थांश) को कहतेहैं पद विभक्त्यंत अथवा शब्दरूपको कहतेहैं और वर्ण अक्षरको कहतेही हैं अस्तु पाद पद वर्ण भेदसे तथा संयुत असंयुत भेदसे तथा आदि

मध्य और अंतगत भेदसे यमक १८ प्रकारका होताहै यमकमें अन्य अर्थवाले पद होते हैं और लाटानुप्रासमें प्राय पदोंका अर्थांतर होना आवश्यक नहीं यही भेद है ॥ २२ ॥

पादयमकके उदाहरण ।

दयांचक्रे दयांचक्रे ॥ सतां तस्माद् भवान्वित्तम् ॥ २३ ॥

टीका--भवान् दयां चक्रे तस्मात् सतां वित्तं दयांचक्रे इत्यन्वयः ॥ दयां चक्रे दयां कृतवान् तस्मात सतां साधूनां वित्तं धनं दयांचक्रे दत्तवान् अत्र प्रथमपादस्य द्वितीयपादे आवृत्तिः (चूडा नाम चतुरक्षरा वृत्तिः) ॥ २३ ॥

अर्थ-आपने दया करी जिससे साधुवोंको धन दान दिया (एक जगह दयांचक्रेका अर्थ दया करी दूसरी जगह दिया) इसमें प्रथम पादकी आवृत्ति दूसरेमें हुई अर्थात् पूरा प्रथम चरण दूसरे चरणकी जगह फिर कहागया परंच अर्थ पलट गया यह चूडानाम छंदहै इसका ४ अक्षरका एक चरण होताहै ॥ २३ ॥

यशस्ते समुद्रान्सदारोरगारेः ॥ सदारोरगारेः समानांगकांतेः ॥ २४ ॥ द्विषामुद्धतानां निहंसि त्वमिंद्र ॥ मुदं भोधराणामुदम्भोधराणाम् ॥ २५ ॥

टीका--उरगारेः समानांगकांतेः आरोरगारेः ते सत यशः सदा समुद्रान् आर इत्यन्वयः ॥ उरगारेः गरु-

डस्य समाना अंगकांतिः यस्य स उरगोरः समानांग कांतिः तस्य आरोरं दारिद्र्यं गच्छंतीति आरोरगाः तादृशा अरयः शत्रवो यस्य स आरोरगारिः तस्य आरोरगारेः ते तव सत् श्रेष्ठं वर्त्तमानं च यशः सदा निरंतरं समुद्रान् आर अगमत् इत्यर्थः अत्र द्वितीयपादस्य तृतीयपादे आवृत्तिः सोमराजीनाम छंदः षडक्षर पदात्मकम् ॥ २४ ॥ भो इंद्र त्वम् उदंभोधराणां धराणाम् उद्धतानां द्विषां मुदं निहंसि इत्यन्वयः ॥ हे इंद्र (हे शक्र) उद्गताः अंभोधराः मेघाः येषु ते उदंभोधराः तेषाम् उदम्भोधराणां धराणां पर्वतानाम् उद्धतानां उद्दत्तानां द्विषां शत्रूणां मुदं हर्षं निहंसि नाशयसि पक्षच्छेदादिति भावः अत्र तृतीयपादस्य चतुर्थपादे आवृत्तिः इदमपि षडक्षर चरणात्मकं सोमराजीछंदः ॥ २५ ॥

अर्थ–उरगारि (गरुडके) समान अंगकी कांति (अर्थात् सुवर्णके रंगकीसी अंगकांति) है तुम्हारी और आरोर (दरिद्र) को प्राप्त होने वालेहैं अरि (शत्रु) तुम्हारे ऐसे जो आप सो आपका सुंदर यश सदा समुद्रों पर्यंत गमन करता भया यहां दूसरे पदकी आवृत्ति तीसरे पदमें पूर्ण रूपसे है और यह छह अक्षरके चरण वाला सोमराजी छंद है ॥ २४ ॥ भो इंद्र आप उद्धत (प्रबल) और ऊपर छाये हुवेहैं मेघ जिनके ऐसे जो (आपके) शत्रु पर्वत हैं उनके हर्षको नाश करते हो (अर्थात् पर्वतोंके पक्ष छेदन करके आपने उनका हर्ष और दर्प नाश कर

दिया है) यहां तीसरे पादकी परी आवृत्ति चौथे पादमें है तथा यह भी छहवर्णके चरणवाला वही सोमराजी छंद है ॥ २५ ॥

विभाति रामा परमा रणस्य विभातिरामा परमारणस्य । सदैव तेऽजोर्जितराजमान सदैवतेजोर्जितराजमान ॥ २६ ॥

टीका--हे अजोर्जितराजमान हे सदैवतेजोर्जितराज मान परमारणस्य ते रणस्य अतिरामा परमा रामा विभा सदा एव विभाति इत्यन्वयः ॥ अजः विष्णुः तस्य इव ऊर्जितं बलं तेन राजमानः तत्संबुद्धौ हे अजो र्जितराजमान ! सदैवं सभाग्यं यत् तेजः प्रतापः तेन अर्जितः संपादितः राजसु नृपेषु मानः सन्मानः येन तत्संबुद्धौ हे सदैवतेजोर्जितराजमान ! परमारणस्य शत्रुघातिनः ते तव रणस्य संग्रामस्य परमा उत्कृष्टा रामा मनोहारिणी रामं रामचंद्रं परशुरामं वा अति-क्रम्य वर्त्तते इति अतिरामा विभा शोभा सदा एव विभाति शोभते अत्र प्रथमपादस्य द्वितीये तृतीयस्य चतुर्थे आवृत्तिः ॥ २६ ॥

अर्थ--हे अजोर्जितराजमान अज विष्णु तिसके बलके समान बलकरके राजमान और भाग्य करके सहित जो तेज प्रताप उस करके प्राप्त कियाहै राजावोंमें सन्मान जिसने ऐसे जो आप पर (शत्रु) के मारनेवाले तुम्हारे रणकी परशुरामके संग्रामसे

अधिक परम मनोहारिणी दीप्ति सदाही शोभाको प्राप्त होती है इसमें पहले पादकी दूसरे पादमें और तीसरेकी चौथेमें आवृत्ति है ॥ २६ ॥

सारं गवयसान्निध्यराजि काननमग्रतः ॥
सारंगवयसांनिध्यदारुणं शिखरे गिरेः२७

टीका—गिरेः शिखरे अग्रतः सारं काननम् अदारुणम् कथंभूतं काननं गवयसान्निध्यराजि पुनःकथं भूतं काननं सारंगवयसांनिधि इत्यन्वयः ॥ गिरेः पर्वतस्य काननं वनं सारम् उत्कृष्टम् अदारुणं कोमलं रम्यमित्यर्थः गवयानां गोसदृशमृगाणां सान्निध्यं सामीप्यं तस्य राजिः पंक्तिः यत्र तत् गवयसान्निध्यराजि सारंगाणां वयसां पक्षिणां निधि सारंगवयसां निधि अत्र प्रथमपादस्य तृतीयपादे आवृत्तिः ॥ २७ ॥

अर्थ—पर्वतके शिखर पर अगाडी मुख्य वन कोमल अर्थात् रमणीक है कैसा वह वन है गवय गौके समान मृग (नील-गाय) उनका सान्निध्य समीपता अर्थात् एकत्रित समूह उसका है पंक्ति जिसमें और फिर कैसा वह वनहै कि सारंग जो पक्षी उनका निधि अर्थात् स्थान है यहां पहले चरणकी तीसरे चरणमें आवृत्ति है ॥ २७ ॥

आसन्नदेवा न रराज राजिरुच्चैस्तटाना-
मियमत्र नाद्रौ॥ क्रीडाकृतो यत्र दिगंत-
नागा आसन्नदे वानरराजराजिः ॥ २८ ॥

टीका-अत्र अद्रौ उच्चैः तटानाम् इयम् आसन्नदेवा वानरराजराजिः राजिः न रराज (इति) न (अपितु रराज एव) यत्र नदे दिगंतनागाः क्रीडाकृतः आसन इत्यन्वयः ॥ अद्रौ पर्वते उच्चैः तटानाम् उन्नततटानां शिखराणामित्यर्थः राजिः पंक्तिः । आसन्नाः संनिहिता देवा यत्र सा आसन्नदेवा वानराणां राजानः तेषां राजिः समूहो यत्र सा। वानरराजराजिः एवंभूता राजिः रराज एव दिगंतनागाः दिग्गजाः । अत्र प्रथमपादस्य चतुर्थे आवृत्तिः ॥ २८ ॥

अर्थ-इस पर्वतमें यह ऊंचे शिखरोंकी पंक्ति जहां देवता निवास करते थे और वानरोंके राजावों (अर्थात् श्रेष्ठ वानरोंका जहां समूह था सो शोभाको प्राप्त नहो ऐसी नहीं) किन्तु शोभाको प्राप्तहोही रही थी और जहांकी नदियोंमें बड़े बड़े दिग्गज हाथी क्रीडा करते थे इसमें पहले पादकी चौथे पादमें आवृत्ति है ॥ २८ ॥

अमरनगरस्मेराक्षीणां प्रपंचयति स्फुर-
त्सुरतरुचये कुर्वाणानां वलक्षम रंहसम् ॥
इह सह सुरैरायांतीनां नरेश नगेऽन्वहं
सुरतरुचये कुर्वाणानां वलक्षमरं
हसम् ॥ २९ ॥

टीका–हे बलक्षम नरेश इह नगे स्फुरत्सुरतरुचये बाणानां कुः अन्वहं सुरैः सह आयांतीनां वलक्षं हसम् अरं कुर्वाणानाम् अमरनगरस्मेराक्षीणां सुरत रुचये रंहसं प्रपंचयति इत्यन्वयः ॥ बले पराक्रमे क्षमः समर्थः तत्संबुद्धिः हे बलक्षम इह नगे अत्र पर्वते स्फुरन् सुरतरूणां चयो यस्मिन् तथाभूते पर्वते बाणानां बाणवृक्षाणां कुः भूमिः अन्वहं प्रतिदिनं सुरैः देवैः सह आयांतीनाम् आगच्छंतीनां वलक्षं धवलं हसं हास्यम् अरम् अत्यर्थं कुर्वाणानाम् अमरनगरस्य सुरपुरस्य स्मेराक्षीणां मंदस्मितलावण्यलोचनानां सुंद-रीणां सुरांगनानामित्यर्थः सुरतस्य संभोगस्य रुचिः वांछा तस्यै सुरतरुचये सुरताभिलाषाय इतिभावः। रंहसम् आवेगं प्रपंचयति प्रकटयति (वलक्षः धवलः हसः हसनम् अरम् अलमर्थे अत्यर्थम्। इति शब्दस्तोम) अत्र द्वितीयपादस्य चतुर्थे आवृत्तिः ॥ २९ ॥

अर्थ–हे बलक्षम नरेश इस पर्वतमें जहां फुरायमान कल्प-वृक्षोंका संचय है बाणवृक्षोंकी पृथ्वी नित्य देवताओंके साथ आनेवाली और अत्यंत उज्ज्वल हास करनेवाली स्वर्ग लोककी मुसकराते लोचनोंवाली सुंदरियोंके संभोगकी अभिलाषाके लिये रंहस आवेग अर्थात् उमंग प्रकट करती है। यहां दूसरे चरणकी चौथे चरणमें आवृत्ति है ॥ २९ ॥

रंभारामा कुरवक ! कमलारंभा रामा कुरवककमला ॥ रंभारामा ऽकुरवक कमला ऽरं भारामा ऽकुरवककमला॥३०॥

टीका--हे अवक ! रंभारामा कुः अरं रामा कथंभूता कुः कमलारंभा पुनः कुरवककमला पुनः रंभारामा पुनः अकुः पुनः अवककमला पुनः भारामा पुनः अकुरवककमला इत्यन्वयः ॥ अवति रक्षतीति अवक. तत्संबुद्धिः हे अवक रंभारामा कुः रंभाणां कदलीनाम् आरामो वाटिकाविशेषः यस्यां सा रंभारामा कुः पृथिवी अरम् अत्यर्थं रामा रमणीया इत्यर्थः कथं भूता कुः कमलारंभा कमलानां पंकजानाम् आरंभो यत्र सा कुरवककमला कुरवकाणां तदाख्यवृक्षाणां कमला लक्ष्मीः शोभा यत्र सा रंभारामा रंभा देवांगना एव रामा रमणार्थं विद्यते यत्र सा अकुः न कुत्सिता शोभना इत्यर्थः अवककमला वकैः वकपक्षिविशेषैः रहितं कमलं जलं यत्र सा भारामा भाभिः कांतिभिः रामा रमणीया अकुरवककमला कुत्सितो रवः शब्दः कुरवः न कुरवः अकुरवः अकुरवं कुर्वन्ति इति अकुरवकाः तादृशाः कमला मृगा हरिणाः यत्र सा। अत्र प्रथमपादस्य द्वितीये तृतीये चतुर्थे चावृत्तिः ॥ ३० ॥

श्लो० ३०) "रभा" कदली देवागनाच "रामा" मनोहरा गीतादिकलाभिज्ञानारी "कमला" लक्ष्मी·शोभाच "कमलम्" पंकज जलं नपुंसके कमल. मृग सारसविहगश्च पुसि (इतिशब्दस्तोमे)।

अर्थ–हे अवक हे रक्षक कदलीवृक्षोंके आराम अर्थात् बगीचे वाली पृथिवी अत्यन्त रमणीक है कैसी है वह पृथिवी कि कमलोंका है आरंभ प्रस्ताव जिसमें और कुरवकके वृक्षोंकी शोभा करके संयुक्त है तथा रंभा देवांगना है रामा रमणीय जहांपर तथा अकु अर्थात् कुत्सित नहीं किन्तु सुंदर है और बकरहित निर्मल है कमल अर्थात् जल जिसमें तथा भा कांति करके रमणीक है तथा सुंदर शब्द करनेवाले अथवा सुंदर चाल चलनेवाले कमल (अर्थात् हरिण) हैं जिसमें । इस श्लोकमें प्रथम पादकी दूसरे पादमें तथा तीसरे और चौथे पादमें आवृत्ति है कमल शब्दका अर्थ कमल तथा जल तथा मृग है ॥ ३० ॥

पदयमक ।

हारीतहारी ततमेष धत्ते शेवालसेवाल-सहंसमम्भः ॥ जंबालजं बालमलं दधानं मंदारमंदारववायुरद्रिः ॥ ३१ ॥

टीका--एषः हारीतहारी मंदारमंदारववायुः अद्रिः ततं शेवालसेवालसहंसं जंबालजं वालमलं दधानम् अंभः धत्ते इत्यन्वयः ॥ हारीतानां पक्षिविशेषाणां हारः अस्य स हारीतहारी मंदाराणां कल्पवृक्षाणां मंदारवो मंदः आरवो गतिविशेषः शब्दो वा यस्य तथा भूतो वायुः यस्मिन् तथोक्तः एषः पुरो दृश्यमानः अद्रिः पर्वतः तत विस्तृतं शेवालेन सेवायाम् अलसाः मंथरा हंसा यत्र तत् शेवालसेवालसहंसं जंबालजं

जंबालात् पंकात् शेवालाद्वा जातं बालं नूतनं मलं दधानम् एतादृशम् अंभः जलं निर्झररूपकं सरोरूपकं वा धत्ते धारयति । अत्र हारीतहारीत इत्यादि पदयमकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–यह पर्वत जिसपर हारीतपक्षियोंका हार (पंक्ति) है और कल्पवृक्षोंका मंद चलनेवाला वायु जहांपर है सो विस्तारवाले और सेवाल करके सेवामें (चलनेमें) मंद होरहे हैं हंस जिसमें और जंबाल कीचड या सिवालसे उत्पन्न हुवा नूतन मल धारण किया है जिसने ऐसे जल (झिरने या सरोवररूप जल) को धारण करनेवाला है । इसमें हारीत हारीत इत्यादि पादके आदिमें पदयमक है ॥ ३१ ॥

नेमिर्विशालनयनो नयनोदितश्रीरभ्रांत बुद्धिविभवो विभवो ऽथ भूयः॥ प्राप्तस्तदेति नगरान्नगराजि तत्र सूतेन चारु जगदे जगदेकनाथः ॥ ३२ ॥

टीका–विशालनयनः नयनोदितश्रीः अभ्रांतबुद्धिविभवः विभवः जगदेकनाथः नेमिः अथ नगरात् तत्र नगराजि सूतेन प्राप्तः तदा भूयः चारु इति जगदे इत्यन्वयः ॥ नयेन नीतिमार्गेण नोदिता प्रेरिता श्रीः लक्ष्मीर्येन स नयनोदितश्रीः अभ्रांतायाः बुद्धेः विभवो यस्य स अभ्रांतबुद्धिविभवः विगतः भवः संसारो जन्ममरणादिरूपो यस्य स विभवः जगताम् एकनाथः

जगदेकनाथः नेमिः नेमिनाथः नगराजि पर्वतराजोपरि सूतेन सारथिना नगरात् पुरात् प्राप्तः तदा चारु जगदे भद्रं जातमिति जगाद। अत्र जगदे जगदे विभवो विभव इत्यादि पादमध्यगतपदयमकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–विशालनेत्र विनय करके प्रेरित करी श्री जिसने और अभ्रांत (दृढ़) बुद्धि है विभव ऐश्वर्य जिसका और नष्ट होगया है जन्ममरणादि संसार जिसका ऐसे जगत्के एक स्वामी नेमिनाथ जब नगरमे पर्वतराज (गिरनार) पर सारथीने पहुँचाये तब वारंवार बहुत श्रेष्ठ हुवा बहुत अच्छा हुवा ऐसा कहते भये यहां जगदे जगदे विभवो विभव इत्यादि पदयमक चरणोंके। मध्यमें हैं ॥ ३२ ॥

यदुपांतिकेषु सरलाः सरला यदनूच्चलन्ति हरिणा हरिणाः ॥ तदिदं विभाति कमलं कमलं मुदमेत्य यत्र परमाप रमा ॥ ३३ ॥

टीका--तत् इदं कमलं विभाति यदुपांतिकेषु सरलाः सरलाः यत् अनु हरिणाः हरिणा उच्चलंति यत्र रमा कमलम् एत्य परं मुदम् आप इत्यन्वयः ॥ कमलं जलं (सलिलं कमलं जलम् इत्यमरः) उपांतिकेषु समीपेषु सरलाः धूपकाष्ठवृक्षाः सरला ऋजवः हरिणाः मृगाः हरिणा वायुना समम् उच्चलंति उद्गच्छंति कमलं पंकजं रमा लक्ष्मीः मुदं हर्षम्।

अत्र सरलाः सरलाः हरिणा हरिणा कमलं कमलं परमा परमा इति पादांतगं पदयमकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-यह जल शोभाको प्राप्त होरहा है जिसके समीपमें सरल (सीधे) सरलके (रालके) वृक्ष हैं और जिसके पास हिरण हवाके समान दौडते हैं और जहां लक्ष्मी कमलको प्राप्त होकर परम आनंदको प्राप्त होती है। यहां सरलाः सरलाः हरिणाः हरिणाः कमलं कमलं परमा परमा पादांतगत पदयमक है ॥३३॥

कांतारभूमौ पिककामिनीनां कां तारवाचं क्षमते स्म सोढुम् ॥ कांता रतेशेऽध्वनि वर्त्तमाने कांतारविंदस्य मधोः प्रवेशे ॥ ३४ ॥

टीका--कांता रतेशे अध्वनि वर्त्तमाने (सति) कांतारविंदस्य मधोः प्रवेशे कांतारभूमौ पिककामिनीनां कां तारवाचं सोढुं क्षमते स्म इत्यन्वयः ॥ कांता कामिनी रतेशे रतस्य संगमस्य इशः रतेशः तस्मिन् कांते अध्वनि मार्गे वर्त्तमाने प्रोषिते सति कांतानि मनोहराणि अरविंदानि पंकजानि यत्र तथाभूतस्य मधोः चैत्रस्य प्रवेशे कांतारस्य वनस्य भूमौ वनप्रदेशे पिककामिनीनां पिकांगनानां कां तारवाचं उच्चैर्मनोज्ञां वाणीं सोढुं सहनं कर्तुं क्षमते स्म (न कापि सोढुं क्षमते इत्यर्थः)। अत्र पादानामादिषु कांतारेति पदावृत्तिः ॥ ३४ ॥

अर्थ–कामिनी जब कि कांत मार्ग (विदेश) में हो फूले मनोहर कमलों युक्त चैत्र (वसंत) के प्रवेश समय वन प्रदेशमें पिकांगनाओंकी कौनसी ऊंची और मनोहारिणी वाणीको सहन करनेको समर्थ होसक्तीहै (अर्थात् नहीं होसक्ती)। इसमें चारों पादोंके आदिमें कांतार शब्दकी आवृत्ति है ॥ ३४ ॥

चकार साहसं युद्धे धृतोल्लासा हसं च या ॥ दैन्यं वा साहसं प्राप्ता द्विषां सोत्साह संहतिः ॥ ३५ ॥

टीका–हे सोत्साह ! या द्विषां संहतिः धृतोल्लासा (सती) युद्धे साहसं चकार सा हसं दैन्यं वा साहसं प्राप्ता इत्यन्वयः ॥ द्विषां शत्रूणां संहतिः सेना धृतोल्लासा धृतः उल्लासो यया युद्धे साहसं विक्रमं समुद्यमं च चकार सा सेना हसं हास्यम् अथवा दैन्यं दीनत्वं कातर्य्यमित्यर्थः अथवा साहसं दंडं बंधनादिकमिति भावः प्राप्ता प्राप्तवती। अत्र चतुर्षु चरणेषु मध्ये साहसम् इति पदस्यावृत्तिः ॥ ३५ ॥

अर्थ–हे सोत्साह उत्साह युक्त राजन जो शत्रुओंकी फौज जोशमें आकर युद्धमें साहस (उद्योग तथा पराक्रम) करती भई सो हास्यको तथा दीनताको तथा बंधनादिक दंडको प्राप्त होती भई। यहां साहसं पद चारों चरणोंमें आया है उससे मध्यगत पदयमक है ॥ ३५ ॥

गिरां श्रूयते कोकिला कोविदारं यतस्तद्वनं विस्फुरत्कोविदारम् ॥ मुनीनां वसत्यत्र लोको विदारं न चव्याधचक्रं कृतौको विदारम् ॥ ३६ ॥

टीका—अत्र गिरां कोविदा कोकिला अरं श्रूयते च विदारं (यथा भवति तथा) मुनीनां लोकः वसति यतः विस्फुरत्कोविदारं तत् वनं विदारं व्याधचक्रं कृतौका न इत्यन्वयः ॥ अत्र वने गिरां वाचां कोविदा पंडिता कोकिला अरम् अत्यर्थं श्रूयते च विदारं दाररहितं यथा भवति तथा मुनीनां लोकः मुनिसमूहः वसति यतः कारणात् विस्फुरत्कोविदारं विस्फुरंतः विकसंतः कोविदाराः कांचनारवृक्षा यत्र तथाभूतं तद्वनं विदारं वीन् पक्षिणः दारयति नाशयतीति विदारं पक्षिविनाशकं व्याधचक्रं हिंसकवृंदं कृतौकः कृतम् ओकः स्थानं येन तत् तथाभूतं न तत्र वनेऽस्तीत्यर्थः । अत्र पादांते विदारशब्दावृत्या अंत्यपद यमकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ--इस जगह वाणीके विद्वान् कोकिला खूब सुनाई देते हैं और कांतारहित मुनियोंका समूह वसता है इस कारणसे स्फुरायमान कचनालके वृक्षोंवाला यह वन पक्षिविनाशक हिंसकोंका स्थान नहीं है । यहां चारों चरणोंके अंतमें कोविदार शब्द होनेसे अंत्ययमक हुवा ॥ ३६ ॥

सिंधुरोचितलताग्रशल्लकीसिंधुरोचितमु-
पेत्य किन्नरैः ॥ कंदराजितमदस्तटं
गिरेः कंदराजितगृहश्रि गीयते ॥ ३७ ॥

टीका--सिंधुरोचितलताग्रशल्लकीसिंधुरोचितं कंद-राजितं कंदराजितगृहश्रि अदः गिरेः तटम् उपेत्य किन्नरैः गीयते इत्यन्वयः ॥ सिंधुराणां गजानाम् उ-चितः योग्या लता तासाम् अग्रे शल्लकी तरुविशेषः यत्र तथाभूता सिंधुः नदी तया रोचितं शोभितं सिंधु रोचितलताग्रशल्लकीसिंधुरोचितं कंदराजितं कंदैः मूल विशेषैः राजितं पूरितं कंदराभिः गुहाभिः जिता गृहा-णां श्रीः शोभा येन तत् कंदराजितगृहश्रि एवं भूतं गिरेः पर्वतस्य तटम् उपेत्य आगत्य किन्नरैः किंपुरुषैः गीय-ते गानं कृयते इत्यर्थः । अत्र सिंधुरोचित सिंधुरोचित कंदराजित कंदराजित इति आदियमकम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-सिंधुरों (हाथियों) के योग्य लता और उनके अगाडी शल्लकीके वृक्ष हैं जिस सिंधु नदीमें ऐसी नदी करके रोचित अर्थात् शोभित और कन्दों करके पूरित तथा कंदराओंकरके जीती है घरोंकी शोभा जिसने ऐसा जो यह पर्वतका तट वहां आकर किन्नरोंकरके गान किया जाता है । यहां सिंधुरोचित सिंधुरोचित और कंदराजित कंदराजित आदियमक है ॥ ३७ ॥

वसन्सरोगोऽत्र जनो न कश्चित्परं सरोगो य-
दि राजहंसः॥गीतं कलं को न करोति सिद्धः
शैले कलंकोज्झितकाननेऽस्मिन् ॥ ३८ ॥

टीका-अस्मिन् कलंकोज्झितकानने शैले कः सिद्धः कलं गीतं न करोति अत्र वसन् कश्चित् जनः सरोगः न परं यदि राजहंसः (तदा) सरोगः स्यादिति शेषेणान्वयः ॥ कलंकेन दूषणेन उज्झितं वर्जितं काननं वनं यत्र तस्मिन् कलंकोज्झितकानने शैले पर्वते कः सिद्धः कलं गीतं न करोति अपि तु सर्व एव मधुरगानं कुर्वन्ति अत्र पर्वते वासं कुर्वन् कश्चिदपि जनः सरोगः रोगयुक्तो न भवति अतीवस्वास्थ्यकरोऽयं शैल इतिभावः परं परंतु यदि अत्र राजहंसः वासं करोति तदा सरोगः स्यात् सरसि गच्छतीति सरोगः सरसि गत्वा क्रीडां करोतीत्यर्थः पर्वतोयं सरसापि युक्त इति भावः। अत्र सरोगः सरोगः कलंकः कलंक इति मध्यगतपदयमकम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस कलंकरहित वनयुक्त पर्वतपर कौनसा सिद्ध (गंधर्व) मधुर गान नहीं करता है अर्थात् सभी करते हैं और यहां बसकर कोई भी मनुष्य सरोग (रोगयुक्त) नहीं होता (अर्थात् अतिस्वास्थ्यकारक है) परंतु यदि यहां राजहंस निवास करे तो वह सरोग (सर सरोवर उसमें गमन करनेवाला) होवे अर्थात् वहां सरोवर भी हैं। यहां पहले दो पदोंमें सरोग सरोग और पिछले दो पदोंमें कलंक कलंक मध्यगत पदयमक है ॥३८॥

जहुर्वसंते सरसीं न वारणा बभुः पिकानां मधुरा नवा रणाः ॥ रसं न का मोह

नकोविदाऽऽर कं विलोकयंती बकुलान् विदारकम् ॥ ३९ ॥

टीका--वसंते वारणाः सरसीं न जहुः पिकानां मधुरा नवा रणाः बभुः का मोहनकोविदा बकुलान् विलोकयंती (सती) विदारकं कं रसं न आर इत्यन्वयः ॥ वारणाः हस्तिनः पिकानां कोकिलानां नवा नूतना रणाः शब्दाः बभुः शोभंते। का काचित् अपि मोहने कोविदा मोहनकोविदा अथवा कामोहनकोविदा कामस्य ऊहनं वितर्कः तस्मिन् कोविदा ज्ञानवती सुंदरी बकुलान् बकुल वृक्षान् विलोकयंती सती विदारकं विशेषेण दारकं चित्ते व्यथाकारकम् अथवा विशेषेण दारं करोतीति विदारकः भर्ता तत्संबंधिनं कं रसं न आर न प्राप अपि तु प्राप एव। अत्र नवारणाः नवारणाः विदारकं विदारकम् इति अंत्ययमकम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–वसंत ऋतुमें हस्ती सरोवरोंको नहीं त्यागते हैं और पिकों (कोकिलों) के नवीन २ मधुर शब्द शोभाको प्राप्त हुवा करते हैं (ऐसी वसंत ऋतुमें) कामकी जो वितर्कना उसमें कोविद अर्थात् जाननेवाली सुंदरी बकुल (मोलसरी)के वृक्षोंको देखती हुई कौनसे विदारक (दुःखदायक) रसको नहीं प्राप्त होती भई (अथवा दारक नाम भर्ता विशेष करके तत्संबंधि कौनसे रसको न प्राप्त हुई अर्थात् वसंतमें सभी प्रकार संभोग रसको प्राप्त होती भई)। यहां पहले दो पदोंमें नवारणा नवारण और पिछलोंमें विदारकं विदारकं अंत्यपदयमक है ॥ ३९ ॥

वरणाः प्रसूननिकरावरणा मलिनां वहंति पटलीमलिनाम् ॥ तरवः सदात्र शिखिजातरवः सरसश्च भाति निकटे सरसः ॥ ४० ॥

टीका--प्रसूननिकरावरणाः वरणाः तरवः अलिनां मलिनां पटलीं वहंति अत्र च सरसः निकटे सदा सरसः शिखिजातरवः भाति इत्यन्वयः ॥ प्रसूननिकराणां पुष्पसमूहानाम् आवरणम् आच्छादनं येषां तथाभूता वरणा वरणाख्याः तरवः अलिनां भ्रमराणां मलिनां श्यामलां पटलीं पंक्तिं वहंति धारयंतीत्यर्थः अत्र सरसः सरोवरस्य निकटे समीपे सरसः रससहितः शिखिजातरवः शिखिभ्यः मयूरेभ्यः जातः उच्चरितः रवः शब्दः केकावाणीत्यर्थः। अत्र वरणा वरणा इत्यादिकम् आद्यंतयमकम् ॥ ४० ॥

अर्थ--नवीन पुष्पोंसे आच्छादित जो वरणोंके वृक्ष हैं सो भ्रमरोंकी श्याम पंक्तियोंको धारण कर रहे हैं और यहां सरोवरके निकट सदा मयूरोंकी सरस वाणी शोभाको प्राप्त होती है। यहां प्रथम पादके आदि और अंतमें वरणा वरणा है इसी प्रकार सब चरणोंमें आद्यंत यमक है ॥ ४० ॥

यथाथथा द्विजिह्वस्य विभवः स्यान्महत्तमः ॥ तथातथास्य जायेत स्पर्द्धयैव महत्तमः ॥ ४१ ॥

टीका--यथायथं द्विजिह्वस्य महत्तमः विभवः स्यात् तथातथा अस्य स्पर्द्धया एव महत् तमः जायेत इत्यन्वयः ॥ द्विजिह्वस्य दुर्जनस्य अग्रे अन्यत् पृष्ठतः अन्यत् कथयतः तस्य द्विजिह्वत्वम्। महत्तमः अतिशयेन महान् इति महत्तमः विभवः संपत्तिः अस्य दुर्जनस्य तथातथा स्पर्द्धया एव पराभिभवेच्छया महत् तमः महान् मोहः जायेत अत्र महत्तमः इत्यस्य द्वितीयपादे चतुर्थपादे च आवृत्तिः ॥ ४१ ॥

अर्थ--जैसे जैसे दुर्जन मनुष्यका अधिक अधिक विभव बढता जाता है वैसेही वैसे स्पर्द्धा पराई अवनतिकी इच्छा बढ़ बढ़कर महान् मोह उत्पन्न होताहै । यहां दूसरे और चौथे पादके अंतमें महत्तम शब्दकी आवृत्तिहै ॥ ४१ ॥

दास्यति दास्यतिकोपादास्यति सति कर्करान् शापम् ॥ भवति भवति ह्यनर्थो भव स्तिमितस्तेन वटुक त्वम् ॥४२॥

टीका--हे वटुक! दासी अतिकोपात् भवति कर्करान् आस्यति सति शापं दास्यति हि अनर्थो भवति तेन त्वं स्तिमितो भव इत्यन्वयः ॥ कर्करान् चूर्णितपाषाणखंडान् आस्यति आ समंतात् अस्यति क्षिपति असुक्षेपणे धातोः।स्तिमितः निश्चलो भव। अत्र संयुतासंयुतभेदेन दास्यति दास्यति इत्यादिपदानाम् आवृत्तिः ॥ ४२ ॥

अर्थ-हे बालक तुम्हारे कंकर फैंकनेसे दासी अतिकोपसे शाप देगी (अर्थात् गाली देगी) जिससे अनर्थ होगा इस कारण तू निश्चल रह अर्थात् चपलता मत कर। इसमें दास्यति दास्यति इत्यादि संयुत और असंयुत पदोंकी आवृत्ति है अर्थात प्रथम पादमें दास्यति दास्यति और तृतीय पादमें भवति भवति आदिमें है इससे आदियमक है ॥ ४२ ॥

कुलं तिमिभयादेव करेणूनां न दीव्यति ॥
नदीव्यतिकरेऽणूनां प्राणिनां गणनापि का ४३

टीका--नदीव्यतिकरे तिमिभयात् एव करेणूनां कुलं न दीव्यति अणूनां प्राणिनाम् अपि का गणना इत्यन्वयः ॥ नदीव्यतिकरे नदीसंगमे तिमिभयात् वृद्धमत्स्यभयात् करेणूनां कुलं हस्तिनां वृंदं न दीव्यति न क्रीडति तदा अणूनां क्षुद्राणां प्राणिनां जीवानां का गणना कापि न इत्यर्थः। तिमिः महाकायो मत्स्यः (इतिशब्दस्तोमः)। अत्र द्वितीयपादस्य व्यत्यासात् तृतीयपादे आवृत्तिः ॥ ४३ ॥

अर्थ--नदीके संगममें बडे मत्स्योंके भयसे हस्तियोंका समूह भी क्रीडा नहीं कर सक्ता है (वहांपर) छोटे २ जीवोंकी तो क्या गिनती है। इसमें दूसरा पाद उलट कर तीसरेमें है॥ ४३॥

गांगाम्बुधवलांगाभो मुमुक्षुध्यानगोचरः ॥ पापार्तिहरणायास्तु स सज्ज्ञानो जिनः सताम् ॥ ४४ ॥

टीका–स गंगांबुधवलांगाभो मुमुक्षुध्यानगोचरः सज्ज्ञानः जिनः सतां पापार्तिहरणाय अस्तु इत्यन्वयः ॥ गंगाया अंबु गांगांबु तद्वत् धवला अंगस्य आभा यस्य स तथा मुमुक्षूणां ध्यानेन गोचरः मुमुक्षुजनसाक्षात्करणीय इत्यर्थः सत् समीचीनं ज्ञानं यस्य तथाभूतः जिनः सतां साधूनां पापार्तिहरणाय पापक्लेशनिवारणाय अस्तु। इदं पद्यं प्रक्षिप्तं यमकोदाहरणं नैव भवति किंतु अनुप्रासोदाहरणं भवति ४४

अर्थ–वे गंगाजलके समान उज्ज्वल शरीरकी कांतिवाले और मुमुक्षु जनोंके ध्यानगोचर होनेवाले श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त जिन भगवान् साधुओंके पाप क्लेश निवारण करनेके लिये हों। यह श्लोक क्षेपक मालूम होता है यह यमकका उदाहरण नहीं होसक्ता किंतु अनुप्रास छेकानुप्रासका उदाहरण होसक्ता है ॥ ४४ ॥

जनमात्मकीर्तिशुभ्रं जनयन्नुद्दामधामदोःपरिघः ॥ जयति प्रतापपूषा जयसिंहः क्ष्माभृदधिनाथः ॥ ४५ ॥

टीका–क्ष्माभृदधिनाथः प्रतापपूषा उद्दामधामदोःपरिघः जयसिंहः जनम् आत्मकीर्तिशुभ्रं जनयन् (सन्) जयति इत्यन्वयः ॥ क्ष्माभृतां राज्ञाम् अधिनाथः अधीश्वरः प्रतापपूषा प्रतापे पूषा सूर्य इव उद्दामधामदोःपरिघः उद्दामं उत्कटं धाम तेजः यस्य तथा-

भूतं दोः भुजः एव परिघः मुद्गर इव यस्य तथोक्तः जयसिंहः जनं लोकम् आत्मकीर्त्तिशुभ्रम् आत्मनः कीर्त्तिभिः यशोभिः शुभ्रं धवलं जनयन् कुर्वन् सन् जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते। अत्र प्रथमद्वितीयपादादौ जन जन इत्यस्य तथा तृतीयचतुर्थपादादौ जय-जय इत्यस्य आवृत्तित्वात् आद्ययमकम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-राजाओंके राजा सूर्य समान तेजस्वी और अति बलिष्ठ हाथ जिनके अर्गलास्वरूप हैं ऐसे जयसिंह अपनी कीर्तिसे लोकोंको श्वेत करते हुए जयको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥

मामाकारयते रामा सासा मुदितमानसा ॥ याया मदारुणच्छाया नानाहेलामयानना ॥ ४६ ॥

टीका-याया मदारुणच्छाया नानाहेलामयानना सासा मुदितमानसा रामा मां आकारयते इत्यन्वयः मदेन मद्यपानेन अरुणा रक्ता छाया कांतिः यस्याः नानाहेलामयानना नानाहेलामयं विविधविलास-पूर्णम् आननं यस्याः तथाभूता मुदितमानसा हृष्ट-चित्ता सासा रामा कांता माम् आकारयते ममावाह-नं करोतीत्यर्थः। अत्र पादेषु आदौ अंतेच मामा सा-सा याया नाना इत्यादि वर्णावृत्तिः ॥ ४६ ॥

अर्थ--जो जो मद्यपान करके लाल वदनवाली और नाना प्रकारके हेलामय मुखवाली होजाती है सो सो स्त्री प्रसन्नचित्त होकर मुझे बुलाती है। यहां सब चरणोंके आदि और अंतमें मामा तथा सासा मामा और नाना वर्णोंकी आवृत्ति होनेसे वर्ण-यमक हुवा ॥ ४६ ॥

(भाषा) दोहा--अर्थ पलट आवत बहुरि, जहां वर्ण पद पाद। यमक ताहिको कहत हैं, अंत मध्य अरु आद ॥ १ ॥

इति वाग्भटालंकारे चतुर्थपरिच्छेदस्य पूर्वार्द्धम्।

अथार्थालंकाराः।

स्वभावोक्ति।

स्वभावोक्तिः पदार्थस्य सक्रियस्याक्रियस्य वा ॥ जातिर्विशेषतो रम्या हीने तत्रार्भकादिषु ॥ ४७ ॥

टीका--सक्रियस्य अक्रियस्य वा पदार्थस्य स्वभावोक्तिः जातिः तत्र हीने अर्भकादिषु विशेषतः रम्या इत्यन्वयः ॥ सक्रियस्य चेतनस्य अक्रियस्य जडस्य वृक्षादेः स्वभावस्य उक्तिः कथनं सा जातिर्नामालंकारः एषा स्वभावोक्तिशब्देन प्रायशो व्यवह्रियते। सा स्वभावोक्तिः हीने निकृष्टे तथा अर्भकादिषु बालादिषु विशेषतः रम्या रमणीया ॥ ४७ ॥

अर्थ-क्रियावान् (चैतन्य) तथा क्रियारहित (जड वृक्षादिक) पदार्थोंके स्वभावका वर्णन हो उसे जातिनामक अथवा स्वभावोक्ति नामक अर्थालंकार कहते हैं वह हीन तथा बालकादिकमें विशेष रमणीक होता है ॥ ४७ ॥

बर्हावलीबहलकांचिरुचो विचित्रभूर्यत्वचारचितचारुदुकुललीलाः ॥ गुंजाफलग्रथितहारलताः सहेलं खेलंति खेलगतयोऽत्र वने शबर्यः ॥ ४८ ॥

टीका-अत्र वने बर्हावलीबहलकांचिरुचः विचित्रभूर्यत्वचारचितचारुदुकूललीलाः गुंजाफलग्रथितहारलताः शबर्यः सहेलं खेलगतयः खेलंति इत्यन्वयः ॥ बर्हावली मयूरपिच्छानां श्रेणी सा एव बहला विशाला काची मेखला तया रोचंते इति बर्हावलीबहलकांचिरुचः विचित्रभूर्यत्वचा विविधवर्णभूर्यवृक्षस्य वल्कलेन रचिता दुकूलस्य पट्टस्य लीला याभिः ताः गुंजाफलैः ग्रथिता हारस्य लता याभिः तथोक्ताः शबर्यः भिल्लनार्यः खेलगतयः खेले क्रीडायां गतिर्यासां तथाभूताः सत्यः सहेलं सविलासं खेलंति क्रीडंतीत्यर्थः । अत्र हीनानां भिल्लबालानां स्वभावस्य कथनत्वात् स्वभावोक्तिरलंकारः ॥ ४८ ॥

अर्थ--यहां वनमें मोरपंखोंकी पंक्तिकी मेखला (तगडी)से शोभित और विचित्र भोजपत्रसे रेशमी वस्त्रोंकी लीला रचे हुवे चिरमिठियोंसे गूथ रक्खी हैं हारकी लडी जिन्होंने ऐसी भिल्लोंकी मुग्धा स्त्री हेलापूर्वक खेलमें मन लगाये हुवे खेलती हैं। यहां हीनजाति भिल्लवालाओंके स्वभावका कथन होनेसे स्वभावोक्ति अलंकार हुवा ॥ ४८ ॥

प्राकृत उदाहरण।

आरत्तनैणभीसणवअणुक्केरा कुरंग-
च्छि ॥ उल्लसिअवीसभुअवणविणिवे-
सो दसमुहो एसो ॥ ४९ ॥

टीका-(अस्य संस्कृतम्) आरक्तनयनभीषणवदन समूहः कुरंगाक्षि॥उल्लसितविंशतिभुजवनविनिवेशो दशमुखः एषः ॥ अस्यान्वयः। हे कुरंगाक्षि एष दशमुखः आरक्तनयनभीषणवदनसमूहः उल्लसितविंशतिभुजवनविनिवेशः इत्यन्वयः ॥ आरक्तैः नयनैः भीषणः भयंकरः वदनसमूहो यस्य सः तथा उल्लसितो विंशति भुजानां वनस्य विनिवेशो यस्य। सीतां प्रति कस्याश्चित् राक्षस्या उक्तिरियम्। अत्र रावणस्य स्वभावकथनत्वात् स्वभावोक्तिरलंकारः ॥ ४९ ॥

अर्थ-(सीतासे किसी राक्षसीने कहा) हे कुरंगाक्षि ! यह रावण ऐसा है कि लाल लाल डरावने नेत्र युक्त दश मुखोंवाला है और इसके बडे बडे वीस हाथोंका समूह है इसमें रावणके स्वभावका वर्णन होनेसे स्वभावोक्ति हुवा ॥ ४९ ॥

(भाषा) जड अथवा चैतन्यका, स्वभाव वर्णन होइ । स्वभावोक्ति तिहे कहत हैं, जाति कहत हैं कोइ ॥ १ ॥ (उदाहरण) लोचन लाल डरावने तापर तीखी सैन । भयदायकवीसों भुजा दशमुख ऐसो ऐन ॥ २ ॥

उपमालक्षण ।

उपमानेन सादृश्यमुपमेयस्य यत्र सा ॥ प्रत्ययाव्ययतुल्यार्थसमासैरुपमेयता ॥ ५० ॥

टीका--यत्र प्रत्ययाव्ययतुल्यार्थसमासैः उपमानेन उपमेयस्य सादृशं सा उपमेयता इत्यन्वयः ॥ प्रत्ययैः वतिप्रभृतिभिः अव्ययैः इवादिभिः तुल्यार्थैः समतुल्यादिभिः तथा समासैः कर्मधारयबहुव्रीह्यादिभिः उपमानेन उपमीयते अनेन इति उपमानं तेन सादृश्यज्ञान साधकेन उपमेयस्य उपमातुं योग्यः उपमेयः तस्य सादृश्यं साम्यम् उपमेयता उपमा इत्यर्थः । वस्तुतस्तु उपमेयोपमानधर्मवाचकैश्चतुर्भिः पूर्णोपमालंकारः। एषु उपमेयादिषु एकस्य द्वयोः त्रयाणां वा लोपात् लुप्तोपमालंकारः । स चाष्टविधः तथाचोक्तं कुवलयानंदे "वर्ण्योपमानधर्माणामुपमावाचकस्य च । एकद्व्यनुपादानैर्भिन्ना लुप्तोपमाऽष्टधा" इति॥ वर्ण्यः उपमेयः धर्मः द्वयोः सादृश्यहेतुः मनोज्ञत्वशुक्लत्वादिः वाचकः इवादिशब्दः ॥ ५० ॥

अर्थ–जहां प्रत्यय वत् आदि और अव्यय इव आदिक तथा तुल्य सम समान आदि वाचक शब्दों करके तथा कर्मधारय बहुव्रीहि आदि समास करके उपमानसे उपमेयकी समानता कही जावे तो उसे उपमा अलंकार कहते हैं प्रयोजन यह कि (१) उपमेय (२) उपमान (३) धर्म (४) वाचक इन चारोंके होनेसे पूर्णोपमालंकार होता है और इनमेंसे किसी एकके या दोके या तीनके लोप होनेसे लुप्तोपमा अलंकार होता है (कुवलयानंदमें लुप्तोपमाके आठ भेद लिखे हैं) जिसकी उपमा करी जावे उसे उपमेय कहते हैं जिसकी तुल्यता वर्णन करी जावे उसे उपमान कहते हैं और जो सादृश्यभाव दोनोंमें पाया जावे उसे धर्म कहते हैं और जो समताद्योतक शब्द होता है उसे वाचक कहते हैं जैसे चंद्रवत् उज्ज्वलं मुखं अर्थात् चांदसा सुंदर मुख है इसमें मुख उपमेय है चांद उपमान है सा वाचक और सुंदर धर्म है ॥ ५० ॥

गत्या विभ्रममंदया प्रतिपदं या राजहंसायते यस्याः पूर्णशशांकमंडलमिव श्रीमत्सदैवाननम् ॥ यस्याश्चानुकरोति नेत्रयुगलं नीलोत्पलानि श्रिया तां कुंदाग्रदतीं त्यजन् जिनपती राजीमतीं पातु वः ॥ ५१ ॥

टीका–जिनपतिः तां कुंदाग्रदतीं राजीमतीं त्यजन् वः पातु तां कां या विभ्रममंदया गत्या प्रतिपदं राजहंसायते च यस्याः आननं सदा एव पूर्णशशांकमंडलम्

इव श्रीमत् च यस्या नेत्रयुगलं श्रिया नीलोत्पलानि अनुकरोति इत्यन्वयः॥विभ्रमः मदोन्मत्तस्य इव चेष्टा तेन मंदया गत्या प्रतिपदं पदं पदं प्रति राजहंसायते राजहंस इव आचरति आननं मुखं पूर्णशशांकमंडलम् इव पूर्णचंद्रबिंबम् इव श्रीमत् शोभायुक्तं नेत्रयुगलं श्रिया शोभया नीलोत्पलानि नीलकमलानि अनुकरोति नीलकमलानीवाचरतीत्यर्थः अत्र प्रथमचरणे या (राजीमती) उपमेयः राजहंसः उपमानं मंदगतिर्धर्मः इवार्थेक्यङ् प्रत्ययः वाचकः॥द्वितीये चरणे आननम् उपमेयः पूर्णशशांकमंडलम् उपमानं श्रीमत् धर्मः इव वाचकः इतिपूर्णोपमालंकारः। तृतीयपादे नेत्रयुगलम् उपमेयः नीलोत्पलानि उपमानम् अनुकरोति तुल्यार्थक्रियावाचकः अस्य धर्मलोपत्वात् धर्मलुप्ता लुप्तोपमालंकारः। कुंदाग्रदती इत्यत्र दंता उपमेयः कुंदाग्रम् उपमानं धर्मस्य वाचकस्य च लोपात् धर्मवाचक लुप्ता लुप्तोपमा अलंकारः ॥ ९१ ॥

अर्थ—जिनपति नेमिनाथजी उस कुंदकलीके समान दांतोवाली राजमतीको त्याग करते हुवे तुम्हारी रक्षा करो कैसी राजमती कि जो झूलती हुई मंद मंद चालसे राजहंसकी भांत आचरण करती है और जिसका मुख पूर्णमाके चंद्रमंडलके समान सुंदर है और जिसके दोनों नेत्र सुंदरतामें नील कमलकी समानता करते हैं इस श्लोकके पहले पादमें या (राजमती)

तो उपमेय है और राजहंस उपमान तथा मंदगति उभय व्यापी धर्म है और तुल्यताद्योतक प्रत्यय (जो राजहंसायतेके साथमें है) वाचक है इसी भांत दूसरे चरणमें आनन (मुख) उपमेय है पूर्ण शशांक मंडल उपमान है श्रीमत् उभय व्यापी धर्म है और इव शब्द वाचक है इससे पूर्णोपमा अलंकार हुवा और तीसरे चरणमें नेत्रयुगल उपमेय नीलोत्पल उपमान और अनुकरोति वाचक है यहां सादृश्य बोधक उभयव्यापी धर्म नहीं कहे जानेसे धर्मलुप्ता अलंकार हुवा और चौथे चरणके कुंदाग्रदंती वाक्यमें दंत उपमेय और कुंदाग्र उपमान है इसमें वाचक और धर्म दोके नहीं कहे जानेसे धर्मवाचक लुप्ता लुप्तोपमा अलंकार हुवा (इसी प्रकार और उदाहरणोंमें जानलेना) ॥ ५१ ॥

चंद्रवद्वदनं तस्याः नेत्रे नीलोत्पले इव ॥ पक्वबिंबं हसत्योष्ठः पुष्पधन्वधनु र्भ्रुवः ॥ ५२ ॥

टीका--तस्याः पुष्पधन्वधनुर्भ्रुवः वदनं चंद्रवत् नेत्रे नीलोत्पले इव ओष्ठः पक्वबिंबं हसति इत्यन्वयः ॥ पुष्पधन्वा कामदेवः तस्य धनुरिव भ्रूः यस्याः सा पुष्पधन्वधनुर्भ्रूः तस्या अत्रापि धर्मलोपात् लुप्तोपमालंकारः ॥ ५२ ॥

अर्थ—उस कामदेवके धनुष तुल्य भ्रुकुटीवाली सुंदरीका मुख चंद्रमाके समान है और दोनों नेत्र नीले कमलके तुल्य हैं और होठ पके हुए बिंबका उपहास्य करते हैं इस श्लोकमें सर्वत्र सादृश्य बोधक धर्मका लोप होनेसे लुप्तोपमा अलंकार है ॥ ५२ ॥

प्राकृतम् ।

मदभरिअमाणसस्सविणिच्चं दोखाअर स्स ससिणो च तुह विरहे तीअ मुहं संकुइअं मुद्दअ कुमुअं व ॥ ५३ ॥

टीका-(अस्यसंस्कृतम्) मदभृतमानसस्यापि नित्यं दोषाकरस्य शशिन इव तव विरहे स्त्रियाः मुखं संकुचितं सुभग ! कुमुदमिव (अस्यान्वयः) हे सुभग मदभृतमानसस्य अपि दोषाकरस्य शशिन इव तव विरहे स्त्रियाः मुखं कुमुदमिव नित्यं संकुचितम् इत्यन्वयः ॥ मदेन गर्वेण भृतं मानसं यस्य अथवा मदेन मद्येन भृतं मानसं यस्य पक्षे मदः कस्तूरी तां बिभर्ति इति मदभृतः मृगः स मानसे उत्संगे यस्य तथा दोषाकरस्य दोषाणाम् आकरः दोषाकरः तस्य चंद्रपक्षे दोषाकरः निशाकरः तस्य तथा भूतस्य शशिन इव तव विरहे वियोगे स्त्रियाः मुखं कांतायाः मुखं कुमुदमिव संकुचितं चंद्रस्य विरहे कुमुदसंकोचनं युक्तम् एव अत्रा प्युपमालंकारः ॥ ५३ ॥

अर्थ-हे सुभग मद (कस्तूरी) धारण करनेवाले मृग सो हैं हृदयमें जिसके (अर्थात् मृगांक) और दोषा (रात्रि) के करने वाले चंद्रमा तिसके समान । मद (गर्व) से भरा हुवा मानस (चित्त) है जिसका और दोष (दुष्टता) जिसकी आकर (खान) ऐसे जो तुम हो तुम्हारे विरहमें स्त्रीका मुख कुमोदनीकी भांत

संकुचित होरहा है (चंद्रमाके विरहमें कुमोदनीका संकुचित होना उचितही है) (यहां मदभृत मानसस्य और दोषाकरस्य चंद्रमा और सुभग पुरुष दोनोंके विशेषण श्लेषके आश्रयसे हो सक्ते हैं) (यहां भी उपमा अलंकार है) ॥ ५३ ॥

उपमालक्षण भाषा।

(सोरठा) उपमेयरु उपमान, वाचक धर्म समानपन। ताहि ऊपमा जान, शशि सो सुंदर तियवदन ॥ १ ॥ (लुप्तोपमा) इन चारोंमें कोई, इक विन दो विन तीन विन। लुप्त ऊपमा सोइ, विजरि द्युति पंकज नयनि ॥ २ ॥

अन्योन्योपमा।

तं णमह वीतराअं जिणं दमुद्दलिअदढअर कसाअम्॥ जस्स मणं व सरीरं मणं सरीरं व सुप्पसण्णम् ॥ ५४ ॥

टीका--(अस्य संस्कृतम्) तं नमत वीतरागं जिनं दमोद्दलितदृढतरकषायं यस्य मन इव शरीरं मनः शरीरमिव सुप्रसन्नम् (अस्यान्वयः) तं वीतरागं दमो द्दलितदृढतरकषायं जिनं नमत यस्य मनः इव शरीरं शरीरम् इव मनः सुप्रसन्नम् इत्यन्वयः॥ वीतः विगतः रागो यस्मात् इति वीतरागः तं दमेन बाह्येंद्रियनिग्रहेण उद्दलितः दूरीकृतः दृढतरः कषायः अंतःकरण दोषः येन तं नमत प्रणामं कुरुत सुप्रसन्नं प्रसन्नता युक्तम्। अत्र मन इव शरीरं शरीरमिव मनः इत्यन्यो न्योपमेयोपमानत्वेन अन्योन्योपमालंकारः॥ ५४॥

अर्थ--उन वीतराग और दश (इंद्रिय निग्रह) करके दूर कर दिया है दृढ़तर कषाय (अंतःकरणके ईर्षादि दोष) जिन्होंने ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार करो जिनका मन शरीरकी भांत और शरीर मनकी तरह प्रसन्न रहता है यहां शरीर और मन परस्पर उपमेय और उपमान होनेसे अन्योन्योपमा अलंकार हुवा ॥ ५४ ॥

अनन्वयालंकार ।

ये देव ! भवतः पादौ भवत्पादाविवाश्रि. ताः ॥ ते लभंतेऽद्भुतां भव्यां श्रियं त इव शाश्वतीम् ॥ ५५ ॥

टीका-हे देव ये (जनाः) भवत्पादौ इव भवतः पादौ आश्रिताः ते अद्भुतां भव्यां शाश्वतीम् श्रियं लभंते ते ते इव इत्यन्वयः ॥ अद्भुताम् अद्वितीयां भव्यां समीचीनां शाश्वतीम अविनाशनीम् अत्र एकत्रैवोपमेयोपमानत्वात् अनन्वयोपमालंकारः अनन्वयालंकार इत्यर्थः (उक्तं च साहित्यदर्पणे) "उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः" इति ॥ ५५ ॥

अर्थ-हे देव जो मनुष्य आपके चरणों जैसेही आपके चरणोंके आश्रित हैं वे अद्भुत समीचीन और निश्चल लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं सो वे (भक्त) उन जैसेही हैं यहां एकहीमें उपमान और उपमेयत्व होनेसे अनन्वयोपमा (अनन्वय) अलंकार हुवा ॥५५॥

अनन्वयलक्षण भाषा।

दोहा-उपमेय रु उपमान दोइ, एक वस्तुमें होय ॥ नाम अनन्वय ताहिको चांद चांदसो जोय ॥ १ ॥

समुच्चयोपमालंकार।

आलोकनं च वचनं च निगूहनं च यासां स्मरन्नमृतवत्सरसं कृशस्त्वम् ॥
तासां किमंग ! पिशितास्थिपुरीषपात्रं गात्रं विचिंत्य सुदृशां न निराकुलोसि ॥५६॥

टीका-हे अंग यासां सुदृशाम् आलोकनं च वचनं च निगूहनं अमृतवत् सरसं स्मरन् त्वं कृशः तासां पिशितास्थिपुरीषपात्रं गात्रं विचिंत्य किं न निराकुलः असि इत्यन्वयः ॥ आलोकनम् ईक्षणं वचनं संभाषणं निगूहनम् आलिंगनम् अमृतवत् सरसम् अमृतेन तुल्यं सुखदं स्मरन् कृशः स्मरन् सन् दुर्बल एव पिशितास्थिपुरीषाणां मांसास्थिमलानां पात्रं स्थानं गात्रं शरीरं विचिंत्य किं न निराकुलः असि अपितु निराकुल एव अत्र आलोकनादीनां बहूनाम् उपमेयानाम् एकेनामृतेन उपमानेन सादृश्यम् अतः समुच्चयोपमालंकारः ॥ ५६ ॥

अर्थ-हे अंग (हे शिष्य) जिन सुंदर नेत्रवाली स्त्रियोंके दर्शन और वचन और आलिंगनको अमृतके समान सरस जान-

कर तू दुर्बल हो रहा है उनके मांस हाड और विष्ठाके पात्र शरीरको चिंतवन करके तू व्याकुल भी हो ही रहा है यहां आलोकन वचन और निगूहन तीन उपमेयोंका अमृत एक उपमान होनेसे समुच्चयोपमा या समुच्चय अलंकार हुवा ॥ ५६ ॥

दोहा-इक साधक बहुकार्य बहु, वर्ण्य एक उपमान । सोइ समुच्चय जिमि नयन, कर पद कमल समान ॥

मालोपमा ।

कलेन चंद्रस्य कलंकमुक्ता मुक्तावलीवोरुगुणप्रपन्ना ॥ जगत्त्रयायाभिमतं ददाना जैनेश्वरी कल्पलतेव मूर्तिः ॥ ५७ ॥

टीका-जैनेश्वरी मूर्तिः कलंकमुक्ता चंद्रस्य कला इव उरुगुणप्रपन्ना मुक्तावली इव जगत्त्रयाय अभिमतं ददाना कल्पलता इव इत्यन्वयः॥जिनेश्वरस्य ऋषभदेवस्य मूर्तिः जैनेश्वरी मूर्तिःकलंकमुक्ता कलंकरहिता चंद्रकला इव उरुगुणेन महता सूत्रेण प्रपन्ना गुंफिता मुक्तावली मुक्तापंक्तिरिव जगत्त्रयाय लोकत्रयाय अभिमतं वांछितं ददाना कल्पलता इव अत्र एकस्योपमेयस्य त्रीणि चंद्रकलादीनि उपमानानि अतः मालोपमालंकारः। तथा च दर्पणे "मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते" इति ॥ ५७ ॥

अर्थ-जैनेश्वरी मूर्ति कलंक रहित चंद्रकलाके समान है तथा बडेगुण (डोरे) में पिरोई हुई मोतियोंकी लडीके समान है

तथा त्रिलोकीको वांछितफल देनेवाली कल्पलताके समान है यहां एक मूर्तिः उपमेय है और चंद्रकलादिक तीन उपमान हैं इससे मालोपमा है उदाहरणोंमें अन्य अलंकार भी झलकते हैं परंतु जिनके उदाहरण हैं वेही मुख्य दिखाते हैं ॥ ५७ ॥

मालोपमालक्षण भाषा ।

दोहा–एक वर्ण्य उपमान बहु, मालोपमा बखान। वदन कमल सम अति सरस, सुंदर चन्द्र समान ॥

विभिन्नलिंगवचनां नाति हीनाधिकां च ताम् ॥ निबध्नंति बुधाः क्वापि लिंगभेदं तु मेनिरे ॥ ५८ ॥

टीका–बुधाः क्वापि तां विभिन्नलिंगवचनां हीनाधिकां च निबध्नंति तु लिंगभेदं न मेनिरे इत्यन्वयः ॥ बुधाः पूर्वाचार्याः ताम् उपमां विभिन्ने लिंगवचने यस्या तां च हीनाधिकां हीना च अधिका च हीनाधिका तां निबध्नंति भिन्नलिंगं भिन्नवचनां हीनाम् अधिकाम् अपि उपमां क्वचित् नियोजयंतीत्यर्थः क्वचिच्च लिंगभेदं न मेनिरे इति भावः॥ ५८ ॥

अर्थ–पहलेके विद्वान् कहीं कहीं पृथक् लिंग और पृथक् वचन की उपमाको भी उपयोग करते हैं और कहीं लिंग भेदको नहीं मानते हैं (इसका उदाहरण यह है) ॥ ५८ ॥

हिममिव कीर्तिर्धवला चन्द्रकलेवातिनिर्मला वाचः ॥ ध्वांक्षस्येव च दाक्ष्यं नभ इव वक्षश्च ते विपुलम् ॥ ५९ ॥

टीका-ते कीर्तिः हिमम् इव धवला वाचः चंद्रकला इव अतिनिर्मला दाक्ष्यं ध्वांक्षस्य इव वक्षः नभ इव विपुलम् इत्यन्वयः॥ हिमम् इव कीर्तिः अत्र उपमानोपमेययोः लिंगे पार्थक्यं चंद्रकला इव वाचः इत्यत्र वचने पार्थक्यं ध्वांक्षस्येव दाक्ष्यमित्यत्र ध्वांक्षः काकः तस्य दाक्ष्यं चातुर्यं प्रसिद्धम् अत्रोपमानस्य हीनत्वं ते वक्षः हृदयं नभ इव आकाशमिव विपुलं विशालम् इत्यत्र उपमानस्य अधिकत्वम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-(हे राजन्) तेरी कीर्ति हिम (बरफ) जैसी श्वेत है और वचन चंद्रकला जैसे निर्मल हैं और चतुराई काककी जैसी है तथा हृदय आकाश जैसा विशाल है इसमें कीर्ति हिम जैसी यह कीर्ति स्त्री लिंग और इसका उपमान हिम नपुंसक लिंग है इसमें भिन्न लिंग है वचन चंद्रकला जैसे इसमें वचन बहुवचन और चंद्रकला एक वचन होनेसे भिन्न वचन है चतुराई काककी जैसी यहां उपमानमें हीनता है और हृदय आकाशसा इसमें उपमानमें अधिकता है ॥ ५९ ॥

शुनीयं गृहदेवीव प्रत्यक्षं प्रतिभाषते ॥
खद्योत इव सर्वत्र प्रतापश्च विराजते॥६०॥

टीका-इयं शुनी प्रत्यक्षं गृहदेवी इव प्रतिभाषते च प्रतापः सर्वत्र खद्योत इव विराजते इत्यन्वयः ॥ शुनी कुक्कुरी अत्र पूर्वार्द्धे उपमानस्याधिकत्वम् उत्तरार्द्धे हीनत्वं वा ॥ ६० ॥

अर्थ-यह कुक्कुरी प्रत्यक्षमें घटकी देवीसी दिखाई देती है और प्रताप सब जगह खद्योत सूर्यकी भांत दीप्तिमान है यहां पूर्वार्द्धमें उपमानकी अधिकता है और जो खद्योतका अर्थ (अगिया कृमि) पटबीजना करें तो उत्तरार्द्धमें उपमानकी हीनता है ॥ ६० ॥

सफेनपिण्डः प्रौढोर्मिरब्धिः शार्ङ्गीव शंखभृत् ॥ श्वोतन्मदः करी वर्षन् विद्युत्वानिव वारिदः ॥ ६१ ॥

टीका--सफेनापिंडः प्रौढोर्मिः अब्धिः शार्ङ्गी इव शंखभृत् श्वोतन्मदः करी वर्षन् विद्युत्वान् वारिद इव इत्यन्वयः ॥ फेनपिंडैः सह वर्तमानः सफेनपिंडः प्रौढाः ऊर्मयः तरंगा यस्य स प्रौढोर्मिः तथाभूतः अब्धिः समुद्रः शार्ङ्गी विष्णुः इव शंखभृत् शंखधारक इत्यर्थः ॥ श्वोतंतः स्रवंतो मदाः यस्मात् स श्वोतन्मदः करी हस्ती वर्षन् वृष्टिं कुर्वन् सन् विद्युत्वान् तडित्वान् वारिदः मेघ इव अत्र पूर्वार्द्धे उपमेयस्य उत्तरार्द्धे च उपमानस्य विशेषणाधिक्यम् ॥ ६१ ॥

अर्थ- झागोंके पिंडों सहित और बडी तरंगोंवाला समुद्र विष्णु भगवान्की तरह शंख धारण करनेवाला है अर्थात् विष्णु भगवान् भी शंख रखते हैं और समुद्र भी शंख रखता है तथा मद झिरता हुवा हाथी वर्षते हुए बिजलीवाले बादलकी समान है अर्थात् बादलोंमेंसे भी जल बरसता है और हाथीमेंसे भी मदका जल बरसता है इसके पूर्वार्द्धमें उपमेयमें विशेषणकी अधिकता है और उत्तरार्द्धमें उपमानमें ॥ ६१ ॥

मुखं चंद्रमिवालोक्य देवाह्लादकरं तव ॥
कुमुदंति मुदाक्षीणि क्षीणमिथ्यात्वसंपदाम् ॥ ६२ ॥

टीका-- हे देव चंद्रम् इव आह्लादकरं तव मुखम् आलोक्य क्षीणमिथ्यात्वसंपदाम् अक्षीणि मुदा कुमुदंति इत्यन्वयः ॥ आह्लादकरम् आनंदजनकं क्षीणमिथ्यात्वसंपदां क्षीणा मिथ्यात्वस्य संपत् संपत्ति येषां तेषाम् अक्षीणि नेत्राणि मुदा हर्षेण कुमुदंति कुमुदानीव आचरंति इत्यर्थः अत्रोपमानोपमेययोः लिंगभेदः ॥ ६२ ॥

अर्थ-हे देव चंद्रमाके समान आनन्दकारक आपके मुखको देखकर क्षीण होगई है मिथ्यापनेकी संपदा जिनकी उनके नेत्र हर्षसे कुमोदनीके समान प्रकाशित होते भये चंद्रके दर्शनसे कुमुदका प्रकाशित होना युक्तही है यहां उपमेय और उपमानका लिंग दूसरा होनेसे भी उपमा है ॥ ६२ ॥

निजजीवितेशकरजाग्रकृतक्षतपंक्तयः
शुशुभिरे सुरते कुपितस्मरप्रहितबाणगण
व्रणजर्जरा इव सरोजदृशः ॥ ६३ ॥

टीका--सुरते सरोजदृशः निजजीवितेशकरजाग्रकृत क्षतपंक्तयः कुपितस्मरप्रहितबाणगणव्रणजर्जरा इव शुशुभिरे इत्यन्वयः ॥ सुरते संगमे सरोजदृशः कमल

नेत्रायाः निजजीवितस्य ईशः निजजीवितेशः भर्ता तस्य करजाग्रैः नखाग्रैः कृतानां क्षतानां पंक्तयः श्रेणयः निजजीवितेशकरजाग्रकृतक्षतपंक्तयः कुपितस्मरेण कुपितेन कामदेवेन प्रहिताः प्रेषिताः ये बाणगणाः तेषां व्रणाः तैः जर्जराःविदीर्णीभूताः इव शुशुभिरे अत्रापि उपमानोपमेययोः लिंगभेदः ॥ ६३ ॥

अर्थ–संगमके समय कमल जैसे नेत्र वाली सुंदरीके (शरीरपर) निज भर्ताके नखोंके अग्रभाग करके करी हुई जो क्षतोंकी पंक्ति (झरोंटें) हैं वे कुपित हुए कामदेव करके छोडे हुए बाणोंके समूह उनके व्रणोंसे वीदीर्णके समान शोभाको प्राप्त होती हैं इसमें भी उपमेय पंक्ति स्त्रीलिंग है और उपमान जर्जर पुल्लिंग है इससे लिंग भेदसे भी उपमा हुई ॥ ६३ ॥

रूपक ।

रूपकं यत्र साधम्यादर्थयोरभिदा भवेत्॥
समस्तं वासमस्तं वा खंडं वा खंडमेव वा ॥ ६४ ॥

टीका--यत्र साधर्म्यात् अर्थयोः अभिदा भवेत् (तत्) समस्तम् असमस्तं वा खंडम् अखंडं वा रूपकं (भवेत्) इत्यन्वयः ॥ साधर्म्यात् समानधर्मत्वात् अर्थयोः उपमानोपमेययोः अभिदा अभेदः भेद राहित्यमित्यर्थः । भिदा स्त्री द्वैधीकरणे (इति शब्दस्तोम०) समस्तं समासघटितम् असमस्तं समास-

भिन्नं खंडं न्यूनाधिकत्वयुक्तम् अखंडं पूर्णं समम् एवं चतुर्विधं रूपकमित्यर्थः कुवलयानंदे तु रूपकं षड्विधं निरूपितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-जहां साधर्म्यसे उपमान और उपमेयका भेद नहीं हो (अर्थात् उपमेय और उपमानका सावयव तद्रूप वर्णन किया जावे) तो उसे रूपक अलंकार कहते हैं वह चार प्रकारका होता है (१) समस्त अर्थात् समासघटित (२) असमस्त समासके विना फिर यह भी दो प्रकारका है एक अखंड पूर्ण या सम दूसरा खंड न्यूनाधिक (चंद्रालोकी कारिकाओंके अनुकूल कुवलयानंदमें रूपकके छः भेद लिखे हैं अभेद और तद्रूप इन दोनोंके फिर अधिक न्यून और सम तीन तीन भेद किये हैं जैसे अभेदसम अभेदन्यून अभेद अधिक तद्रूपसम तद्रूपन्यून तद्रूप अधिक) ॥ ६४ ॥

कीर्णांधकारालकराजमाना निबद्धतारा-
स्थिमणिः कुतोपि॥ निशापिशाचीव्यचर-
द्दधाना महांत्युलूकध्वनिफेत्कृतानि॥६५॥

टीका--कीर्णांधकारालकराजमाना निबद्धतारास्थिमणिः महांत्युलूकध्वनिफेत्कृतानि दधाना निशापिशाची कुतः अपि व्यचरत् इत्यन्वयः ॥ कीर्णः संकीर्णः अंधकारः स एव अलकः केशकल्पः तेन राजमानाः निबद्धाः मालाकारेण परिहिताः तारा एव अस्थीनि तानि एव मणयः यस्याः उलूकानां ध्वनयः एव फूत्कृतानि फूत्काराणि तानि महान्ति एव दधाना

ना कुतः अपि कस्मादेशात् आगत्य व्यचरत् परिबभ्राम अत्र उपमेयभूतायाः निशायाः उपमानभूतया पिशाच्या साधर्म्यात् सम्यगाख्यानात् अभेद एव निशापिशाची इत्युपमेयोपमानयोः समस्तत्वात् समस्तम् अखंडरूपकम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—संचित हुवा जो अंधकार वेही हुई अलक लटा रूप जिस करके शोभित और मालाकार जो तारागण वही हुए हड्डी रूप मणि जिसके और उल्लुवोंकी ध्वनि वही है बडी फुंकार शब्द उसे धारणकरनेवाली पिशाची राक्षसी रूप रात्री कहींसे (आकर) विचरती भई यहां निशा उपमेय और पिशाची उपमान दोनोंका सावयव एक रूप होनेसे रूपक अलंकार हुवा और निशापिशाची यह उपमेय और उपमान एकत्र समासांत होनेसे समस्त और सावयव साधर्म्य वर्णन करनेसे अखंड हुवा ॥ ६५ ॥

संसार एव कूपः सलिलानि विपत्तिजन्मदुःखानि ॥ इह धर्म एव रज्जुस्तस्मादुद्धरति निर्मग्नान् ॥ ६६ ॥

टीका—संसारः कूप एव इह विपत्तिजन्मदुःखानि सलिलानि धर्म एव रज्जुः निर्मग्नान् तस्मात् उद्धरति इत्यन्वयः ॥ विपत्तेः जन्मनश्च दुःखानि तानि एव इह संसारकूपे सलिलानि निर्मग्नान् निश्चयेन मग्नान्

तस्मात् संसारकूपात् धर्मः रज्जुः एव उद्धरति उद्धारं करोतीत्यर्थः अत्र संसारस्य उपमेयभूतस्य कूपेन उपमानभूतेन असमस्तेन साधर्म्यात् अभेद इति असमानम् अखंडरूपकम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-संसार कूप है अर्थात् कूपरूप है इसमें विपत्ति जन्म इनके दुःखही जल रूपहै धर्म रूप रज्जुही डूबे हुवोंको इसमेंसे निकालतीहै यहां संसार और कूप ये दोनों तथा धर्म और रज्जु ये दोनों पद समाससे मिलकर समासांत एक पद रूप नहीं हुए किन्तु जुदे जुदे हैं इससे असमस्त अखंड रूपक हुवा ॥६६॥

अधरं मुखेन नयनेन रुचिं सुरभित्वमब्जमिव नासिकया ॥ नवकामिनीवदनचन्द्रमसः तरुणा रसेन युगपन्निपपुः॥ ६७ ॥

टीका--तरुणाः रसेन नवकामिनीवदनचंद्रमसः अधरं मुखेन रुचिं नयनेन अब्जम् इव सुरभित्वं नासिकया युगपत् निपपुः इत्यन्वयः ॥ तरुणाः युवानः रसेन रागेण नवा नवोढा कामिनी नवकामिनी तस्याः वदनमेव चंद्रमाः तस्य नवकामिनीवदन चंद्रमसः अधरम् ओष्ठं मुखेन रुचिं कांतिं नयनेन अब्जं कमलमिव सौगंध्यं युगपत् एकस्मिन् एव काले निपपुः पिबंति स्म अत्र उपमेयस्य वदनस्य सर्वप्रबंधप्रतिपादितो धर्मः उपमानस्य चंद्रमसस्तु

कश्चिन्नैव क्षतिः खंडं नवकामिनीवदनचंद्रमस इति समस्तं च अतः समस्तं खंडं रूपकमिति ॥ ६७ ॥

अर्थ-तरूण पुरुष प्रेमसे नई कामनीके मुखरूपक चंद्रमाके होठोंको मुखसे और उसकी कांतिको नेत्रोंसे और कमल जैसी सुगन्धको नासिकासे एकही समयमें पान करते भये यहां उपमेय वदनका सब प्रबंधसे प्रतिपादित धर्म और उपमानभूत चंद्रमाके सावयव धर्म एकत्र पूर्णतया वर्णन नहीं होनेसे खंड हुवा और वदनचंद्रमसः यह समासांत है इससे समस्त खंड रूपक अलंकार हुवा ॥ ६७ ॥

ज्योत्स्नया धवलीकुर्वन्नुर्वीं सकुलपर्वताम् ॥ निशाविलासकमलमुदेति स्म निशाकरः ॥ ६८ ॥

टीका--निशाविलासकमलं निशाकरः सकुलपर्वतां उर्वीं ज्योत्स्नया धवली कुर्वन् (सन्) उदेति स्म इत्यन्वयः ॥ निशाविलासाय यत् कमलं निशाविलासकमलं निशाकरः चंद्रः कुलपर्वतैः सह वर्तमानां सकुलपर्वताम् उर्वीं पृथिवीं ज्योत्स्नया चंद्रिकया अत्र निशाविलासकमलं निशाकरः एतयोः उपमानोपमेययोः लिंगपार्थक्ये असमस्तं खंडं रूपकम्॥६८॥

अर्थ-रात्रीका विलास कमलरूप जो चंद्रमा है सो कुलपर्वतों करके सहित पृथिवीको अपनी चाँदनी करके धौली (सुफेद) करता हुवा उदय होरहा है यहां निशाविलासकमल

और निशाकर इन दोनों उपमान और उपमेयमें लिंगभेद है तथा समासांत एक पद रूप नहीं है और दोनोंके साधर्म्यका सावयव वर्णन भी एकत्र नहीं हुवा इससे असमस्त खंड रूपक अलंकार हुवा ॥ ६८ ॥

हस्ताग्रविन्यस्तकपोलदेशा मिथोमिल त्कंकणकुंडलश्रीः ॥ सिषेच नेत्रस्रवद-श्रुधारैर्दोःकंदलीं काचिदवश्यनाथा ॥६९॥

टीका—हस्ताग्रविन्यस्तकपोलदेशा मिथोमिलत्कंकणकुंडलश्रीः काचित् अवश्यनाथा नेत्रस्रवदश्रुधारैः दोःकंदलीं सिषेच इत्यन्वयः ॥ हस्ताग्रे विन्यस्तः कपोलदेशः यया सा हस्ताग्रविन्यस्तकपोलदेशा मिथः परस्परं मिलंती कंकणकुंडलयोः हस्तालंकार-कर्णालंकारयोः श्रीः शोभा यस्याः तथाभूता काचित् अवश्यनाथा अवश्यः नाथो भर्ता यस्याः सा अस्वाधीनपतिका नेत्राभ्यां स्रवद्भिः अश्रूणां धारैः धाराभिः दोःकंदलीं दोर्भुज एव कंदली कदली तां सिषेच अभिषिक्तवती । अत्र समस्तं खंडं रूपकम् अत्रापि लिंगभेदः ॥ ६९ ॥

अर्थ--हस्तको अग्र अर्थात् हथेलीपर धर रक्खा है कपोल प्रदेश जिसने जिससे मिल गई है हाथके कंकण और कानके कुंडलकी शोभा एकत्र जिसके ऐसी कोई अस्वाधीनपतिका अर्थात् नहीं है वशमें पति जिसका ऐसी कांता नेत्रोंसे झिरती

हुई अश्रु धारोंसे भुजारूप जो कंदली (केला) है उसे सींचती भई (अर्थात् पतिअवश होनेसे शोकाकुल होकर हाथपर कपोल रखकर अश्रुपात करती भई जिससे हाथरूप कदलीका सींचना हुवा) इसमें भी दोः और कंदली उपमेय और उपमानमें लिंग भेद है तथा समस्त है अस्तु यहां समस्त खंड रूपक है॥ ६९॥

(रूपक लक्षण भाषा) दोहा—रूपक उपमिति वर्ण्यका, हो साधर्म्य अभेद। अथवा हो तद्रूप वश, न्यून अधिक सम भेद॥१॥

(उदाहरण) विन खल नरपति कल्पतरु, सबकी पूरत आश। तेज तरणि यशवंतका, निश दिन करत प्रकाश॥ १॥ कीर्ति कौमुदी रावरी, जनमन करत हुलास। इंद्ररूप भूपालका, हो प्रताप अविनाश॥ २॥

इनमें प्रथम दोहेका पूर्वार्द्ध न्यून अभेद और उत्तरार्द्ध अधिक अभेदका उदाहरण है और दूसरे दोहेका पूर्वार्द्ध सम अभेदका उदाहरण है और उत्तरार्द्ध तद्रूप समका उदाहरण है॥

प्रतिवस्तूपमा।

अनुत्पत्तावविवादीनां वस्तुनः प्रतिवस्तुना॥ यत्र प्रतीयते साम्यं प्रतिवस्तूपमा तु सा॥ ७०॥

टीका--यत्र इवादीनाम् अनुत्पत्तौ वस्तुतः प्रतिवस्तुना साम्यं प्रतीयते सा तु प्रतिवस्तूपमा इत्यन्वयः॥ इवादीनां साधर्म्यव्यञ्जकानां वाचकशब्दानाम् अनुत्पत्तौ अनुपादाने सति वस्तुनः उपमेयस्य प्रति-

वस्तुना उपमानेन साम्यं प्रतीयते सा प्रतिवस्तूपमालंकारः (साहित्यदर्पणे उक्तंच) "प्रतिवस्तूपमा सा स्यात् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।एकोपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् " ॥ ७० ॥

अर्थ–जहां इवादिक नही होकर वस्तु अर्थात् उपमेयकी प्रतिवस्तु उपमानभूत अन्यवस्तुसे पृथक् समता प्रतीत हो तो उसे प्रतिवस्तूपमा अलंकार कहते हैं ॥ ७० ॥

बहुवीरेऽप्यसावेको यदुवंशेऽद्भुतोऽभवत् ॥ किं केतक्यां दलानि स्युः सुरभीण्यखिलान्यपि ॥ ७१ ॥

टीका–बहुवीरे यदुवंशे अपि असौ एकः अद्भुतः अभवत् किं केतक्याम् अखिलानि दलानि सुरभीणि स्युः इत्यन्वयः ॥ बहुवीरे बहवो वीराः यस्मिन् । असौ श्रीकृष्णः अद्भुतः असाधारणः किं केतक्यां केतकीगुल्मे अखिलानि समग्राणि दलाणि पत्रानि सुरभीणि सुगंधयुक्तानि स्युः अपि तु न सर्वाणि पत्राणि सुरभीणि भवंतीत्यर्थः । अत्र इवादीनामनुपादानेपि यदुवंशस्य उपमेयभूतस्य उपमानभूतायाः केतक्या सह साम्यप्रतीतेः प्रतिवस्तूपमालंकारः ॥ ७१ ॥

अर्थ–बहुत वीरवाले यदुवंशमें भी एक ये श्रीकृष्ण अद्भुत होते भये क्या केतकीके सभी पत्र सुगंधयुक्त होते हैं (अर्थात्

सभी सुगंधयुक्त नहीं होते किंतु एक दो ही सुगंधित होते हैं) यहां इव आदिक शब्द न होनेसे उपमेयभूत यदुवंशका उपमान भूत केतकीसे पृथक् साधर्म्य होनेसे प्रतिवस्तूपमा अलंकारहुवा ७१

(प्रतिवस्तूपमा ल० भाषा) दोहा—जहां वस्तु प्रतिवस्तुका, पृथक् साम्य दरसाव। प्रतिवस्तूपम ताहिको, कहत सुकविजन नाव ॥ १ ॥ (उदाहरण) धनि वैदर्भी गुणनतैं, राखे वश नल भूप। कहा चांदनीकी कहैं, खेचत सिंधु अनूप ॥ २ ॥

भ्रांति।

वस्तुन्यन्यत्र कुत्रापि तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः ॥ निश्चयो यत्र जायेत भ्रांतिमान् स स्मृतो यथा ॥ ७२ ॥

टीका—यत्र कुत्रापि अन्यत्र वस्तुनि तत्तुल्यस्य अन्यवस्तुनः निश्चयो जायेत स भ्रांतिमान् स्मृतः इत्यन्वयः ॥ यथापदस्य अग्रिमेण सहोदाहरणसूचकः संबंधः। वस्तुनि उपमेये तत्तुल्यवस्तुनः उपमानस्य निश्चयः प्रतीतिः भ्रांतिमान् भ्रांतिर्नामालंकारः ॥७२॥

अर्थ—जहां कहीं अन्य वस्तुमें तत्तुल्य अन्य वस्तुका निश्चय (प्रतीति) हो उसे भ्रांतिमान् अर्थात् भ्रांति अलंकार कहते हैं (जैसे निम्न उदाहरण है) ॥ ७२ ॥

उदाहरण प्राकृत।

हेमकमलंतिवअणे णीलुप्पलंतिनअणेपमुअच्छिकुमुमंति तुह्महसिएनिवडति भमराणं रिंछोली ॥ ७३ ॥

टीका-(अस्य संस्कृतम्) हेमकमलमिति वदने नीलोत्पलमिति लोचने प्रसृताक्षि कुसुममिति हि तव हसिते निपतति भ्रमराणां श्रेणी (अस्यान्वयः) हे प्रसृताक्षि तव वदने हेमकमलम् इति लोचने नीलोत्पलम् इति हसिते कुसुमम इति (भ्रांत्या) भ्रमराणां श्रेणी निपतति इत्यन्वयः ॥ भ्रांत्या इति शेषेणान्वयः ॥ हेमकमलं स्वर्णपंकजम् अत्र वदनादिषु हेम कमलादीनां भ्रांत्या भ्रमराणां श्रेणीनिपतनात् भ्रांतिमान् अलंकारः ॥ ७३ ॥

अर्थ-हे विशाल नेत्र सुंदरी तेरे मुखमें सुवर्णके कमलकी और नेत्रोंमें नीलकमलकी और हास्यमें पुष्पोंकी (भ्रांतिसे) भ्रमरोंकी पंक्ति आसक्त होकर उनपर पडती है यहां वदन आदिकोंमें स्वर्ण कमलादिककी भ्रांतिसे भ्रमर पंक्तिका पडना कहा इससे भ्रांतिमान् अर्थात् भ्रांति अलंकार हुवा ॥ ७३ ॥

(भ्रांतिलक्षण भाषा) दोहा-जहां अन्यकी अन्यमें, भ्रांति भ्रांति सो जान। तव मुख पंकज मानके, भोंरा भ्रमत नदान॥१॥

आक्षेपं ।

उक्तिर्यत्र प्रतीतिर्वा प्रतिषेधस्य जायते ॥
आचक्षते तमाक्षेपमलंकारं बुधा यथा७४॥

टीका-यत्र प्रतिषेधस्य उक्तिः वा प्रतीतिः जायते बुधाः तम् अलंकारम् आक्षेपम् आचक्षते इत्यन्वयः॥ यथा इति अग्रिमोदाहरणसूचकं प्रतिषेधस्य उक्त्या

प्रतीत्या च वाशब्दात् प्रतिषेधस्य कैमर्थ्यात् आभासादपि आक्षेपालंकारः स्यात् ॥ ७४ ॥

अर्थ–जहां प्रतिषेधकी उक्ति (कथन) हो अथवा प्रतीति हो तो उसे विद्वान् आक्षेप अलंकार कहते हैं और कई वा शब्दसे प्रतिषेधके कैमर्थ्य (आर्थात् अमुक क्या है) तथा प्रतिषेधके आभाससे भी आक्षेप अलंकार होता है ऐसा कहते हैं ॥ ७४ ॥

आक्षेपका उदाहरण ।

इंद्रेण किं यदि स कर्णनरेन्द्रसूनुरैरावते न किमहो यदि तद्विपेन्द्रः ॥ दंभोलिनाप्यलमयं यदि तत्प्रतापः स्वर्गोप्ययं ननु मुधा यदि तत्पुरी सा ॥ ७५ ॥

टीका–यदि स कर्णनरेंद्रसूनुः (तदा) इंद्रेण किम् अहो यदि तद्विपेंद्रः (तदा) ऐरावतेन किम् यदि तत्प्रतापः (तदा) दंभोलिनाप्यलम् ननु यदि सा तत्पुरी (तदा) अयं स्वर्गः अपि मुधा इत्यन्वयः ॥ कर्णनरेंद्रसूनुः कर्णनृपतेः पुत्रः जयसिंहः दंभोलिना वज्रेण। दंभोलिः वज्रः (इतिशस्तो०) मुधा मिथ्या वृथा च अत्र प्रतिषेधस्य इंद्रादेः कैमर्थ्यात् आक्षेपालंकारः ॥ ७५ ॥

अर्थ–यदि वह कर्णसिंह राजाका पुत्र (जयसिंह) है तब इंद्रसे क्या और जब उसका बडा हाथी है तब ऐरावत से क्या और जब उसकी प्रताप है तब वज्रकी आवश्यकता ही क्या है

और जब उसकी नगरीहै तब स्वर्ग भी वृथाही साहै यहां प्रतिषेध इंद्रादिकके कैमर्थ्य (क्या ऐसा) होनेसे आक्षेपालंकार हुवा७५॥

यस्यास्ति नरकक्रोडनिवासरसिकं मनः॥
सोऽस्तु हिंसानृतस्तेयतत्परःसुतरां जनः७६

टीका-यस्य मनः नरकक्रोडनिवासरसिकम् । अस्ति स जनः सुतराम् हिंसानृतस्तेयतत्परः अस्तु इत्यन्वयः ॥ नरकस्य क्रोडे निकटे निवासः स्थितिः तस्मिन् रसिकं नरकक्रोडनिवासरसिकं हिंसा च अनृतं च स्तेयं च हिंसानतस्तेयानि तेषु तत्परः सुतराम् अतिशयेन ॥ ७६ ॥

अर्थ-जिसका मन नरकके बीचमें निवास करनेका रसिक है वह मनुष्य अत्यंत हिंसा झूठ और चोरीमें तत्पर रहो यहां प्रतिषेध नरक क्रोड निवास तथा हिंसा स्तेयादिकी उक्ति होनेसे भी आक्षेप अलंकार हुवा ॥ ७६ ॥

इच्छंति ये ण कित्तिं कुणंति करुणाकणं
वि ये ण अ॥ ते धणजक्ख व णरा दिंति
धणं मरणसमये वि ॥ ७७ ॥

टीका-(अस्य संस्कृतम्) इच्छंति ये न कीर्तिं कुर्वंति करुणाकणमपि ये न च ते धनयक्षा व नराः ददति धनं मरणसमयेपि (अस्यान्वयः) ये नराः कीर्तिं न इच्छंति च ये करुणाकणम् अपि न कुर्वंति ते धनयक्षा इव मरणसमये अपि धनं ददति इत्यन्वयः ॥ धनयक्षा धनरक्षकाः व इवार्थे अव्ययः ॥ व

सादृश्ये (इति श० स्तो०) अत्र प्रतिषेधस्य प्रतीतिः तस्मात् आक्षेपालंकारः ॥ ७७ ॥

अर्थ—जो कीर्तिकी इच्छा नहीं करते और जिनमें करुणा (दया) का भी लेश नहीं है वे मनुष्य यक्षकी भांत धनके रखवाले हैं मरनेके समय तो धन देहींगे अर्थात् औरके पास धन छोडही जावेंगे यहांपर धनके प्रतिषेधकी प्रतीति होनेसे आक्षेप अलंकार हुवा ॥ ७७ ॥

(आक्षेप ल० भाषा) दोहा—उक्ति होय प्रतिषेधकी, प्रतीति या आभास। या किमर्थ हो। तौ सुकवि, आक्षेपनु कहैं तास॥१॥

(उदाहरण प्रतीतिपर आक्षेपका) जो जग जस चाहत नहीं, ना मन करुणा लेश। वे जन धन मरते समय, छोड जाहिं निःशेष ॥ २ ॥ (ग्रंथ बढ़नेसे आक्षेपके उदाहरण नहीं लिखे अन्यत्र देख लेना) ॥

संशय व निश्चय।

इदमेतदिदं वेति साम्याद् बुद्धेर्हि संशयः॥
हेतुभिर्निश्चयः सोपि निश्चयान्तः स्मृतो यथा॥ ७८ ॥

टीका—साम्यात् एतत् इदं वा इदम् इति बुद्धेः संशयः (संशयः) स च हेतुभिः निश्चयांतः अपि निश्चयः स्मृतः इत्यन्वयः॥ यथापदमग्रिमोदाहरणार्थं साम्यात् सादृश्यात् इति बुद्धेः संशयः एतत् इदं वा इदं स संशयः संशयालंकारः हिमं संदेहालंकार-

नामत्वेनापि वदंति हेतुभिः कारणैः निश्चयांतः निश्चयरूपः स निश्चयः निश्चयनामालंकारः ॥ ७८ ॥

अर्थ-समान भाव होनेसे यह पदार्थ वह है अथवा वह है ऐसे बुद्धिका संशय हो तो वह संशयनामक अलंकार होताहै तथा इसका नाम कई "संदेह" अलंकार भी कहते हैं और जो कारणोंसे निश्चयरूप हो जावे तो उसे निश्चय कहते हैं अर्थात् उसका नाम निश्चयालंकार होता है ॥ ७८ ॥

संशयका उदाहरण ।

किं केशपाशः प्रतिपक्षलक्ष्म्याः किं वा प्रतापानलधूम एषः । दृष्ट्वा भवत्पाणिगतं कृपाणमेवं कवीनां मतयः स्फुरंति ७९

टीका-भवत्पाणिगतं कृपाणं दृष्ट्वा कवीनां मतयः एवं स्फुरंति एषः किं प्रतिपक्षलक्ष्म्याः केशपाशः किं वा प्रतापानलधूमः इत्यन्वयः ॥ हे राजन् इति शेषः भवतां हस्तगतं कृपाणं खड्गं दृष्ट्वा सादृश्यात् कवीनां बुद्धिषु एवं संशयः संजातः किम् एष प्रतिपक्षलक्ष्म्याः प्रतिपक्षे या लक्ष्मी तस्याः अथवा प्रतिपक्षस्य शत्रोर्लक्ष्मीः स्त्री तस्याः केशपाशः करे गृहीत्वा आकृष्टः इति भावः । किं वा प्रतापानलस्य धूमः इति संशये संजाते सति संशयालंकारः ॥ ७९ ॥

अर्थ-हे राजन् आपके हाथमें खड्ग देखकर कवियोंकी बुद्धि इस प्रकार स्फुरने लगी (अर्थात् सादृश्यतासे ऐसा संशय

कवियोंकी बुद्धिमें होने लगा) कि क्या यह प्रतिपक्ष लक्ष्मीके या शत्रुकी स्त्रीके केशपाश हैं (चोटी) है (अर्थात् शत्रुकी स्त्रीकी चोटी पकड़ रक्खी है) या प्रतापरूप अग्निका धूंवाँ है इस प्रकार संशय होनेसे संशय अथवा संदेह नामक अलंकार हुआ७९॥

इंद्रः स एष यदि किं न सहस्रमक्ष्णां लक्ष्मीपतिर्यदि कथं न चतुर्भुजोऽसौ॥ आः स्यंदनध्वजधृतोद्धुरताम्रचूडः श्रीकर्णदेव नृपसूनुरयं रणाग्रे ॥ ८० ॥

टीका—स एष यदि इंद्रः (तदा) अक्ष्णां सहस्रं किं न असौ यदि लक्ष्मीपतिः तदा चतुर्भुजः कथं न आः अयं रणाग्रे स्यंदनध्वजधृतोद्धुरताम्रचूडः श्रीकर्णदेवनृपसूनुः इत्यन्वयः ॥ स्यंदनस्य रथस्य ध्वजे धृत उद्धुरः उत्कटः ताम्रचूडः कुक्कुटः येन स स्यंदन ध्वजधृतोद्धुरताम्रचूडः श्रीकर्णदेवनृपस्य सूनुः पुत्रः श्रीजयसिंहदेवोस्ति अत्र हेतुभिः संशयस्य निराकरणात् निश्चयालंकारः ॥ ८० ॥

अर्थ—यह यदि इंद्र है तो इसके हजार नेत्र क्यों नहीं हैं और जो लक्ष्मीपति विष्णु हैं तो ये चतुर्भुज क्यों नहीं हैं ओह (विदित हुवा) यह रणके अगाडी रथकी ध्वजामेंहै उग्र कुक्कुट जिसके ऐसा यह श्रीकर्णदेव राजाका पुत्र जयसिंहदेव है यहां कारणोंसे संशय निवृत्त होकर निश्चय होगया इससे निश्चयालंकार हुवा ॥ ८० ॥

(संशय और निश्चय लक्षण भाषा) दोहा-जहँ समताते बुद्धिमें, संशय संशय जान । कारणते निश्चित भये, निश्चय नाम बखान ॥ १ ॥ (उदाहरण) तव मुख शशि या कमल है, कवि मति होत हरान । कमल न निशि शशि इति न दिन, ताते श्री फल मान ॥ २ ॥

दृष्टांतालंकार ।

अन्वयख्यापनं यत्र क्रियया स्वतदन्वयोः ॥ तं दृष्टांतमिति प्राहुरलंकारमनीषिणः ॥ ८१ ॥

टीका--यत्र स्वतदन्ययोः क्रियया अन्वयख्यापनं तम् अलंकारमनीषिणः दृष्टांतम् इति प्राहुः इत्यन्वयः॥ स्वस्य वर्ण्यस्य उपमेयस्य तदन्यस्य उपमानस्य दृष्टांतभूतस्य च अन्वयख्यापनं संबंधेन याथातथ्येन कथनम् अलंकारमनीषिणः अलंकारशास्त्रस्य विद्वांसः तं दृष्टांतं दृष्टांतनामकम् एव आहुः ॥ ८१ ॥

अर्थ-जहां वर्णनीय और उससे दूसरे उपमान या दृष्टांत भूतका क्रिया चेष्टा गुण व्यापारादिसे संबंध पूर्वक याथातथ्य करके कथन हो (अर्थात् जैसे यह वैसे वह इत्यादि कथन हो) तो उसे अलंकार शास्त्रके ज्ञाता विद्वान् लोग दृष्टांतनाम अलंकार कहतेहैं ॥ ८१ ॥

पतितानां संसर्गं त्यजंतु दूरेण निर्मला गुणिनः ॥ इति कथयञरतीनां हारः परिहरति कुचयुगलम् ॥ ८२ ॥

टीका--हारः इति कथयन् (सन्) जरतीनां कुच-युगलं परि हरति (इतीति किम् निर्मलाः गुणिनः पतितानां संसर्गं दूरेण त्यजंतु इत्यन्वयः ॥ जरतीनां वृद्धस्त्रीणां स्तनयोः पतितत्वात् तत्र गुणवतो हारस्य च न शोभा इति तत्परिहारेण गुणिनां पतित संसर्ग-परिहारसाम्यप्रतीतेः दृष्टांतालंकारः॥ ८२ ॥

अर्थ--हार यह कहता हुवा वृद्धास्त्रियोंके कुचाओंको परित्याग करता है कि निर्मल गुणियोंको पतितोंका संसर्ग दूरसेही छोड देना चाहिये (वृद्ध स्त्रियोंके कुच पतित होतेही हैं इससे निर्मल गुण (सूत्र) वाला हार उनको त्यागता है ऐसेही निर्मल गुणियोंको पतितोंका संसर्ग छोड़ देना चाहिये) इसमें हारके पतित कुचपर शोभा न देनेका दृष्टांत है इससे दृष्टांत अलंकार हुवा॥८२॥

(दृष्टांत ल० भाषा) दोहा--वर्णनीय अरु अन्यका,यथातथ्य सम भाव। ताहि कहत दृष्टांत कवि, काव्य रसिक जन नाव॥१॥

(उदाहरण) पतितोंके संसर्गकूं, देतहँ गुणी विसार। वृद्ध कामिनी पतित कुच, निकट न सोहत हार ॥ २ ॥

व्यतिरेक।

केनचिद्यत्रधर्मेण द्वयोः संसिद्धसाम्ययोः॥
भवत्येकतराधिक्यं व्यतिरेकः स उच्यते ॥ ८३ ॥

टीका--यत्र द्वयोः संसिद्धसाम्ययोः केनचिद्धर्मेण एकतराधिक्यं भवति सः व्यतिरेकः उच्यते इत्यन्वयः॥

संसिद्धसाम्ययोः उपमेयोपमानयोः एकतरस्य द्वयोर्मध्ये एकस्य उपमेयस्य उपमानस्य वा ॥ ८३ ॥

अर्थ-जहां पर उपमेय अथवा उपमानके किसी धर्ममें (गुणादिमें) अधिकता हो तो उसे व्यतिरेक अलंकार कहते हैं ॥८३॥

अस्त्वस्तु पौरुषगुणाज्जयसिंहदेव पृथ्वीपतेर्मृगपतेश्च समानभावः ॥ किं त्वेकतः प्रतिभटाः समरं विहाय सद्यो विशंति वनमन्यमशंकमानाः ॥ ८४ ॥

टीका-जयसिंहदेवपृथ्वीपतेः च मृगपतेः पौरुषगुणात् समानभावः अस्तु अस्तु किंतु एकतः प्रतिभटाः सद्यः समरं विहाय वनं विशंति अन्यम् अशंकमानाः (वनं विशंति) इत्यन्वयः ॥ एकतः पृथ्वीपतेः प्रतिभटा विपक्षिणः अन्यं सिंहम् अशंकमानाः निःशंकिताः अगणयंतः संत एव वनं विशंतीति अत्र सिंहात् राज्ञः पौरुषाधिक्यात् व्यतिरेकालंकारः॥८४॥

अर्थ-जयसिंहदेव राजा और मृगपति (सिंह) का पौरुष गुणमें समान भाव हो तो हो किंतु एक (राजा) से उसके प्रतिपक्षी शीघ्रही युद्ध भूमिको छोड कर वनमें छिपजातेहैं और सिंहकी शंका न करके उसके प्रतिपक्षी वनमें घुसे रहते ही हैं यहां राजाके पराक्रमसे सिंहके पराक्रमसे अधिकता होनेसे व्यतिरेक अलंकार है ॥ ८४ ॥

(भाषा व्यतिरेकालं०) दोहा—उपमेय रु उपमानके, धर्म वीच कोइ एक। अधिक होय जहँ ताहिकों, कहत कवि व्यतिरेक॥ १॥ (उदाहरण) बलमें नृप अरु सिंह सम, नृपते पर रण छोड। के हरिते निःशंकहो, शत्रु जान वन ओड॥ २॥

अपह्नुति।

नैतदेतादिदं ह्येतादित्यपह्नववपूर्वकम्॥ उच्यते यत्र सादृश्यादपह्नुतिरियं यथा ८५

टीका—यत्र सादृश्यात् एतत् एतत् न हि एतत् इदम् इति अपह्नवपूर्वकम् उच्यते इयम् अपह्नुतिः इत्यन्वयः॥ सादृश्यात् साम्यात् अपह्नवपूर्वकं प्रतिषेधपूर्वकम् अपह्नवः वस्तुनोऽसत्त्वेन कथनरूपकापलापः अपह्नुतिः पदार्थासत्त्वे तत्साम्यत्वादपलापोक्तिः॥ ८५॥

अर्थ—जहां समानताके आभाससे यह वह नहीं है किंतु यह वह है ऐसा निषेधारोप पूर्वक वर्णन किया जावे तो उसे अपह्नुति अलंकार कहतेहैं॥ कुवलयानंदमें इसके ६, छह भेद लिखेहैं शुद्धापह्नुति हेत्वपह्नुति पर्यस्तापह्नुति भ्रांतापह्नुति छेकापह्नुति और कैतवापह्नुति॥ ८५॥

नैतन्निशायां शितमूच्यभेद्यमंधीकृतालोकनमंधकारम्॥ निशागमप्रस्थितपंचबाणसेनासमुत्थापित एष रेणुः॥ ८६॥

टीका—एतत् निशायां शितमूच्यभेद्यम् अधीकृता लोकनम् अंधकारं न एषः निशागमप्रस्थितपंचबाण

सेनासमुत्थापितः रेणुः इत्यन्वयः ॥ शितमूच्या तीक्ष्ण सूच्या अभेद्यं भेत्तुमशक्यम् अतिगाढमिति भावः अधीकृतम् आलोकनं दर्शनं येन तथाभूतम् अंधकारं तिमिरं न किं तर्हि निशायाः आगमे प्रस्थिता प्रचलिता पंचबाणस्य कामस्य सेना तया समुत्थापितः रेणुः धूलिः एव अत्र अंधकारप्रतिषेधे रेणुसमारोपात् अपह्नुतिरलंकारः ॥ ८६ ॥

अर्थ-रात्रीमें यह तीक्ष्ण सुईसेभी अभेद्य (घोर) और जिसमें कुछ दीखे नहीं ऐसा अंधकार नहीं है किंतु रातके आगममें प्रयाण करती हुई जो कामदेवकी सेनाहै उससे उठी हुई धूलिहै यहां अंधकारका निषेध करके असत्त्व काम देवकी सेनासे उठी हुई धूलिका आरोपण करनेसे अपह्नुति अलंकार हुवा ॥ ८६ ॥

(भाषा अपह्नुतिल०) दोहा-अपह्नुती सादृश्यते, यह वह नहिं वह मान । व्योम न घन विरहनि विरह, अग्नि धूम इह जान ॥ १ ॥

तुल्ययोगिता ।

उपमेयं समीकर्तुमुपमानेन योज्यते ॥ तुल्यैककालक्रियया यत्र सा तुल्ययोगिता ॥ ८७ ॥

यत्र तुल्यैककालक्रियया उपमानेन उपमेयं समीकर्तुं योज्यते सा तुल्ययोगिता इत्यन्वयः ॥ तुल्या एककालक्रिया तया समीकर्तुं सादृश्यी कर्तुं (प्रस्तुता

प्रस्तुतानां चैकधर्माभिसंबंधात्तुल्ययोगिता इतिसाहित्यदर्पणे) ॥ ८७ ॥

अर्थ–जहां तुल्य एक काल क्रिया करके उपमानका उपमेयसे समभाव करनेको योग किया जावे तो उसे तुल्ययोगिता कहतेहैं (साहित्यदर्पणमें प्रस्तुत और अप्रस्तुतका एकधर्मीय संबंध होनेसे तुल्ययोगिता हो ऐसा लक्षण लिखाहै ॥ ८७ ॥

तमसालुप्यमानानां लोकेऽस्मिन्साधुवर्त्मनाम् ॥ प्रकाशनाय प्रभुता भानोस्तव च दृश्यते ॥ ८८ ॥

टीका--अस्मिन् लोके तमसालुप्यमानानां साधुवर्त्मनां प्रकाशनाय भानोः तव च प्रभुता दृश्यते इत्यन्वयः ॥ तमसा अंधकारेण मोहेन च भानोः सूर्यस्य तव राज्ञश्च प्रभुता प्रतापः अत्र उपमेयस्य प्रस्तुतस्य च राज्ञः उपमानेन अप्रस्तुतेन सूर्येण एककालक्रियायासमीकरणात्तुल्ययोगिता स्यात् ॥ ८८ ॥

अर्थ–इस लोकमें अंधकार या मोह करके लुप्त हुए साधु मार्गोंके प्रकाश करनेको सूर्य अथवा आपका प्रताप ही दिखाई देता है यहां उपमेयभूत राजा और उपमानभूत सूर्यका प्रताप दर्शन रूप एक कालीय तुल्य क्रियासे समीकरण होनेसे तुल्य योगिता अलंकार हुवा ॥ ८८ ॥

(भाषा) दोहा–जहां वर्ण्य उपमानकी, समता हो इकठौर । तुल्ययोगिता ताहि को, कहत कवी करगौर ॥ १ ॥(जैसे) तमलो-

पित शुभ मार्गके, जगमें करण प्रकाश । प्रकट प्रताप नरेश कर, या रवि किरण विकाश ॥ २ ॥

उत्प्रेक्षा ।

कल्पना काचिदौचित्याद्यत्रार्थस्य सतोन्यथा ॥ द्योतितेवादिभिः शब्दैरुत्प्रेक्षा सा स्मृता यथा ॥ ८९ ॥

टीका--सतः अर्थस्य औचित्यात् यत्र इवादिभिः शब्दैः काचित् अन्यथा कल्पना द्योतिता सा उत्प्रेक्षा स्मृता इत्यन्वयः ॥ ततोर्थस्य विद्यमानार्थस्य औचित्यात् योग्यत्वात् काचिदन्यथा कल्पना अन्यप्रकारेण काचित्संभावना इवादिभिः शब्दैः इव मन्ये शंके इत्यादिभिः द्योतिता लक्षिता सा उत्प्रेक्षा (कुवलयानंदे तु वस्तूत्प्रेक्षा हेतूत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षाभेदात्त्रिधोत्प्रेक्षा कथिता) ॥ ८९ ॥

अर्थ--जहां विद्यमान स्पष्ट अर्थकी उचित भावसे इवादि शब्द करके कोई और कल्पना द्योतन करी जावे तो उसे उत्प्रेक्षा अलंकार कहतेहैं चंद्रालोककी कारिकानुसार कुवलयानंदमें इसके तीन प्रकार लिखे हैं वस्तूत्प्रेक्षा हेतूत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा ॥ ८९ ॥

नभस्तले किंचिदिव प्रविष्टाश्चकाशिरे चंद्ररुचिप्ररोहाः ॥ जगद्विलित्वा हसतः प्रमोदाद्दंता इव ध्वांतनिशाचरस्य ॥९०॥

टीका--नभस्तले किंचित् इव प्रविष्टाः चंद्ररुचिप्ररोहाः जगत् गिलित्वा प्रमोदात् हसतः ध्वांतनिशाचरस्य दंता इव चकाशिरे इत्यन्वयः ॥ नभस्तले आकाशे किंचिदिव अल्पमात्रं यथा स्यात्तथा प्रविष्टाः प्रवेशं गताः चंद्ररुचिप्ररोहाः चंद्रकिरणांकुराः जगत् गिलित्वा संसारं ग्रसित्वा प्रमोदात् हर्षात् हसतः दास्यं कुर्वतः ध्वांतनिशाचरस्य ध्वांतम् अंधकार एव निशाचरः राक्षसः तस्य दंता इव चकाशिरे दीप्तिं गतवंतः अत्र सतः चंद्रकिरणांकुरस्य हसतो निशाचरस्य दंतरूपेण कल्पना इत्युत्प्रेक्षा इयं तु वस्तूत्प्रेक्षा॥९०॥

अर्थ--आकाशमें थोड़ेसे निकसे हुए चंद्रमाकी किरणोंके अंकुर ऐसे हैं जैसे संसारको ग्रसकर आनंदसे हँसते हुए अंधकार रूप राक्षसके दांतही हों यहां विद्यमान अर्थवाले चंद्र किरणांकुरको हँसते हुए अंधकार रूप राक्षसके दांत कल्पना करनेसे उत्प्रेक्षा अलंकार हुवा (यह वस्तु उत्प्रेक्षा है इसी तरह जहां हेतुकी अन्य कल्पना हो वहां हेतु उत्प्रेक्षा और जहां फलकी अन्य कल्पना हो वहां फलउत्प्रेक्षा समझलेनी) ॥ ९० ॥

(भाषा) दोहा--उचित अर्थ जहँ युक्तिसे, और कल्पना होय। उत्प्रेक्षा तिहँ कहत हैं, वस्तु हेतु फल जोय॥ १ ॥

(उदाहरण) तिय उर दोइ उरोजको, कनक लता फल जान। तीखे नैन कटाक्षको, पुष्पबानके बान ॥ २ ॥ कठिन धरन पर धरनते, सुंदरि तो पग लाल । तव गति समता लहनकों, सेवत कमल मराल ॥ ३ ॥

अर्थांतरन्यास ।

उक्तसिद्ध्यर्थमन्यार्थन्यासो व्याप्तिपुरः सरः॥ कथ्यतेऽर्थांतरन्यासः श्लिष्टोऽश्लिष्टश्च स द्विधा ॥ ९१ ॥

टीका–उक्तिसिद्ध्यर्थं व्याप्तिपुरःसरः अन्यार्थन्यासः (स) अर्थांतरन्यासः कथ्यते स च श्लिष्टः अश्लिष्टः द्विधा इत्यन्वयः॥ उक्तसिद्ध्यर्थं कथितस्य प्रामाण्यार्थं व्याप्तिपुरःसरः युक्तिपूर्वकः अन्यार्थन्यासः अन्यस्य अर्थस्य विन्यासः श्लिष्टः श्लेषसहितः अश्लिष्टः श्लेषरहितः ॥ ९१ ॥

अर्थ–जहां कहे हुए वाक्यकी सिद्धिके लिये युक्तिपूर्वक अन्य अर्थका उपयोग किया जावे तो उसे अर्थांतरन्यास अलंकार कहते है वह दो प्रकारका होता है एक श्लेष पूर्वक दूसरा श्लेष रहित ॥ ९१ ॥

शोणत्वमक्ष्णामसिताब्जभासां गिरां प्रचारस्त्वपरप्रकारः ॥ बभूव पानान्मधुनो वधूनामचिंतनीयो हि सुरानुभावः ॥९२॥

टीका--मधुनः पानात् वधूनाम् असिताब्जभासाम् अक्ष्णां शोणत्वं तु गिरां प्रचारः अपरप्रकारः बभूव हि सुरानुभावः अचिंतनीयः इत्यन्वयः ॥ मधुनः मद्यस्य मधुररसस्य वा पानात् वधूनां सुंदरीणाम्

असिताब्जभासां नीलोत्पलच्छवीनाम् अक्ष्णां नेत्राणां शोणत्वं रक्तत्वं तु पुनः गिरां वाचां प्रचारः प्रयोगः अपरप्रकारः अन्यथाभूतः हि युक्तोयमर्थः सुरानुभावः सुराया मदिरायाः अनुभावः अथवा सुराणां देवानाम् अनुभावः प्रभावः अचिंतनीयः दुर्भावनीयः मधुर-रसस्य पानभोजनानंतरं यत्र कुत्रचिद्गमनेन सुकुमा-रेषु देवानामावेशो भवोदिति लोकोक्तिः मधुनः पाना-नंतरम् अक्ष्णां शोणत्वमित्यादिचिह्नैः सुरानुभावः अचिंतनीय इत्यत्र श्लेषवशेन अर्थांतरन्यासालं-कारः ॥ ९२ ॥

अर्थ—मधु (मद्य) अथवा मधुर रस पीनेके पीछे सुंदरियोंके नीलोत्पलसरीखे नेत्र लाल होगये और वाणीका प्रचार भी अन्य प्रकारका होगया सो सुरानुभाव सुरा मदिरा जिसका प्रभाव अथवा सुर देवता उनका अनुभाव प्रभाव दुर्भावनीय होताही है यहां मद्यपान जनित नेत्रोंकी लाली आदि कथनमें युक्ति पूर्वक देवानुभावका श्लेष रूपसे अर्थांतरन्यास किया जानेसे अर्थांतर-न्यास अलंकार हुवा मद्यपानके पीछे नेत्र लाल होना आदि मद्यका प्रभाव होताही है तथा मधुर रस खा पीकर जहां तहां जानेसे सुकुमार (नाजुक) मनुष्योंके देवादिका आवेश होजाना लोकोक्ति है ही इसीसे श्लेषपूर्वक अर्थांतरन्यास होगया ॥ ९२ ॥

श्लेषरहित अर्थांतरन्यास ।

शुंडादंडैः कंपिताः कुंजराणां पुष्पोत्सर्गं पादपाश्चारु चक्रुः ॥ स्तब्धाकाराः किं

प्रयच्छंति किंचित्कांता यावन्नोद्धतैर्वीतशंकम् ॥ ९३ ॥

टीका-कुंजराणां शुंडादंडैः कंपिताः पादपाः चारु पुष्पोत्सर्गं चक्रुः स्तब्धाकाराः यावत् उद्धतैः वीतशंकं (यथा स्यात्तथा) न आक्रांताः (तावत्) किं किंचित् प्रयच्छंति (न प्रयच्छंतीत्यर्थः) इत्यन्वयः ॥ कुंजराणां गजानां शुंडादंडैः शुंडाघातैः पादपाः वृक्षाः चारु शोभने यथास्यात्तथा पुष्पोत्सर्गं पुष्पाणाम् उत्सर्गः त्यागः तम्, स्तब्धाकाराः संबद्धहृदयाः कृपणा इत्यर्थः यावत् उद्धतैः महद्भिः निःशंकं न आक्रांताः तावत् किमपि न प्रयच्छंतीति अत्र पूर्वपदद्वयस्योक्तस्याग्रेतनपदद्वयेन अन्यार्थन्यासरूपेण सिद्धिर्वर्णिता अतोऽश्लिष्टार्थांतरन्यासः ॥ ९३ ॥

अर्थ-हाथियोंके शुंडाघातसे कंपित हुए वृक्ष यथायोग्य पुष्पोंका उत्सर्ग (त्याग) करते हैं क्योंकि जड (कृपण) मनुष्य जब तक प्रबलमनुष्य करके निःशंक आक्रांत नहीं होता (दबाया नहीं जाता) तब तक क्या वह कुछ भी देता है अर्थात् कुछ नहीं देता यहां पहले दोपादों के कथनकी सिद्धिकेलिये पिछले दो पादोंका अर्थांतर न्यास किये जानेसे श्लेष रहित अर्थांतरन्यास अलंकार हुवा ॥ ९३ ॥

(भाषा) दोहा-उक्त सिद्धि हित होत जहँ, अन्य अर्थ विन्यास । श्लेषाश्लेष प्रकारसे, दो अर्थांतरन्यास ॥ १ ॥ (उदा-

हरण) मधु पीये राते नयन, तीखे बैन बनाव। नवलबधूकी विकल छबि, छायो सुरानुभाव ॥ १ ॥ हस्ति शुंड आहत तरू, देतहु सुमन विसार। आंट लगे पर कृपण जन, कौडी देत उधार ॥ २॥

समासोक्ति।

उच्यते वक्तुमिष्टस्य प्रतीतिजनने क्षमम् ॥ सधर्मं सा समासोक्तिरन्योक्तिर्वाभिधीयते ॥ ९४ ॥

टीका—इष्टस्य प्रतीतिजनने क्षमं वक्तुं सधर्मम् उच्यते सा समासोक्तिः वा अन्योक्तिः अभिधीयते इत्यन्वयः ॥ इष्टस्य विवक्षितार्थस्य प्रतीतिजनने क्षमं प्रतीत्युत्पादने समर्थं सधर्मं समानधर्मम् अन्यत् वस्तु उच्यते सा समासोक्तिः अथवा अन्योक्तिः अभिधीयते कथ्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ—वर्णन करने योग्य पदार्थकी प्रतीति उत्पादन करनेवाले समानधर्मी अन्य पदार्थका वर्णन किया जावे तो उसे समासोक्ति अथवा अन्योक्ति अलंकार कहते हैं ॥ ९४ ॥

मधुकर मा कुरु शोकं विचर करीरद्रुमस्य कुसुमेषु ॥ घनतुहिनपातदलिता कथं सा मालिती प्राप्यते ॥ ९५ ॥

टीका—हे मधुकर शोकं मा कुरु करीरद्रुमस्य कुसुमेषु विचर घनतुहिनपातदलिता सा मालती कथं

प्राप्यते इत्यन्वयः ॥ घनतुहिनपातदलिता घनश्च असौ तुहिनपातः हिमपातः तेन दलिता विनष्टा सा मालती कथं प्राप्यते कथमपि न प्राप्यते इत्यर्थः ॥ अत्र विवक्षितस्य मालतीकुसुमस्य विनष्टस्य प्रतीतये तत्सधर्मस्य अन्यत वस्तुनः करीरकुसुमस्य कथनत्वात् समासोक्तिरन्योक्तिरलंकारो वा ॥ ९५ ॥

अर्थ-हे भ्रमर तू सोच मत कर कैरके वृक्षोंके पुष्पोंपर ही विचर क्योंकि विशेष पाला (शीत) पडनेसे विनष्ट हुई वह मालती कैसे प्राप्त हो सकती है । यहां विवक्षित मालतीके विनष्ट हुए पुष्पकी प्रतीतिके लिये समानधर्मी करीर(केर) के पुष्पोंका कथन होनेसे समासोक्ति अलंकार हुवा इसे ही अन्योक्ति भी कहसक्ते हैं ॥ ९५ ॥

चिंतयति न चूतलतां याति न जातिं न केतकीं क्रमते॥ कमललताभग्नमना मधुपयुवा केवलं क्वणति ॥ ९६ ॥

टीका-कमललताभग्नमना मधुपयुवा चूतलतां न चिंतयति जातिं न याति केतकीं न क्रमते केवलं क्वणति इत्यन्वयः ॥ कमललतया पद्मिन्या भग्नं मनः यस्य तथाभूतः मधुपयुवा चूतलताम् आम्रलतां जातिं मल्लिकां न क्रमते न अभिगच्छति किंतु केवलं क्वणति तामप्राप्य रौतीत्यर्थः (श्लोकोयं प्रक्षिप्तः) ॥ ९६॥

अर्थ--कमललता अर्थात् पद्मिनीके विना भग्न हो रहाहै मन जिसका ऐसा तरुण भ्रमर आमकी लताका चिंतवन नहीं करता

और चमेलीकी तरफ भी नहीं जाता तथा केतकीके पास भी नहीं फिरताहै किंतु पद्मिनीको न पाकर केवल रोताही है यह श्लोक क्षेपक है कई पुस्तकोंमें नहीं है ॥ ९६ ॥

(भाषा) दोहा—वर्णनीय जहँ वस्तुकी, करण समर्थ प्रतीत। कह्या जाय साधर्म कछु, समासोक्ति यह रीत ॥१॥ (उदाहरण) विचर करीरज कुसुम पर, अलि चिंतित मत होय। तुहिन विनष्टा मालती, किसविध पावत तोय ॥ २ ॥

विभावना ।

विना कारणसद्भावं यत्र कार्यस्य दर्शनम् ॥ नैसर्गिकगुणोत्कर्षभावनात्सा विभावना ॥ ९७ ॥

टीका—यत्र कारणसद्भावं विना नैसर्गिकगुणोत्कर्ष भावनात् कार्यस्य दर्शनं सा विभावना इत्यन्वयः ॥ नैसर्गिकगुणः स्वाभाविकगुणः तस्य उत्कर्षः अतिशयत्वं तस्य भावनात् यत्र कारणासत्वे कार्यस्य दर्शनं भवेत्सा विभावना विभावनालंकार इत्यर्थः ॥ ९७ ॥

अर्थ—जहां कारणके विना हुए ही स्वाभाविक गुणोत्कर्षकी भावनासे कार्यका होना प्रगट हो तो उसे विभावना अलंकार कहते हैं ॥ ९७ ॥

अनध्ययनविद्वांसो निर्द्रव्यपरमेश्वराः। अनलंकारसुभगाः पांतु युष्मान्जिनेश्वराः ॥ ९८ ॥

टीका--अनध्ययनविद्वांसः निर्द्रव्यपरमेश्वराः अनलंकारसुभगाः जिनेश्वराः युष्मान् पांतु इत्यन्वयः ॥ अनध्ययनविद्वांसः अध्ययनवर्जिताः विद्वांसः ज्ञानवंतः निर्द्रव्यपरमेश्वराः नास्ति द्रव्यं येषां तथाभूताः परमेश्वराः ऐश्वर्यसंपन्ना इत्यर्थः अनलंकारसुभगाः अलंकाराभावे भूषणासत्त्वेपि सुभगाः शोभना इत्यत्र अध्ययनादिकारणाभावेपि विद्वत्तादिकार्यदर्शनात् विभावनालंकारः ॥ ९८ ॥

अर्थ-विनाही पढे विद्वान् (ज्ञानी) और विनाही द्रव्यके ऐश्वर्यसंपन्न और विनाही अलंकारोंके सुभग ऐसे जिनेश्वर श्री ऋषभदेव तुम्हारी रक्षा करो यहां अध्ययनादि कारणके विनाही विद्वत्तादि कार्योंका होना सिद्ध है इससे विभावना अलंकार हुवा ॥ ९८ ॥

(भाषा) दोहा-विन कारण कारज जहां, कहि विभावना तास । तव शर विन लाग नृपति, होत शत्रु सब नास ॥ १ ॥

दीपक ।

आदिमध्यांतवर्त्येकपदार्थेनार्थसंगतिः ॥ वाक्यस्य यत्र जायेत तदुक्तं दीपकं यथा ॥ ९९ ॥

टीका--यत्र आदिमध्यांतवर्त्येकपदार्थेन वाक्यस्य अर्थसंगतिः जायेत तत् दीपकम् उक्तम् इत्यन्वयः ॥ यथा उदाहरणसूचकम् । आदिवर्तिना मध्यवर्तिना

अंतवर्तिना एकेनैव पदार्थेन क्रियारूपेण कारकरूपेण वा वाक्यस्य अर्थस्य संगतिः ॥ ९९ ॥

अर्थ–जहां आदिवर्ती या मध्यवर्ती या अंतवर्ती किसी एक पदार्थ (क्रियारूप या कारकरूप) से वाक्यके अर्थकी संगति होय तो उसे दीपक अलंकार जानो ॥ ९९ ॥

जगुस्तव दिवि स्वामिन् गंधर्वाः पावनं यशः॥किन्नराश्च कुलाद्रीणां कंदरेषु मुहुर्मुहुः ॥ १०० ॥

टीका--हे स्वामिन् तव पावनं यशः गंधर्वाः दिवि किंन्नराः कुलाद्रीणां कंदरेषु मुहुर्मुहुः जगुः इत्यन्वयः॥ अत्र जगुः इति आदिगतं क्रियापदम् उभयोर्वाक्ययोर्मध्ये समन्वितम् अतः दीपकालंकारः ॥ १०० ॥

अर्थ–हे स्वामिन् आपके पवित्र यशको गंधर्व स्वर्गमें और किन्नर कुलपर्वतोंकी कंदराओंमें वारंवार गान करते भये यहां जगुः अर्थात् गाते भये यह आदिगत क्रियापद दूसरी जगह भी समन्वित होता है इससे दीपक अलंकार हुवा ॥ १०० ॥

विराजंते तमिस्राणि द्योतंते दिवि तारकाः॥ विभांति कुमुदश्रेण्यः शोभंते निशि दीपकाः ॥ १०१ ॥

टीका--तमिश्राणि विराजंते तारका दिवि द्योतंते कुमुदश्रेण्यः विभांति दीपकाः निशि शोभंते इत्य-

न्वयः ॥ अत्र पृथक् पृथक् क्रियातिरेकेऽपि पदार्थ-स्त्वेक एव नार्थभेदः अतो दीपकालंकारः ॥ १०१ ॥

अर्थ-अंधेरे विराजतेहैं आकाशमें तारे चमकते हैं कुमुद शोभित हो रहेहैं और दीपक रातमें शोभायमान होरहे हैं यहां पर यद्यपि क्रियापद अनेक हैं तौ भी सबका अर्थ एकसाही है इससे दीपक हुवा ॥ १०१ ॥

(दीपकालं० भाषा) दोहा-दीपक एकपदार्थसे, अर्थ संगती होय। गावत यश दिवि मेरुपें, मयु अरु किन्नर सोय॥ १ ॥

अतिशयालंकार ।

वस्तूनां वक्तुमुत्कर्षमसंभाव्यं यदुच्यते ॥ वदंत्यतिशयाख्यं तमलंकारं बुधा यथा ॥ १०२ ॥

टीका-वस्तूनाम् उत्कर्षं वक्तुं यत् असंभाव्यम् उच्यते बुधाः तम् अतिशयाख्यम् अलंकारं वदंति इत्यन्वयः ॥ (यथा इति उदाहरणसूचकम्) वस्तूनां पदार्थानाम् असंभाव्यम् असंभवात्मकम् अर्थस्य वक्तुम् असंभाव्यं यत्रोच्यते सोतिशयालंकारः॥ १०२॥

अर्थ--अर्थकी उत्कर्षताके वर्णन करनेको जहां असंभाव्य वचन कहे जावें तो उसे पंडित अतिशयालंकार कहते हैं॥ १०२॥

त्वद्दारितारितरुणीश्वासितानिलेन संमूर्च्छितोर्मिषु महोदधिषु क्षितीश ॥ अंत-

लुंठद्गिरिपरस्परशृंगसंगघोरारवैर्मधुरि-
पोरपयाति निद्रा ॥ १०३ ॥

टीका--हे क्षितीश ! त्वद्दारितारितरुणीश्वसितानि-
लेन संमूर्च्छितोर्मिषु महोदधिषु अंतर्लुंठद्गिरिपरस्पर
शृंगसंगघोरारवैः मधुरिपोः निद्रा अपयाति इत्य-
न्वयः ॥ त्वया दारिता निहता ये अरयः शत्रवः तेषां
तरुण्यः कामिन्यः तासां श्वसितानिलेन निःश्वास-
वातेन संमूर्च्छिताः ऊर्मयः कल्लोला येषां तथाभूतेषु
महोदधिषु समुद्रेषु अंतर्लुंठंतः इतस्ततः चलंतः ये
गिरयः पर्वताः तेषां परस्परं शृंगाणां संगः संघर्षः तस्य
घोराः प्रचंडाः आरवाः शब्दाः तैः मुररिपोः मुरारेः
विष्णोः समुद्रे शयितस्येति भावः निद्रा अपयाति
निर्गच्छतीत्यर्थः अत्र राज्ञो यशः प्रतिपादयितुं शत्रुव-
नितोश्वसितेन संमूर्च्छितोर्मिसमुद्रेषु लुठत्पर्वतशृंग-
संगशब्देन विष्णोर्निद्राभंगादिकम् असंभाव्यकथनम्
अतएव अतिशयालंकारः ॥ १०३ ॥

अर्थ--हे राजन् आपके मारे हुए शत्रुवोंकी स्त्रियोंकी निःश्वास-
वायु करके समुद्रोंकी तरंग बढ़ जानेपर उसके भीतर लुढते हुए
पहाडोंकी चोटियोंके संघर्षके प्रचण्ड शब्दसे समुद्रमें सोते हुए
विष्णु भगवानकी निद्रा खुल गई यहां राजाकी कीर्तिके बढ़ानेके-
लिये शत्रुवोंके स्त्रियोंकी श्वासवायुसे समुद्रकी तरंग बढ़ना
और उसके भीतर पहाडोंका लुढकना और उनके परस्पर टक-

रानेके प्रचंड शब्दसे विष्णुकी निद्रा खुलना इत्यादिक असंभाव्य कथन होनेसे अतिशयालंकार हुवा ॥ १०३ ॥

एकदंडानि सप्त स्युर्यदि छत्राणि पर्वते ॥ तदोपमीयते पार्श्वमूर्ध्नि सप्तफणः फणी ॥ १०४ ॥

टीका-यदि पर्वते सप्त छत्राणि एकदंडानि स्युः तदा पार्श्वमूर्ध्नि सप्तफणः फणी उपमीयते इत्यन्वयः ॥ पार्श्वः पार्श्वनाथः ॥ १०४ ॥

अर्थ-यदि पर्वतपर सात छत्र एक दंडवाले हों तो पार्श्वनाथके शिरपर जो सात फणोंवाला सर्प है उसकी उपमा दी जासक्ती है यहां पार्श्वनाथकी कीर्तिके उत्कर्षके लिये सात छत्रोंको एक दंड होना इत्यादि असंभाव्य कथन होनेसे अतिशयालंकार हुवा ॥ १०४ ॥

(भाषा) सोरठा-वस्तु बडाई हेत, असंभाव्य वर्णन जहां । तेहि अतिशय कहि देत, काव्य रसिक जे अति निपुण ॥ १ ॥ (उदाहरण) दोहा-तव रिपु तिय श्वासा पवन, चलित सिंधु गिरि शृंग । संघर्षणके शब्दसे, विष्णु नींद भइ भंग ॥ २ ॥

हेतु ।

यत्रोत्पादयतः किंचिदर्थं कर्तुः प्रकाश्यते ॥ तद्योग्यतायुक्तिरसौ हेतुरुक्तो बुधैर्यथा ॥ १०५ ॥

टीका--यत्र किंचित् अर्थम् उत्पादयतः कर्तुः योग्यतायुक्तिः प्रकाश्यते बुधैः असौ हेतुः उक्तः इत्यन्वयः ॥ यथाशब्दस्तूदाहरणसूचकः। हेतुनामालंकारः ॥ १०५ ॥

अर्थ-जहां कोई अर्थ उत्पादन करनेवाले कर्ताकी योग्यताकी युक्ति प्रकाश करी जावे तो उसे विद्वान् लोग हेतु अलंकार कहते हैं ॥ १०५ ॥

प्राकृत उदाहरण ।

जुव्वण समओम्मत्ता तत्ता विरहेण कुणइ णाहस्स॥ कंठब्भंतरघोलिदमहुररसं वालिया गीअम्॥ १०६ ॥

टीका--(अस्य संस्कृतम्) यौवनसमयोन्मत्ता तप्ता विरहेण करोति नाथस्य कंठाभ्यंतरघोलितमधुरस्वरं बालिका गीतम् ॥ इति यौवनसमयोन्मत्ता नाथस्य विरहेण तप्ता बालिका कंठाभ्यंतरघोलितमधुरस्वरं गीतं करोतीत्यन्वयः॥ यौवनसमयेन उन्मत्ता नाथस्य पत्युः विरहेण तप्ता बालिका कंठाभ्यंतरे एव घोलितः अनाविष्कृतः मधुरः स्वरः यस्य तत् गीतं करोति गायतीत्यर्थः। अत्र कर्तृरूपायाः बालिकायाः गीतमिति उत्पादितोर्थः तस्य योग्यतायुक्तिः पत्युः विरहः यौवनोन्मत्तता गीतस्य हेतुः अतो हेतुर्नामालंकारः ॥ १०६ ॥

अर्थ-युवावस्थाके कारण उन्मत्त, पतिके विरहसे व्याकुल नव युवती गलेके भीतर ही अस्पष्टशब्द करती हुई गाती है१०६

विषसोदरो मृगांकः कृतांतदिशात आगतः पवनः ॥ जातपलाशः शिखरी पथिकान्मारयंति ते त्रयः ॥ १०७ ॥

टीका--विषसोदरः मृगांकः कृतांतदिशात आगतः पवनः जातपलाशः शिखरी ते त्रयः पथिकान् मारयंति इत्यन्वयः ॥ विषं सोदरः सहोदरः यस्य एवंभूतः मृगांकः चंद्रः कृतांतो यमः तद्दिशातो दक्षिणतः आगतः पवनः जातपलाशः जातानि पलाशानि पत्राणि यस्य तथाभूतः शिखरी वृक्षः अथवा जाता पले मांसे आशा अभिलाषा यस्य तथाभूतः अत्र विषसोदरत्वाच्चंद्रस्य कृतांतदिशातः आगमनात् पवनस्य तथा पले वांछाजातत्वात् शिखरिणः मारकत्वं युक्तम् इति त्रयाणामेव पथिकमारणे योग्यताकारणत्वात् हेतुरलंकारः ॥ १०७ ॥

अर्थ-विष सहोदर चंद्रमा और यमकी दिशा दक्षिणकी ओरसे आया हुवा वायु और जातपलाश अर्थात् नवीन पत्र उत्पन्न हों जिसमें ऐसा वृक्ष अथवा जातपलाशका अर्थ प्राप्त हुई है पल अर्थात् मांसकी आशा अभिलाषा जिसको ऐसा वृक्ष ये तीन पथिकोंको मारक अर्थात् कामदेवकी बाधासे मृतप्राय करने वाले हैं इसमें विषका सहोदर अर्थात् समुद्रसेही विष

और चंद्र दोनों उत्पन्न होनेसे चंद्रमाको और यमकी दिशासे आनेसे दक्षिणकी पवनको और मांसकी अभिलाषा ऐसे शिखरी-को मारकत्व ठीक ही है इससे इन तीनोंमें पथिक मारणकी योग्यताके कारण होनेसे हेतु अलंकार हुवा ॥ १०७ ॥

(भाषा) दोहा—जहां उत्पादक कर्तृकी, युक्त योग्यता होय। काव्यरसिक पंडित कहे, "हेतु" अलंकृत सोय ॥१॥(उदाहरण) विषसोदर शशि काल घन, यम दिशिवदत वयार। जातपलाश पलाश तरु, विरहिनि मारत चार ॥ २ ॥

पर्य्यायोक्ति ।

अतत्परतया यत्र कल्पमानेन वस्तुना॥ विवक्षितं प्रतीयेत पर्य्यायोक्तिरियं यथा ॥ १०८ ॥

टीका—यत्र अतत्परतया कल्पमानेन वस्तुना विवक्षितं प्रतीयते इयं पर्यायोक्तिः इत्यन्वयः ॥ यथा-पदं मुदाहरणार्थम् अतत्परतया न विवक्षितपरतया कल्पमानेन वस्तुना अर्थेन विवक्षितं वक्तुमिष्टं प्रतीय-ते प्रतीतिं प्राप्यते सा पर्य्यायोक्तिः पर्य्यायेण शब्देन अर्थेन च उक्तिः वचनं यत्र सा ॥ १०८ ॥

अर्थ—जो कुछ कहनेकी इच्छाहो उससे भिन्न वचनोंसे कथित वस्तुमें जहां विवक्षित वक्ताके अभीष्टकी प्रतीति हो जावे तो उसे पर्यायोक्ति अलंकार कहते हैं ॥ १०८ ॥

त्वत्सैन्यवाहनिवहस्य महाहवेषु द्वेषः प्रभो रिपुपुरंध्रिजनस्य चासीत् ॥ एकः

खुरैर्बहुलरेणुतातिं चकार तां संजहार पुनरश्रुजलैस्तदन्यः ॥ १०९ ॥

टीका--हे प्रभो महाहवेषु त्वत्सैन्यवाहनिवहस्य च रिपुपुरंध्रिजनस्य द्वेषः आसीत् एकः खुरैः बहुलरेणुतातिं चकार तदन्यः पुनः अश्रुजलैः तां संजहार इत्यन्वयः॥ सैन्यस्य वाहाः अश्वादयः तेषां निवहः समूहः रिपूणां पुरंध्रिजनः स्त्रीजनः तस्य द्वेषः वैरं महाहवेषु महारणेषु एकः सैन्यवाहनिवहः खुरैः बहुलां रेणुतातिं धूलिविस्तारं चकार तदन्यः रिपुपुरंध्रिजनः अश्रुजलैः तां रणुतातिं पुनः संजहार निराचकार अत्र अविवक्षितपरतया विवक्षितस्य रिपुमारणस्य तत्पुरंध्रिजनरुदनेन प्रतीतिः जायते अतः पर्यायोक्तिरलंकारः ॥ १०९ ॥

अर्थ-हे प्रभो हे राजन् महासंग्राममें आपकी सेनाके अश्वादिकोंके समूहका और आपके शत्रुवोंकी स्त्रियोंका वैरही हो गया है क्योंकि एक (आपकी सेनाके वाहनोंका समूह) तो अपने खुरों (की रोंद) से (शत्रुके महलमें) रज फैलाता है और दूसरा (आपके शत्रुवोंका स्त्री समाज) अपने अश्रुपातोंसे उसे धो डालता है यहां वर्णित शब्दोंसे पृथक् रिपु स्त्रियोंके रुदनसे विवक्षित अर्थ शत्रुमारणकी प्रतीति हुई इससे पर्य्यायोक्ति अलंकार हुवा ॥ १०९ ॥

(भाषा) दोहा-होय विवक्षित अर्थका, विना कहे विज्ञान । अन्य कल्पनासे तिसे, पर्य्यायोक्ति बखान ॥ १ ॥ (उदाहरण)

अरि तिय अरु तव दल तुरग, वैर परस्पर होत। ये खुर रज डारत महल, वे निज अँसुवन धोत ॥ २ ॥

समाहित।

कारणांतरसंपत्तिः दैवादारम्भ एव हि ॥ यत्र कार्यस्य जायेत तज्ज्ञायेत समाहितम् ॥ ११० ॥

टीका--यत्र कार्यस्य आरंभे दैवात् एव कारणान्तरसंपत्तिःहि जायेत तत् समाहितं ज्ञायेत इत्यन्वयः॥ कारणांतरसंपत्तिः हेत्वंतरस्य संपत्तिः ॥ ११० ॥

अर्थ--जहां कार्यके आरंभमें दैवसे ईश्वर अथवा भाग्यसे स्वयं भी अन्य कारणकी संपत्ति पैदा हो जावे तो उसे समाहित अलंकार कहते हैं ॥ ११० ॥

मनस्विनी वल्लभवेश्म गंतुमुत्कंठिता यावदभूद् निशायाम्॥ तावन्नवांभोधरधीरनादप्रबोधितः सौधशिखी चुकूज॥१११॥

टीका--मनस्विनी निशायां यावत् वल्लभवेश्म गंतुम् उत्कंठिता अभूत् तावत् नवांभोधरधीरनादप्रबोधितः सौधशिखी चुकूज इत्यन्वयः ॥ मनस्विनी मानवती कांता वल्लभस्य भर्तुः वेश्म गृहं गंतुम् उत्कंठिता गमनाय उत्सुका अभूत् स्वमनसा एव मानं त्यक्त्वा प्रियतमागारे गंतुमुद्यतेति भावः तावत् नवांभोधरस्य

नवमेघस्य धीरनादेन गंभीरध्वनिना प्रबोधितः सन् सौधशिखी अट्टालिकास्थितो मयूरः चुकूज शब्दं कृतवानित्यर्थः अत्र मानत्यागे कर्त्तव्यारंभे दैवात् मेघगर्जनस्य च मेघगर्जननादेन मयूरध्वनेश्च कारणांतरसंपत्तिदर्शनात् समाहितालंकारः मेघगर्जनं मयूरध्वनिश्च मानिनीमानभंगे कारणांतरम् ॥ १११ ॥

अर्थ-मानवती कामिनी रातको (स्वयं मान त्यागनेकी इच्छा कर) पतिके स्थानमें जानेको तयार होना चाहती ही थी कि इसी अवसर पर नवीन प्रावृट ऋतुके मेघोंकी गर्जनाके शब्द होनेसे बोधित हुवा अटारी स्थित मोर कूकने लगा मेघोंका शब्द और मोरोंकी कूक अधिक कामोद्दीपक होनेके कारण मान त्यागमें यह दैवी कारणांतरकी संपत्ति होनेसे समाहित अलंकार हुवा ॥ १११ ॥

(भाषा) दोहा-जहां कार्य आरंभमें, दैवी हेतु सहाय । अन्य आपही होय कछु, कहत समाहित ताय ॥ १ ॥ (उदाहरण) जब कामिनि निज मान तजि, चलन चहत पति पास । तबहि मेघरव मोर धुन सुन अति बढ्यौ हुलास ॥ २ ॥

परिवृत्ति ।

परिवर्तनमर्थेन सदृशासदृशेन वा ॥ जायेतार्थस्य यत्रासौ परिवृत्तिर्यथा मता ११२

टीका-यत्र सदृशासदृशेन वा अर्थेन अर्थस्य परिवर्त्तनं जायेत असौ परिवृत्तिः मता इत्यन्वयः ॥

यथापदमुदाहरणार्थं सदृशासदृशेन समेन न्यूनाधिकेन वा परिवर्तनं विनिमयः ॥ ११२ ॥

अर्थ–जहां समान अथवा न्यूनाधिक अर्थसे अर्थका पलटा होजावे तो उसे परिवृत्ति अलंकार कहते हैं ॥ ११२ ॥

अंतर्गतव्यालफणामणीनां प्रभाभिरुद्भासितभूषु भर्तः ॥ स्फुरत्प्रदीपानि गृहाणि मुक्त्वा गुहासु शेते त्वदरातिवर्गः॥११३ ॥

टीका–हे भर्तः त्वदरातिवर्गः स्फुरत्प्रदीपानि गृहाणि मुक्त्वा अंतर्गतव्यालफणामणीनांप्रभाभिःउद्भासितभूषु गुहासु शेते इत्यन्वयः ॥ हे भर्तः हे राजन्! त्वदरातिवर्गः तव अरातिवर्गः शत्रुसमूहः स्फुरंतः प्रदीपाः येषु तथाभूतानि गृहाणि मुक्त्वा विहाय अंतर्गतानां व्यालानां सर्पाणां ये फणामणयः फणास्थमणयः तेषां प्रभाभिः कांतिभिः उद्भासिता भूः पृथिवी यासां तथाभूतासु गुहासु पर्वतकंदरासु शेते शयनं करोतीत्यर्थः अत्र स्फुरत्प्रदीपस्य गृहस्य व्यालमणिप्रभासितागिरिकंदरेण परिवर्तनम् अतः परिवृत्तिरलंकारः ॥ ११३ ॥

अर्थ–हे भर्त्तः हे राजन् आपके शत्रुवोंका समूह स्फुरित दीपकोंसे संयुक्त अपने स्थानोंको छोडकर भीतर घुसे हुए सर्पोंके

फणोंकी मणियोंकी कांतिसे प्रकाशित भूमिवाली पर्वतोंकी गुफाओंमें (छुप कर) सोते हैं यहाँ स्फुरित दीपयुक्त स्थानोंका सर्पमणि कांति प्रकाशित गुफासे बदला होनेसे सादृश्य रूप परिवृत्ति अलंकार हुवा ॥ ११३ ॥

दत्त्वा प्रहारं रिपुपार्थिवानां जग्राह यः संयति जीवितव्यम् ॥ शृंगारभंगीं च तदंगनानामादाय दुःखानि ददौ सदैव ॥ ११४ ॥

टीका-यः संयति रिपुपार्थिवानां प्रहारं दत्त्वा जीवितव्यं जग्राह च तदंगनानां शृंगारभंगीम् आदाय सदैव दुःखानि ददौ इत्यन्वयः ॥ संयति संग्रामे रिपुपार्थिवानां शत्रुनृपाणां प्रहारं शस्त्रप्रहारं दत्त्वा जीवितव्यं जीवितं जग्राह ग्रहणं चकार तदंगनानां शत्रुवनितानां शृंगारभंगीं शृंगारविन्यासम् आदाय गृहीत्वा दुःखानि ददौ दत्तवान् (संयत् स्त्री. युद्धे, भंगी स्त्री. विन्यासे भेदे चेति शब्दस्तोम०) अत्र प्रहारजीवनयोः शृंगारभंगीदुःखयोश्च असादृश्येन विनिमयः अतः असादृश्यपरिवृत्तिरलंकारः ॥ ११४ ॥

अर्थ-वह राजा युद्धमें अपने वैरी नृपोंको (शस्त्रका) प्रहार देकर उनका जीवन लेता भया और शत्रुवोंकी स्त्रियोंका शृंगार छीनकर सदा उनको दुःख देता भया यहां प्रहार देकर पलटेमें जीवन लेना और शृंगार लेकर पलटेमें दुःख देना ऐसा वर्णन होनेसे असादृश्य परिवृत्ति अलंकार हुवा ॥ ११४ ॥

(भाषा) दोहा—जहां वस्तुका वस्तुसे,पलटा वर्णन होय। परिवृत्ती तिहि जानिये, असम और सम होय ॥ १ ॥ (उदाहरण) प्यारे मोमन लेयके, दीनो दुःख अपार । जब तब मुख दीखे नहीं, देखूं कमल निहार ॥ २ ॥

यथासंख्य ।

यत्रोक्तानां पदार्थानामर्थाः संबंधिनः पुनः ॥ क्रमेण तेन बध्यंते तद्यथासंख्यमुच्यते ॥ ११५ ॥

टीका--यत्र उक्तानां पदार्थानां संबंधिनः अर्थाः पुनः तेन क्रमेण बध्यंते तत् यथासंख्यम् उच्यते इत्यन्वयः ॥ तेन क्रमेण पदार्थवर्णनक्रमेण ॥ ११५॥

अर्थ--जहां उक्त पदार्थोंसे संबंधरखने वाले अर्थ फिर उसी क्रमसे बांधे जावें अर्थात् कहे जावें तो उसे यथासंख्य अलंकार कहते हैं ॥ ११५ ॥

मृदुभुजलतिकाभ्यां शोणिमानं दधत्या चरणकमलभासा चारुणा चाननेन ॥ विसकिसलयपद्मान्यात्तलक्ष्मीणि मन्ये विरहविपदि वैरात्तन्वते तापमंगे ॥ ११६॥

टीका—विसकिसलयपद्मानि मृदुभुजलतिकाभ्यां शोणिमानं दधत्या चरणकमलभासा च चारुणा आननेन आतलक्ष्मीणि मन्ये विरहविपदि वैरात् अंगे

तापं तन्वते इत्यन्वयः ॥ विसानि मृणालानि किसलयाः पल्लवाः पद्मानि कमलानि एतानि यथाक्रमम् आत्तलक्ष्मीणि विसानि भुजलतिकाभ्यां, किसलयानि शोणिमानं दधत्या चरणकमलभासा, पद्मानि चारुणा आननेन मुखेन आत्तलक्ष्मीणि आत्ता प्राप्ता लक्ष्मीः शोभा यैः तथाभूतानि विसकिसलयपद्मानि मृदुभुजादीनां लक्ष्मीहरणवैरात् विहरविपत्तौ शरीरे तापं न निराकुर्वंति किंतु तापं कुर्वंत्येव अत्र भुजलतादीनां पदार्थानां संबंधिनः पदार्था विसादयः यथाक्रमं निबद्धाः अतो यथासंख्यमलंकारः ॥ ११६ ॥

अर्थ—कमलकी नाल और पत्र तथा कमल इतने कोमल भुजलतासे तथा रक्तत्व धारणकिये चरण कमलकी शोभासे तथा सुंदर मुखसे यथाक्रम सुंदरता प्राप्त करी है (छीन कर ली है) इस वैरसे ही ये विरह विपत्तिमें अंगोंमें संताप करते हैं यहां विस (कमलनाल) और किसलय (पत्र) तथा पद्म इनके संबंधी पदों मृदु भुजलता चरण कमलकी कांति और सुंदर मुखका उसी क्रमसे यथासंख्य वर्णन है इससे यथासंख्य अलंकार हुवा ॥ ११६ ॥

(भाषा) दोहा—यथासंख्य संबंधि पद, होंय यथाक्रम संग ।
सुंदरि मुख दृग कच निरखि, लजहिं कंज मृग भृंग ॥ १ ॥

विषमालंकार ।

वस्तुनोर्यत्र संबंधमनौचित्येन केनचित् ॥
असंभाव्यं वदेद्वक्ता तमाहुर्विषमं यथा ॥

॥ ११७ ॥ केदं तव वपुर्वत्से कदलीगर्भ-कोमलम् ॥ क्वायं राजमति ! क्लेशदायी व्रतपरिग्रहः ॥ ११८ ॥

टीका—यत्र वक्ता वस्तुनोः असंभाव्यं संबंधं केनचित् अनौचित्येन वदेत् तं विषमम् आहुः इत्यन्वयः॥ (यथापदं वक्ष्यमाणोदाहरणसूचकम्) वस्तुनोः द्वयोः पदार्थयोः अनौचित्येन केनचित् औचित्यरहितेन असंभाव्यं संभाव्यताविरुद्धं संबंधं वदेत् तं विषमं विषमालंकारम् आहुः बुधा इति शेषः ॥ ११७ ॥ (अस्योदाहरणम्) हे राजमति ! हे वत्से ! कदलीगर्भकोमलम् इदं तव वपुः क्व क्लेशदायी अयं व्रतपरिग्रहः क्व इत्यन्वयः ॥ कदलीगर्भकोमलं रंभागर्भवन्मृदुलं क्लेशदायी दुःखदः व्रतपरिग्रहः उपवासादिग्रहणनियमः अत्र कोमलवपुषः कठिनव्रतपरिग्रहस्य च अनौचित्येन संबंधः अतो विषमालंकारः ॥ ११८ ॥

अर्थ—जहां वक्ता दो वस्तुका असंभाव्य संबंध किसी अनुचित भावसे वर्णन करे तो कवि लोग उसे विषम अलंकार कहते हैं (इसका उदाहरण) जैसे हे राजमति हे वत्से केलेके अंतरगर्भके समान कोमल तुम्हारा शरीर तो कहां और क्लेशदायक यह व्रत (उपवासादिका) परिग्रह धारणानियम कहां इसमें कोमल शरीरका कठोर व्रतादिसे असंभाव्य अनुचित भावपूर्वक संबंध वर्णन होनेसे विषमालंकार हुवा ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

(भाषा) दोहा-विषम जहां संबंध हो, अनुचित दुइ इक ओर। कित सिय अति कोमल वदन, कित वन गमन कठोर ॥१॥

सहोक्ति ।

सहोक्तिः सा भवेद्यत्र कार्यकारणयोःसह॥ समुत्पत्तिः कथाहेतोर्वक्तुं तज्जन्मशक्तिताम् ॥ ११९ ॥

टीका--यत्र कथाहेतोः तज्जन्मशक्तितां वक्तुं कार्यकारणयोः सह समुत्पत्तिर्भवेत् सा सहोक्तिः इत्यन्वयः॥ कथाहेतोः कथननायकस्य तज्जन्मशक्तितां तयोः कार्यकारणयोः जन्मशक्तिः तस्याः भावः ताम् अथवा हेतोः कारणस्य तज्जन्मशक्तितां तस्य कारणस्य कार्यस्य वा उत्पत्तिशक्तितां वक्तुं कार्यकारणयोः सह समुत्पत्तिकथा समकालसमुत्पादनवार्ता भवेत् सा सहोक्तिः समुत्पत्तिः कथाहेतोः इत्यत्र समुत्पत्तिकथाहेतोः इति वा छेदः ॥ ११९ ॥

अर्थ-जहां कथाके हेतु अर्थात् कथनके नायक और कई कारणके उत्पादन शक्तिके भावको कहनेमें कार्य और कारणकी साथही उत्पत्ति हो तो उसे सहोक्ति अलंकार कहते हैं अथवा कई समुत्पत्तिकथा इतना एकपद मानते हैं ॥ ११९ ॥

आदत्ते सह यशसा नमयति सार्द्धं मदेन संग्रामे। सह विद्विषां श्रियाऽसौ कोदंडं कर्षति श्रीमान् ॥ १२० ॥

टीका--असौ श्रीमान् संग्रामे कोदंडं विद्विषां यशसा सह आदत्ते मदेन सार्द्धं नमयति श्रिया सह कर्षति इत्यन्वयः॥ असौ श्रीमान् नृपः कोदंडं धनुः विद्विषां शत्रूणां यशसा सह आदत्ते गृह्णातीत्यादि अत्र कथानायकस्य राज्ञः तत्सामर्थ्यं वक्तुं कोदंडकर्षणादिकं कारणं यशोग्रहणं मदापनयनं श्रीहरणं कार्यं समकालमेवोक्तम् इति सहोक्तिरलंकारः॥ १२०॥

अर्थ--यह राजा संग्राममें धनुषको शत्रुवोंके यशके साथही लेता भया और उनके गर्वके साथही नवावता भया और उनकी लक्ष्मीके साथही खेंचता भया यहां कथानायक राजाके प्रताप वर्णन करनेमें धनुष लेना नवाना खेंचना कारण शत्रुका यश लेलेना गर्व नवादेना और लक्ष्मी खेंचना कार्य साथही हुए इससे सहोक्ति अलंकार हुवा॥ १२०॥

(भाषा) दोहा--सो सहोक्ति जहँ कार्य अरु, कारण साथहि होय। भूप राज्य यश सिंधु तक, साथहि पहुँचे दोय॥ १॥

विरोध।

आयाते हि विरुद्धत्वं यत्र वाक्ये न तत्त्वतः॥
शब्दार्थकृतमाभाति स विरोधः स्मृतो यथा॥ १२१॥

टीका -यत्र वाक्ये आयाते शब्दार्थकृतं विरुद्धत्वम् आभाति हि तत्त्वतः न स विरोधः स्मृतः इत्यन्वयः॥ (यथापदमुदाहरणार्थः) आयाते तत्काले पठनश्रवण

मात्रे इत्यर्थः शब्दार्थकृतं शब्दकृतम् अर्थकृतं च विरुद्धत्वम् आभाति दृश्यते परंतु तत्त्वतः वाक्यार्थतत्त्वज्ञानतः विरोधत्वं न भवेदिति स विरोधः विरोधालंकारः (एष विरोधाभासनाम्नापि प्रसिद्धः)॥ १२१ ॥

अर्थ--जहां वाक्यमें तत्काल पठन श्रवण होतेही तो शब्दका अथवा अर्थका विरुद्धत्व जाना जावे परंतु वाक्यका तत्त्व जाननेपर विरुधत्व न हो तो उसे विरोधालंकार कहते हैं (इसे विरोधाभास भी कहते है) ॥ १२१ ॥

दुर्वारबाणविभवेन सुवर्मणापि लोकोत्तरान्वयभुवापि च धीवरेण ॥ प्रत्यर्थिषु प्रतिरणं स्खलितेषु तेन संज्ञामवाप्य युयुधे पुनरेव जिष्णुः ॥ १२२ ॥

टीका--जिष्णुः प्रतिरणं प्रत्यर्थिषु स्खलितेषु तत्सु तेन दुर्वारबाणविभवेन सुवर्मणा च लोकोत्तरान्वयभुवा धीवरेण अपि संज्ञाम् अवाप्य पुनरेव युयुधे इत्यन्वयः॥ जिष्णुः जयनशीलः वारबाणः कवचः दुर्वारबाणविभवः दुर्भगो निंद्यःवारबाणस्य विभवो यस्य स तेन सुवर्मणा सुष्ठु वर्म कवचो यस्य सः सुवर्मा तेन यः निंद्यकवचः स सुवर्मा न भवति इति श्रवणमात्रे तु विरोधः वस्तुतस्तु दुर्वारबाणविभवेन दुर्वारः बाणस्य विभवो यस्य स तेन सुवर्मणा इत्यर्थः एवमेव लोकोत्तरान्वयभुवा लोके उत्तरा श्रेष्ठा अन्वयस्य वं-

शस्य भूः उत्पत्तिस्थानं यस्य स लोकोत्तरान्वयभूः तेन श्रेष्ठवंशोद्भवेन धीवरेण धीवरो निषादः यो धीवरः स कथं श्रेष्ठवंशोद्भवः इति तत्काले तु विरोधो दृश्यते वस्तुतस्तु धीवरः धी बुद्धिः वराश्रेष्ठा यस्य स धीवरः तेन सुबुद्धिना श्रेष्ठवंशोद्भवेनेत्यर्थः अत्र तत्काले तु शाब्दिको विरोधो दृश्यते परंतु न तत्त्वतो विरोधः इति विरोधालंकारः ॥ १२२ ॥

अर्थ–जिष्णु अर्थात् जयनशील कोई शूरवीर हरेक युद्धमें प्रतिपक्षियोंके स्खलित (पराजित) होनेपर उस दुर्वारबाण सुवर्मा (खराबकवचवाले व अच्छे कवचवाले) से तथा श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न होने वाले धीवर कहारसे भी चैतन्य होकर फिर युद्ध करता भया (यहां पहले दुर्वारबाणविभवका अर्थ खराब कवचके विभव वाला दीखनेसे सुवर्मा अच्छे वाला वही कैसे हो यह विरोध दीखता है परंतु वाक्यार्थ विचारनेसे दुर्वारबाण विभवका अर्थ दुर्निवार है बाणोंका विभव जिसका ऐसा सुवर्मा यह तत्त्वार्थ हुवा और वास्तविक विरोध नहीं रहा इसी प्रकार अच्छे वंशमें होने वाला फिर धीवर कहार कैसे यह विरोध प्रतीत हुवा परंतु वस्तुतः धीवरका अर्थ यौगिक शक्तिसे धी बुद्धि है वर अर्थात् श्रेष्ठ जिसकी सो धीवर ऐसा अर्थ करनेसे वास्तविक विरोध नहीं रहा इससे यह शाब्दिक विरोधालंकार हुवा ॥ १२२ ॥

येनाक्रांतं सिंहासनमरिभूभृच्छिरांसि विनतानि ॥क्षिप्ता युधि शरपंक्तिः कीर्तिर्यावता दिगंतेषु ॥ १२३ ॥

टीका--येन सिंहासनम् आक्रांतम् अरिभूभृच्छिरांसि विनतानि युधि शरपंक्तिः क्षिप्ता कीर्तिः दिगंतेषु याता इत्यन्वयः ॥ आरिभूभृच्छिरांसि शत्रुनृपमस्तकानि अत्र सिंहासने आक्रांते शिरसां नमनं तथा च शरपंक्तिक्षेपणे कीर्तेः दिगंतगमनम् इति अर्थे विरोधः ॥ १२३ ॥

अर्थ-उस (राजा) ने सिंहासनपर आक्रमण किया और शत्रु नृपोंके शिर नीचे होगये और युद्धमें बाणोंकी पंक्ति छोडी और कीर्ति दिशावोंके अंत तक पहुँची इसमें सिंहासनपर आक्रमण होना और नीचा होजाना वैरियोंका शिर इसीतरह छोडना तो बाण और दिगंतमें पहुँचना कीर्ति ये दृष्टि मात्रके अर्थसे विरुद्ध प्रतीत होते हैं इससे यह आर्थिक विरोधालंकार हुवा १२३॥

(भाषा) दोहा-विरुद्ध शब्दार्थ जु लखे,सो विरोध कहि दीन। कमल नहीं यह कमलहै, जो मन करत मलीन ॥ १ ॥

अवसर ।

यत्रार्थांतरमुत्कृष्टं संभवत्युपलक्षणम् । प्रस्तुतार्थस्य स प्रोक्तो बुधैरवसरो यथा ॥ १२४ ॥

टीका-यत्र प्रस्तुतार्थस्य उत्कृष्टम् अर्थांतरम् उपलक्षणं संभवति स बुधैः अवसरः प्रोक्तः इत्यन्वयः ॥ यथापदमुदाहरणार्थं प्रस्तुतार्थस्य प्रकृतार्थस्य उपलक्षणं समीपस्थस्य लक्षणं ज्ञानं भवति यस्मात् तदु-

पलक्षणं स्वस्य तत्संबंधिनोऽन्यस्य च अजहत्स्वार्थया लक्षणया बोधकमित्यर्थः ॥ १२४ ॥

अर्थ--जहां प्रस्तुत अर्थका उत्कृष्ट अर्थांतर उपलक्षण रूपसे हो तो विद्वान उसे अवसर अलंकार कहते हैं ॥ १२४ ॥

स एष निश्चितानंदः स्वच्छंदतमविक्रमः॥ येन नक्तंचरः सोपि युद्धे वर्वरको जितः ॥ १२५ ॥

टीका--स एष निश्चितानंदः स्वच्छंदतमविक्रमः नक्तंचरः वर्वरकः सः अपि येन युद्धे जितः इत्यन्वयः॥ निश्चितानंदः निश्चितः आनंदो यस्य अतिशयेन स्वच्छंदः विक्रमो यस्य स स्वच्छंदतमविक्रमः नक्तं रात्रौ चरति इति नक्तंचरः वर्वरको वर्वरदेशीयो राक्षसः १२५॥

अर्थ--यह जो निश्चय आनंदवाला अर्थात् अखंड आनंदवाला और अत्यंत स्वच्छंद पराक्रमवाला रात्रिचर जो वर्वर (अर्थात् वर्वर देशका राक्षस अथवा मूर्ख) है उसेभी जिस राजाने युद्धमें जीत लिया यहां राजाके जयमें शत्रुके निश्चयानंद और स्वच्छंदतमविक्रमत्व यह उत्कृष्ट अर्थांतर उपलक्षणमें होनेसे अवसरालंकार हुवा ॥ १२५ ॥

(भाषा) दोहा--सो अवसर ऊंचो अरथ, उपलक्षणमें होय। वह वर्वर अतिबल विभव, नृपने जीत्यो सोय ॥ १ ॥

सार ।

यत्र निर्द्धारितात्सारात्सारंसारं तत-

स्ततः ॥ निर्द्धार्यते यथाशक्ति तत्सार-
मिति कथ्यते ॥ १२६ ॥

टीका-यत्र ततस्ततः निर्द्धारितात् सारात् यथा-
शक्ति सारंसारं निर्द्धार्यते तत् सारम् इति कथ्यते
इत्यन्वयः ॥ निर्द्धारितात् निरूपितात् ॥ १२६ ॥

अर्थ-जहां निर्द्धारित सारमेंसे फिर फिर यथाशक्ति सार निकाला जावे तो उसे सार अलंकार कहते हैं ॥ १२६ ॥

संसारे मानुष्यं सारं मानुष्यके तु कौ-
लीन्यम् ॥ कौलीन्ये धर्मित्वं धर्मित्वे चापि
सदयत्वम् ॥ १२७ ॥

टीका-संसारे मानुष्यं मानुष्ये कौलीन्यं कौलीन्ये
धर्मित्वं धर्मित्वे अपि च सदयत्वं सारम् इत्यन्वयः ॥
मानुष्यं मनुष्यत्वं कौलीन्यं कुलीनत्वम् ॥ १२७ ॥

अर्थ-संसारमें मनुष्यता सार है और मनुष्यतामें कुलीनता सार है और कुलीनतामें धर्मिष्ठता सार है और धर्मिष्ठतामें भी दयायुक्त होनासार है यहां एकसे एकमें सार होनेसे सार अलंकार हुवा ॥ १२७ ॥

(भाषा) दोहा-सार एकका एकहो, सार ताहिको जान ।
जगमें सार समृद्धता, समृद्धतामें दान ॥ १ ॥ (सवैय्या) रूपे
की एक सुरूप सँदूकसे सोनेकी और सँदूक निकारी तामें धरी
उजरीसी जरी लिपटी डिबिया पुखराज सवारी । तासु निकार
धरी एक काँकरि देखके लाज मरी छवि सारी ज्यों पट ओढत

हैं बहु मोल महा सठ लोग कुरूपनि नारी ॥ २ ॥ इसमें पहले सार और फिर दृष्टांतालंकार है।

श्लेष।

पदैस्तैरेव भिन्नैर्वा वाक्यं वक्त्येकमेव हि ॥ अनेकमर्थं यत्रासौ श्लेष इत्युच्यते यथा ॥ १२८ ॥

टीका—यत्र तैः एव पदैः भिन्नैः वा एकं हि वाक्यम् एव अनेकम् अर्थं वक्ति असौ श्लेष इति उच्यते इत्यन्वयः ॥ यथापदमग्रिमोदाहरणार्थं वक्ति प्रतिपादयति ॥ १२८ ॥

अर्थ—जहां एकही वाक्य (या शब्द) उन्ही यथारूप पदों करके अथवा भिन्न पदों (शब्द या वाक्यके खंडों) करके अनेक अर्थको प्रतिपादन करे तो उसे श्लेष अलंकार कहतेहैं १२८

आनंदमुल्लासयतः समंतात्करैरसंतापकरैः प्रजानाम् ॥ अस्योदये क्षोभमवाप्य राज्ञो जग्राह वेलां किल सिंधुनाथः १२९

टीका--अस्य राज्ञः उदये सिंधुनाथः किल क्षोभम् अवाप्य वेलां जग्राह कीदृशस्य राज्ञः असंतापकरैः करैः समंतात् प्रजानाम् आनंदम् उल्लासयतः इत्यन्वयः ॥ राज्ञः नृपतेः चंद्रस्य वा उदये अभ्युदये च सिंधुनाथः सिंधुदेशाधिपतिः कश्चित् भूपः अथ वा

समुद्रः क्षोभम् अवाप्य पराभवम् उद्वेगं वा प्राप्य वेलां तटभूमिं मर्यादां वा जग्राह गृहीतवान् इत्यर्थः । असंतापकरैः सुखदायकैः करैः राज्यग्राह्यभागैः वा हस्तैः किरणैः वा प्रजानां लोकानाम् आनंदम् उल्लासयतः हर्षम् उत्पादयतः अत्र तैरेव पदैः श्लेषः ॥ १२९ ॥

अर्थ-इस राजाके अभ्युदय (प्रताप) के समय सिंधु देशका राजा भी पराभव (हार) मान कर मर्यादाको प्राप्त होता भया अर्थात् स्वाधीन नहीं रहा कैसा यह राजा है कि सुखदेने वाले करों (लगानों) से अथवा हाथोंसे प्रजाका आनंद बढाने वालाहै इन्ही पदोंके दूसरे अर्थ होकर और भी अर्थ हो सक्ताहै कि इस चंद्रमाके उदयके समय समुद्र क्षोभ उद्वेग को प्राप्त होकर किनारों को प्राप्त होता भया कैसा चंद्रमा है कि सुखदायक शीतल किरणोंसे मनुष्योंके हर्षका बढाने वालाहै । यहां राजाका अर्थ राजा और चंद्रमा दोनों हो सक्ते हैं इसी भांत उदयका अर्थ उदय और प्रताप तथा सिंधुनाथका अर्थ समुद्र और सिंधु देशका राजा तथा क्षोभका अर्थ पराभव और उद्वेग तथा वेलाका अर्थ तट और मर्यादा है इसी भांत करका अर्थ राजाका लगान मसूल आदि या हाथ अथवा किरण है जिससे राजा पक्षमें और चंद्रमा पक्षमें दोनोंमें उन्हीं पदोंके अर्थभेदसे दो अर्थ होनेसे तत्पदश्लेष अलंकार हुवा ॥ १२९ ॥

भिन्नपदश्लेषका उदाहरण ।

कुर्वन् कुवलयोल्लासं रम्यां-भोजश्रियं हरन् ॥ रेजे राजापि तच्चित्रं निशांते कांतिमत्तया ॥ १३० ॥

टीका--राजा कुवलयोल्लासं कुर्वन् रम्यां भोजश्रियं हरन् (सन्) निशांते अपि कांतिमत्तया रेजे तत् चित्रम् इत्यन्वयः ॥ राजा नृपः अथ वा चन्द्रः राजपक्षे कुवलयोल्लासं कुः पृथिवी तस्याः वलयं मंडलं भूमंडलमित्यर्थः तस्य उल्लासम् आनंदं कुर्वन् रम्यां भोजस्य नृपतेः श्रियं हरन् निशांते गृहमध्ये अपि कांतिमत्तया शोभावत्तया रेजे शुशुभे चंद्रपक्षे कुवलयानां कुमुदानाम् उल्लासं विकासं कुर्वन् तथा रम्या या अंभोजानां श्रीः तां हरन् निशाया अंतं निशांतं तस्मिन् निशांते निशायाः चतुर्थप्रहरे अपि कांतिमत्तया दीप्तिमत्तया रेजे शोभाम् अवाप इति तत् चित्रम् (निशांतं गृहं निशावसानं चेति श. स्तो.) अत्र भिन्नैः भेदखंडं प्राप्तैः पदैरनेकार्थस्य प्रतिपादनम् इति भिन्नपदैः श्लेषः अयं च सभंगश्लेष इत्युच्यते ॥ १३० ॥

अर्थ–इस श्लोकमें पदोंके खण्डार्थ करनेसे दूसरा अर्थ होजाता है राजा राजाको भी कहते हैं और चंद्रमाको भी कहते हैं (१) राजा पक्षमें यों अर्थ है कि राजा कुवलय कु पृथ्वी वलय मंडल अर्थात् भूमंडल को उल्लास (आनंद)करता हुवा और रमणीक भोज राजाकी लक्ष्मी तिसको हरण करता हुवा कांतिके प्रभावसे निशांत (घर) में भी शोभाको प्राप्त होता भया यह विचित्र है और चंद्रमा पक्षमें कुवलय (कमोदनी) के समूहको उल्लास विकासित करता हुवा और रमणीक जो कमलोंकी शोभा उनको नष्ट करता हुवा कांतिमत्ता दीप्तिमत्तासे निशाके अंतमें भी

चंद्रमा शोभाको प्राप्त होता भया यह विचित्र है यहां कुवलय कुमुद तथा भूमंडल और रम्यांभोज राजाकी श्री तथा रम्य अंभोजोंकी शोभा निशांत निशाका अंत तथा घर इस भांत खंड करके पदोंके अनेक अर्थ होनेसे भिन्नपद श्लेष हुवा इसे सभंग श्लेष भी कहते हैं ॥ १३० ॥

(भाषा) दोहा-एक वाक्यके बीचमें, अर्थ अनेक जु होंय । भिन्न अभिन्न पदौंन ते, श्लेष कहावत सोय॥ १ ॥

(उदाहरण) करतपातरनमेंखुशी, नित उठ चाहें पान । तिनको सब संसारमें, भडवे कहत बखान ॥ इस उदाहरणके दोहेमें भड सूर वीर और भडवे पातरोंके भडवे ।

समुच्चय ।

एकत्र यत्र वस्तूनामनेकेषां निबंधनम् ॥ अत्युत्कृष्टापकृष्टानां तं वदंति समुच्चयम् ॥ १३१ ॥

टीका-यत्र अत्युत्कृष्टापकृष्टानाम् अनेकेषां वस्तूनाम् एकत्र निबंधनं (स्यात्) तं समुच्चयम् वदंति इत्यन्वयः ॥ उत्कृष्टानां श्रेष्ठानाम् उग्राणाम् अपकृष्टानां निकृष्टानाम् ॥ १३१ ॥

अर्थ-जहां अत्यंत श्रेष्ठ (ऊचे) या नीचे पदार्थोंका एकत्र निबंधन हो तो उसे समुच्चयालंकार कहते हैं ॥ १३१ ॥

अणहिल्लपाटलं पुरमवनिपतिः कर्णदेवनृपसूनुः ॥ श्रीकलशनामधेयः करी च ज-

गतीह रत्नानि ॥ १३२ ॥ ग्रामे वासो नायको निर्विवेकः कौटिल्यानामेकपात्रं कलत्रम् ॥ नित्यं रोगः पारवश्यं च पुंसामेतत्सर्वं जीवतामेव मृत्युः ॥ १३३ ॥

टीका--अणहिल्लपाटलं पुरं कर्णदेवनृपसूनुः अवनिपतिः च श्रीकलशनामधेयः करी इह जगति रत्नानि इत्यन्वयः ॥ अणहिल्लपाटलं नामकं पुरं कर्णदेवनृपसूनुः कर्णदेवराज्ञः पुत्रः श्रीजयसिंहदेवः अवनिपतिः भूपतिः श्रीकलशनामा करी हस्ती इह जगति संसारे त्रीणि रत्नानि इत्यर्थः अत्र उत्कृष्टानां वस्तूनां निबंधनेन समुच्चयालंकारः ॥ १३२ ॥ ग्रामे वासः निर्विवेकः नायकः कौटिल्यानाम् एकपात्रं कलत्रं नित्यं रोगः च पारवश्यम् एतत्सर्वं जीवताम् एव पुंसां मृत्युः इत्यन्वयः ॥ नायकः पतिः निर्विवेकः मूर्खः कौटिल्यानां कुटिलभावानाम् एकपात्रं कलत्रं पत्नी अत्र अपकृष्टानां वस्तूनां निबंधनेन समुच्चयालंकारः ॥ १३३ ॥

अर्थ--अणहिल्लपाटल नामक नगर और कर्णदेव नृपका पुत्र जयसिंह देव राजा और श्रीकलश नामक हाथी ये तीनों इस संसारमें रत्न हैं यहां श्रेष्ठ श्रेष्ठ वस्तुओंका एकत्र निबंध होनेसे समुच्चयालंकार हुवा ॥ १३२ ॥ छोटे ग्राममें वसना निर्विवेक

(मूर्ख) पति और अत्यंत कुटिलताकी खान स्त्री नित्य रोग रहना तथा परवश होकर रहना ये सब जीते हुवे ही मनुष्योंकी मृत्यु (के समान) हैं यहां निकृष्ट वस्तुवोंका एकत्र निबंध होने से समुच्चयालंकार हुवा ॥ १३३ ॥

(भाषा) दोहा-एक ठौर शुभ या अशुभ, बहु वस्तुनका होय। समावेश तिहिं कहतहैं, नाम समुच्चय होय ॥१॥ (उदाहरण) पूत सुपूत सुशील तिय, सरल मित्र दृढकाय । स्थिरसंपत सुंदर भवन, राम कृपाते पाय ॥ २ ॥ सुत कुपूत तिय कर्कशा धूर्त मित्र थिर रोग। दुख दरिद्र कुलपापते, पावहिं पामर लोग॥३॥

अप्रस्तुतप्रशंसा ।

प्रशंसा क्रियते यत्राप्रस्तुतस्यापि वस्तुनः ॥ अप्रस्तुतप्रशंसां तामाहुः कृतधियो यथा ॥ १३४ ॥

टीका--यत्र अप्रस्तुतस्य अपि वस्तुनः प्रशंसा क्रियते तां कृतधियः अप्रस्तुतप्रशंसाम् आहुः इत्यन्वयः ॥ अप्रस्तुतस्य अप्रकृतस्य प्रस्तुतादन्यस्येत्यर्थः कृतधियः कृता धीः बुद्धिः यैः ते कृतधियः पंडिताः ॥ १३४ ॥

अर्थ--जहां अप्रस्तुत अर्थात् वर्णनीयसे अन्यकी प्रशंसा करी जावे तो उसे कृतबुद्धि पंडितजन अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार कहते हैं प्रशंसाका अभिप्राय यहां सत्प्रशंसा स्तुति और असत्प्रशंसा निंदा दोनोंही होते हैं ॥ १३४ ॥

स्वैरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति ॥ भिक्षुरेकः सुखी लोके राजचौरभयोज्झितः ॥ १३५ ॥

टीका--स्वैरं विहरति स्वैरं शेते च स्वैरं जल्पति (अतः) लोके राजचौरभयोज्झितः एकः भिक्षुः सुखी इत्यन्वयः ॥ स्वैरं स्वातंत्र्येण राजचौरभयोज्झितः राजभयेन चौरभयेन च उज्झितः रहितः अत्र अप्रस्तुतस्य संसारिणः असत्प्रशंसासूचनात् अप्रस्तुतप्रशंसालंकारः ॥ १३५ ॥

अर्थ--इस संसारमें राजा और चोर आदिके भयसे रहित एक भिक्षुकही सुखी है वह स्वतंत्रतासे विचरता है स्वतंत्रता पूर्वक सोता है और स्वतंत्रता पूर्वक बोलता है यहां अप्रस्तुत संसारी मनुष्यकी पराधीनतासे असत्प्रशंसाकी सूचनासे अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार हुवा ॥ १३५ ॥

(भाषा) दोहा--अप्रस्तुतकी स्तुतिभये, अप्रस्तुतप्रशंस। धनि जन पद हत धरनि रज, चढहि भूप अवतंस ॥ १ ॥

एकावली।

पूर्वपूर्वार्थवैशिष्ट्यनिष्ठानामुत्तरोत्तरम्॥अर्थानां या विरचना बुधैरेकावली मता १३६॥

टीका--पूर्वपूर्वार्थवैशिष्ट्यनिष्ठानाम् अर्थानाम् उत्तरोत्तरं या विरचना (सा) बुधैः एकावली मता

इत्यन्वयः ॥ पूर्वपूर्वार्थेभ्यः वैशिष्ट्यनिष्ठानां श्रेष्ठत्वनिष्ठानाम् अर्थानाम् वस्तूनाम् ॥ १३६ ॥

अर्थ—जहां पहले पहलेसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वस्तुवोंकी उत्तरोत्तर रचना हो तो पंडित लोग उसे एकावली अलंकार कहते हैं ॥ १३६ ॥

देशः समृद्धनगरो नगराणि च सप्तभूमनिलयानि ॥ निलयाः सलीललना ललनाश्चात्यंतकमनीयाः ॥ १३७ ॥

टीका--समृद्धनगरः देशः सप्तभूमनिलयानि नगराणि सलीललना निलयाः अत्यंतकमनीया ललना इत्यन्वयः ॥ सप्तभूमानिलया आवासगृहाणि यत्र अत्रोत्तरोत्तरमर्थस्य वैशिष्ट्यात् एकावलीनामालंकारः ॥ १३७ ॥

अर्थ—देश वही उत्तम है जहां समृद्ध बहुतसे नगर हों और नगर वेही हैं जहां बहुतसे सतमजले मकान हों मकान वही जहां लीलायुक्त स्त्रीजन हों और स्त्रीजन वही जो अत्यंत सुंदर हों यहां उत्तरोत्तर अर्थकी विशिष्टतासे एकावली अलंकार हुवा ॥ १३७ ॥

(भाषा) दोहा—उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हो, सो एकावलि जान । सुगृह वही जित कामिनी, कामिनि सो जित कान ॥ १ ॥

अनुमानालंकार ।

प्रत्यक्षाल्लिंगतो यत्र कालत्रितयवर्त्तिनः ॥ लिंगिनो भवति ज्ञानमनुमानं तदुच्यते ॥ १३८ ॥

टीका--यत्र प्रत्यक्षात् लिंगतः कालत्रितयवर्तिनः लिंगिनः ज्ञानं भवति तत् अनुमानम् उच्यंते इत्यन्वयः ॥ प्रत्यक्षात् लिंगतः इंद्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं तस्मात् परिदृश्यमानचिह्नात् कालत्रितयवर्तिनः अतीतवर्तमानानागतस्य त्रिकालसंबंधिनः अनुमेयस्य वस्तुनः यत्र ज्ञानं भवति तत् अनुमानम् ॥ १३८ ॥

अर्थ--जहां प्रत्यक्ष चिह्नसे त्रिकालवर्ति अदृश्य वस्तुका ज्ञान (बोध) हो तो उसे अनुमान अलंकार कहते हैं ॥ १३८ ॥

नूनं नद्यस्तदाभूवन्नभिषेकाम्भसा प्रभोः॥ अन्यथा कथमेतासु जनः स्नानेन शुध्यति ॥ १३९ ॥

टीका--प्रभोः अभिषेकाम्भसा तदा नूनं नद्यः अभूवन् अन्यथा एतासु स्नानेन जनः कथं शुध्यति इत्यन्वयः ॥ प्रभोः कृष्णस्य जिनस्य वा तदा जन्मकाले अभिषेकांभसा अभिषेकजलेन नूनं निश्चयेन नद्यः अभूवन् नद्यः आसन् अन्यथा नो चेत् तदा एतासु नदीषु स्नानेन जनः मनुष्यः कथं केन प्रकारेण शुध्यति अत्र प्रत्यक्षतः जनशुद्धिरूपालिंगात् गतकालवर्तिनः प्रभोः अभिषेकजन्यजलस्य ज्ञानात् अनुमानालंकारः ॥ १३९ ॥

अर्थ-प्रभु कृष्ण या ऋषभदेवके जन्मकालके अभिषेक स्नान रूप जलसे अवश्य ये नदियां बनी हैं यदि ऐसा नहीं तो इनमें स्नान करके मनुष्य क्यों शुद्ध होजाते हैं यहां प्रत्यक्ष जनशुद्धि रूप चिह्नसे गत प्रभुके अभिषेकका बोध होनेसे अनुमानालंकार हुवा ॥ १३९ ॥

जंभजित्ककुभि ज्योतिर्यथा शुभ्रं वि. जृंभते॥ उदेष्यति तथा मन्ये खलः सखि निशाकरः ॥ १४० ॥ मुखप्रभाबाधितकांतिरस्या दोषाकरः किंकरतां बिभर्ति ॥ तल्लोचनश्रीहृतिसापराधान्यब्जानि नो चेत् किमयं क्षिणोति ॥ १४१ ॥

टीका-हे सखि यथा जंभजित्ककुभि शुभ्रं ज्योतिः विजृंभते तथा मन्ये खलः निशाकरः उदेष्यति इत्यन्वयः ॥ जंभजित् जंभासुरनिहंता इंद्रः तस्य ककुप् दिशा तस्यां शुभ्रं ज्योतिः श्वेतप्रकाशः विजृंभते प्रदीप्यते अत्र पूर्वस्यां दिशि प्रकाशदर्शनरूपवर्तमानचिह्नात् भाविनः निशाकरोदयरूपालिंगिनः ज्ञानात् अनुमानालंकारः ॥ १४० ॥ अस्याः मुखप्रभाबाधितकांतिः दोषाकरः किंकरतां बिभर्ति नो चेत् अयं तल्लोचनश्रीहृतिसापराधानि अब्जानि किम् क्षिणोति इत्यन्वयः ॥ अस्याः कांताया मुखप्रभाभिः

बाधिता निर्जिता कांतिः यस्य तथाभूतः दोषाकरः चंद्रः किंकरतां दासतां बिभर्ति यदि एव नोचेत् तदा अयं दोषाकरः तल्लोचनश्रीह्रतिसापराधानि तस्याः लोचनयोः श्रीः शोभा तस्याः ह्रतिः हरणं तया सापराधानि अपराधसहितानि अब्जानि कमलानि कथं क्षिणोति पीडयतीत्यर्थः--"युक्तं चैतत् दासेन प्रभोः शत्रूणां पीडनम्" अत्र प्रत्यक्षे अब्जपीडनरूपचिह्नात् तदैव दोषाकरस्य किंकरत्वं वर्तमानतया अनुमानालंकारः ॥ १४१ ॥

अर्थ-हे सखि इंद्रदिशा (पूर्व) में ज्योंही श्वेत प्रकाश मालूम देने लगा त्योंही मैंने जाना कि खल चंद्रमा उदय होगा विरहिणी चंद्रमासे पीडित होती हैं इससे खल विशेषण दियाहै और यहां पूर्वदिशामें प्रत्यक्ष प्रकाश दर्शन रूप चिह्नसे आगामी चंद्रोदय के ज्ञान होनेसे भविष्य अनुमानालंकार हुवा ॥ १४० ॥ इस सुंदरीके मुखकी शोभासे हारा हुवा दोषाकर (चंद्रमा) इसका दास होगयाहै क्योंकि जो ऐसा नहीं है तो इसके नेत्रोंकी कांति चुरानेके अपराधी कमलोंको यह क्यों पीडा देताहै (क्योंकि नौकरका कामहै कि मालिकके वैरीको क्लेश देवे) यहां प्रत्यक्षमें कमलोंको पीडा देना चिह्नसे वर्तमानमें ही चंद्रमाका दासत्व बोध होनेसे वर्तमान अनुमानालंकार हुवा ॥ १४१ ॥

(भाषा) दोहा-व्याप्ति रूपता लिंगको, कर प्रत्यक्ष जु ज्ञान। करहि बोध अनुमेयको, ताहि कहत अनुमान ॥ १ ॥ (उदाहरण) निरख वदन छवि होगयो, चांद बापुरो दास। नहिं तो मुख प्रति पख कमल, क्यों नहिं करत हुलास ॥ २ ॥

परिसंख्या ।

यत्र साधारणं किंचिदेकत्र प्रतिपाद्यते ॥
अन्यत्र तन्निवृत्त्यै सा परिसंख्योच्यते बुधैः ॥ १४२ ॥

टीका-यत्र किंचित् साधारणम् "अन्यत्र तन्निवृत्त्यै" एकत्र प्रतिपाद्यते सा बुधैः परिसंख्या उच्यते इत्यन्वयः ॥ यत्र काव्ये (कवित्वे) किंचित् साधारणं वस्तु अन्यत्र निवृत्त्यर्थम् एकत्र प्रतिपाद्यते यद्वस्तु एकत्र एकस्मिन् स्थाने भवति अन्यत्र तन्निवृत्तिः भवति सा परिसंख्या इत्यर्थः ॥ १४२ ॥

अर्थ-जहां कोई साधारण वस्तु एक जगह प्रतिपादन करी जावे तथा और जहगसे उसकी निवृत्ति हो तो पंडित लोग उसे परिसंख्या अलंकार कहते हैं ॥ १४२ ॥

यत्र वायुः परं चौरः पौरसौरभसंपदाम् ॥
युवानस्तत्र राजंत एकनिक्षिप्तभीतयः ॥ १४३ ॥

टीका-यत्र वायुः पौरसौरभसंपदां परं चौरः तत्र युवानः एकनिक्षिप्तभीतयः राजंते इत्यन्वयः ॥ यत्र यस्मिन्नगरे पौरसौरभसंपदां पौराणां प्रासादानां सौरभस्य सौगंध्यस्य या संपत् संपत्तिः तासां चौरः परं वायुरेव नान्यश्चौर इत्यर्थः तत्र पुरे युवानः तरुणाः

एकनिक्षिप्तभीतयः एके धर्मे निक्षिप्ता निहिता भीतिः यैः तथाभूताः युवानः राजंते धर्मस्यैव भयं नान्यस्येत्यर्थः अत्र चौर्यस्य सर्वेभ्यो निवृत्तिं कृत्वा वायौ प्रतिपादनत्वात् परिसंख्यालंकारः ॥ १४३ ॥

अर्थ–जहां (जिसनगरमें) महलों स्थानोंकी सुगंधि रूप संपत्तिका भारी चोर एक वायुही है (और कोई अन्य चोर नहीं) वहांके मनुष्य एक धर्मसेही डरते हुए रहतेहैं सिवाय धर्मके और किसीका डर (भय) नहींहै यहां पर चोरीकी निवृत्ति मनुष्यादिसे करके वायुमें प्रतिपादन करनेसे तथा भीति राजा व्याघ्रादिसे निवर्त करके एक धर्ममें प्रतिपादन करनेसे परिसंख्या अलंकार हुवा ॥ १४३ ॥

(भाषा) दोहा–जहँ साधारण कथन अरु, अन्य निवृत्तिहु होय। एक जगह वर्णनविषे, परिसंख्या कहँ सोय ॥ १ ॥

(उदाहरण-जैसे) जहां एक वायू भुवन, सौरभ संपति चौर। मनुजन को इक धर्म विन, तहां नहीं भय और ॥ २ ॥

प्रश्नोत्तर तथा संकर ।

प्रश्ने यथोत्तरं व्यक्तं गूढं वाप्यथवोभयम् ॥ प्रश्नोत्तरं तथोक्तानां संसर्गं संकरं विदुः ॥ १४४ ॥

टीका–यत्र प्रश्ने व्यक्तं गूढम् अथवा उभयम् उत्तरं (तत्) प्रश्नोत्तरम् तथा उक्तानां संसर्गं संकरं विदुः इत्यन्वयः ॥ व्यक्तं प्रकटरूपेण गूढम् अप्रकटरूपेणेत्यर्थः। अथवा उभयं व्यक्ताव्यक्तम् उत्तरं भवति तत्

प्रश्नोत्तरं नामकमलंकारः तथा च उक्तानां कथितानां संसर्गं संमेलनं तत् संकरं तदाख्यम् अलंकारं विदुः बुधा इति शेषः ॥ १४४ ॥

अर्थ-जहां प्रश्नका प्रघट रूपसे या गूढ (गुप्तरीतिसे) अथवा दोनों प्रकारसे उत्तर दिया जावे तो उसे प्रश्नोत्तर नामक अलंकार कहतेहैं तथा जहां कहे हुए अलंकारोंका संसर्ग अर्थात् संमेलन होताहै तो उसे संकर अलंकार कहतेहैं ॥ १४४ ॥

व्यक्त प्रश्नोत्तरोदाहरण ।

अस्मिन्नपारसंसारसागरे मज्जतां सताम् ॥ किं समालंबनं साधो रागद्वेषपरिक्षयः ॥ १४५ ॥

टीका-हे साधो ! अस्मिन् अपारसंसारसागरे मज्जतां सतां समालंबनं किम् (इति प्रश्ने) रागद्वेषपरिक्षयः (इत्युत्तरम्) इत्यन्वयः ॥ अपारसंसारसागरे पाररहितसंसारसमुद्रे मज्जतां निपततां सतां साधूनां समालंबनम् आश्रयः किम् रागस्य प्रीतेः द्वेषस्य वैरस्य च परिक्षयः अत्र व्यक्तम् उत्तरम् अतः प्रश्नोत्तरालंकारः ॥ १४५ ॥

अर्थ-हे साधो इस अपार संसार समुद्रमें पडते हुए सज्जनोंको समालंबन (आश्रय) क्या है यह प्रश्न हुवा इसका राग द्वेषका परित्याग करना ही आश्रय मात्र है यह प्रघट रूप उत्तर हुवा इससे व्यक्त प्रश्नोत्तर अलंकार हुवा ॥ १४५ ॥

गूढ प्रश्नोत्तरोदाहरण ।

क्व वसंति श्रियो नित्यं भूभृतां वद कोविद ॥ असावतिशयः कोपि यदुक्तमपि नोह्यते ॥ १४६ ॥ किमैभं श्लाघ्यमाख्याति पक्षिणं कः कुतो यशः ॥ गरुडः कीदृशो नित्यं दानवारिविराजितः ॥ १४७ ॥

टीका--हे कोविद वद भूभृतां श्रियः नित्यं क्व वसंति (इति प्रश्ने) असौ इत्युत्तरं यत् उक्तम् अपि न उह्यते स कोपि अतिशयः इत्यन्वयः ॥ भूभृतां नृपाणां श्रियः लक्ष्म्यः नित्यं क्व कुत्र वसंति निवासं कुर्वंति इति प्रश्ने असौ कृपाणे इत्युत्तरं गूढम् । तथा यत् उक्तम् अपि कथितम् अपि न उह्यते न ज्ञायते स कश्चित् आशयः अतिशयः अतिशयगूढः इत्यर्थः। असिः खड्गः (इति श० स्तो०)॥१४६॥ ऐभं किं श्लाघ्यम् आख्याति "दानवारि" कः पक्षिणं (आख्याति) "विः" यशः कुतः "आजितः" नित्यं गरुडः कीदृशः "दानवारिविराजितः" इत्यन्वयः॥ ऐभं किं श्लाघ्यम् आख्यातीति प्रश्ने "दानवारि" इत्युत्तरं इभः हस्ती तत्संबंधि ऐभं किं प्रशंसनीयम् अस्योत्तरं "दानवारि मदजलम्" कः शब्दः पक्षिणम् आख्याति अस्योत्तरं "विः" विशब्दः

पक्षिणमाख्यातीत्युत्तरम्, यशः कुतः अस्योत्तरम् आजितः संग्रामात् यशः संग्रामात् भवतीत्युत्तरम्, गरुडः कीदृशः अस्योत्तरं "दानवारिविराजितः" दानवानाम् असुराणाम् अरिः शत्रुः विष्णुः तेन विराजितः शोभितः अत्र व्यक्ताव्यक्तं प्रश्नोत्तरम् एषा प्रश्नोतरी अंतर्लापिकापि कथ्यते ॥ १४७ ॥

अर्थ-हे पंडित बतावो राजोंकी लक्ष्मी नित्य कहां वसति हैं इस प्रश्नका गूढ उत्तर "असौ" अर्थात् "खड्ग" में यही है और जहां वह कहभी दिया जाय और समझमें नहीं आवे वह अतिशय गूढ होता है असौ का अर्थ खड्गमें यह अतिशय गूढ है क्योंकि प्रघटमें कह देनेपर भी समझमें प्रायः नहीं आता है इसीसे अतिगूढ प्रश्नोत्तरालंकार हुवा ॥ १४६ ॥ हाथीके क्या प्रशंसनीय कहाता है इस प्रश्नका उत्तर हुवा "दानवारि" अर्थात् मदका जल प्रशंसनीय होता है और कौन शब्द पक्षीको बताता है अर्थात् कौन शब्द पक्षी वाचक है इसका उत्तर हुवा "विः" अर्थात् वि शब्द पक्षी वाचक है और यश काहेसे होता है इसका उत्तर हुवा "आजित" अर्थात् सेना संग्रामसे और नित्यगरुड कैसा रहता है इस प्रश्नका उत्तर हुवा समस्त पदसे "दानवारिविराजितः" अर्थात् दानवोंका अरि विष्णु जिस करके विराजित शोभित यहां व्यक्त और गूढ दोनों भांतके प्रश्नोत्तर हैं और इसे अंतर्लापिका भी कहते हैं ॥ १४७ ॥

(भाषा) दोहा-प्रश्नोत्तर जहँ प्रश्नका, उत्तर गूढ अगूढ ।
नाम कह्यो अतिगूढको, समझै तदपि न मूढ ॥ १ ॥

(उदाहरण) अगूढ (प्रघट) प्रश्नोत्तर-कौन सुखी संतोष युत, कौन दुखी बहु काम । मित्र कौन मीठे वचन, अभय कौन हरिधाम ॥ २ ॥

(गूढ प्रश्नोत्तर) रतिसु नवोढा का कहे, कंठ काह शिव लेय।
श्वास कास को का हरे, "नागर" उत्तर देय ॥ ३ ॥ यह दोहा अंतर लापिका भी है ॥

संकर।

बंभंड सुत्ति संपुड मुत्तिअ मणिणो पहा समूह व्व ॥ सिरिवाहडत्ति त्तणतो आसि बुहो तस्स सोमस्स ॥ १४८ ॥

टीका--(अस्य संस्कृतम्) "ब्रह्माण्डशुक्तिसंपुट मौक्तिकमणेः प्रभासमूह इव श्रीवाग्भट इति तनय आसीत् बुधस्तस्य सोमस्य " ब्रह्मांडशुक्तिसंपुटमौक्तिकमणेः सोमस्य तस्य प्रभासमूह इव श्रीवाग्भटः बुधः तनयः आसीत् इत्यन्वयः ॥ ब्रह्मांडम् एव शुक्तिसंपुटं मुक्ताशुक्तेः संपुटम्। इत्यर्थः। तस्य मौक्तिकमणिः मुक्तारत्नं तथाभूतस्य सोमस्य चंद्रगुप्तस्येत्यर्थः प्रभासमूह इव कांतिपुंज इव श्रीवाग्भटः बुधः विद्वान् तनयः पुत्रः आसीत् अत्र बुधः पंडितः चंद्रपुत्रो ग्रहश्च बोध्यः सोमात् बुधस्य जन्म योग्यमेव ब्रह्मांडं शुक्तिसंपुटमौक्तिकमणेरिति रूपकं प्रभासमूह इवेत्युत्प्रेक्षा बुधः विद्वान् चंद्रपुत्रो ग्रहश्चेति श्लेषः श्रीवाग्भट आसीदिति जाति इति चतुर्णां अलंकाराणां संभोगात् संकरालंकारः ॥ १४८ ॥

अर्थ-ब्रह्मांड रूप मोतिया सीपका संपुट उससे पैदा हुए मौक्तिक मणि ऐसे सोम अर्थात सोमदेव जिनके कांति पुंजके समान श्रीवाग्भट नामक बुध उत्पन्न होते भये श्रीवाग्भटाचार्यके पिताका नाम सोम अर्थात् सोमदेव था उनके बुध रूप पांडित या बुध ग्रह रूप श्रीवाग्भट उत्पन्न हुए सोमके बुधको उत्पन्न होना योग्यही है यह श्लेष अलंकार है और ब्रह्मांड रूप सीपीके मुक्तामणि यह रूपकहै और प्रभा समूह इव यह उत्प्रेक्षाहै श्री वाग्भटका बर्णन यह जातिहै इस प्रकार चार अलंकारोंका एकत्र संयोग होनेसे संकर अलंकार हुवा इसी प्रकार और जगह भी जहां दो तीन या अधिक किसी भी अलंकारोंका संयोग हो तो उसे उन्हींके संयोगसे संकर अलंकार समझना चाहिये ॥ १४८॥

(भाषा) दोहा-अलंकार जहँ कइ मिलें, संकर नाम जु होय। ताप हरन को कमलसे, हरिपद अपर न कोय ॥ २ ॥

अचमत्कारिता वा स्यादुक्तांतर्भाव एव वा ॥ अलंक्रियाणामन्यासामनिबंधनिबंधनम् ॥ १४९ ॥

टीका-अन्यासाम् अलंक्रियाणाम् अनिबंधनिबंधनम् अचमत्कारिता वा स्यात् वा उक्तांत्तर्भावः एव इत्यन्वयः ॥ अन्यासाम् असंगतिप्रहर्षणादीनाम् अलंक्रियाणाम् अनिबंधनिबंधनम् अकथनस्य कारणं वा अचमत्कारिता चमत्काररहित्यं स्यात् अथवा उक्तांतर्भावः उक्तेषु अंतर्भावः स्यादित्यर्थः। चमत्कारिता एव अलंकारस्य मुख्यत्वेन हेतुरितिभावः (निबंधनं कारणमिति शब्दस्तोम०) ॥ १४९ ॥

अर्थ—और जो असंगति प्रहर्षणादिक अलंकारोंके नहीं वर्णन करनेका कारण है सो या तो विशेषकर चमत्कारका न होना है या जो यहां वर्णन करे गये हैं उन्हींमें बिना कहे हुवोंका अंतर्भाव हो सक्ता है और खासकर चमत्कारही अलंकारका मुख्य हेतु है (और शब्द अथवा अर्थके चमत्कारके प्रभावसे अलंकारोंके असंख्य भेद हो सक्ते हैं) ॥ १४९ ॥

अथ रीतिवर्णन ।

रीतिद्वारमाह ।

द्वित्रिपदा पांचाली लाटीया पंच सप्त वा यावत् ॥ शब्दाः समासवंतो भवति यथा संक्ति गौडीया ॥ १५० ॥

टीका--द्वित्रिपदाः पांचाली (यत्र) पंच सप्त वा शब्दाः यावत् समासवंतः (सा) लाटीया (यत्र) यथाशक्ति (शब्दाः समासवंतः) सा गौडीया भवति इत्यन्वयः ॥ पदानां संघटनाविशेषः रीतिः यत्र द्वित्रिपदानि समासवंति सा पांचाली रीतिः यत्र पंच सप्त वा शब्दाः समासवंतः सा लाटीया रीतिः यत्र च यथा शक्ति शब्दाः समासवंतः स्युः सा गौडीया रीतिः इत्यर्थः ॥ देशभेदेन रीतिभेदा बहवः संति तथा चोक्तं (प्रथमपदा वत्सोमी त्रिपदसमा च मागधी भवति । उभयोरपि वैदर्भी मुहुर्मुहुर्भाषणं कुरुते) अन्यच्च

(लाटी हास्यरसे प्रयोगनिपुणै रीतिः प्रबंधे कृता पांचाली करुणा भयानकरसे शांते रसे मागधी॥ गौडी वीररसे च रौद्रजरसे वच्छोमदेशोद्भवा बीभत्साद्भुतयो-र्विदर्भविषया शृंगारभूते रसे) इति (श्लोकोयं प्रक्षिप्तो दृश्यते) बहुषु रीतिभेदेष्वपि मुख्यत्वेन द्वे एव रीती गौडीया वैदर्भी चेति ॥ १५० ॥

अर्थ-जहां दो तीन पद समस्त हां वह पांचाली रीति है और जहां पाँच सात तक शब्द समस्त हों वह लाटीया रीति होतीहै और जिसमें यथाशक्ति बहुत शब्द समासवाले हों उसे गौडीया रीति कहतेहें पदोंकी संघटनाविशेषका नाम रीति होता हे सो रीति देशोंके भेदसे अनेकहैं जैसे मागधी लाटी पांचाली गौडी वैदर्भी आदि परंच मुख्यतासे यहां दो ही रीतियां लिखते हैं एक गौडी दूसरी वैदर्भी (मागधी आदिके लक्षण और उदाहरण और ग्रंथोंसे देखें (यह श्लोक भी क्षेपक मालूम होताहै)॥१५०॥

द्वे एव रीती गौडीया वैदर्भी चेति सांतरे ॥ एका भूयः समासा स्यादसमस्त पदा परा ॥ १५१ ॥

टीका-गौडीया वैदर्भी च इति सांतरे द्वे एव रीती एका भूयः समासा स्यात् अपरा असमस्तपदा इत्य-न्वयः॥एका गौडीया भूयः समासा समासबहुला स्यात् अपरा वैदर्भी च असमस्तपदा समस्तपदवर्जिता इत्यर्थः साहित्यदर्पणे तु रीतिश्चतुर्धा प्रोक्ता यथा (पद संघ-

टना रीतिरंगसंख्याविशेषवत् । उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा ॥ वैदर्भी चाथ गौडी च पांचाली लाटिका तथा । माधुर्य्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका ॥ अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते । ओजप्रकाशकैर्वर्णैर्बंध आडंबरः पुनः ॥ समासबहुला गौडी वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः । समस्तपंचषपदो बंधः पांचालिका मता॥लाटी तु रीतिर्वैदर्भी पांचाल्योरंतरा स्थिता ।) इति ॥ १५१ ॥

अर्थ–ऊपर लिख आये हैं कि यहां मुख्यता करके दो रीतिही लिखते हैं एक गौड़ी दूसरी वैदर्भी इनमेंसे एक अर्थात् गौडी बडे समासांतपदोंवाली होती है और जिसमें विना समासके पदहों उसे वैदर्भी कहते हैं साहित्यदर्पणमें ४ रीतियां लिखी हैं वैदर्भी, गौडी, पांचाली, और लाटी यहांपर वैदर्भी और गौडी दोहीके उदाहरण लिखे हैं ॥ १५१ ॥

गौडीका उदाहरण ।

दर्पोत्पाटिततुंगपर्वतशतग्रावप्रपाताहति क्रूराक्रंददतुच्छकच्छपकुलक्रेंकारघोरीकृतः ॥ विश्वं वर्वरवध्यमानपयसः सिप्रापगायाः स्फुरन्नाक्रामत्ययमक्रमेण बहुलः कल्लोलकोलाहलः ॥ १५२ ॥

टीका--वर्वरवध्यमानपयसः सिप्रापगायाः अयं बहुलः कल्लोलकोलाहलः अक्रमेण स्फुरन् विश्वम् आक्रामति (कीदृशः कल्लोलकोलाहलः) दर्पोत्पाटि-ततुंगपर्वतशतग्रावप्रपाताहतिक्रूराक्रंददतुच्छकच्छपकुलक्रेंकारघोरीकृतः इत्यन्वयः ॥ वर्वरो नाम राक्षसः अथवा वर्वरदेशाधिपः तेन वध्यमानं पयः यस्याः तथाभूतायाः सिप्रापगायाः सिप्रानद्याः बहुलः प्रभूतः अयं कल्लोलकोलाहलः तरंगाणां कलकलशब्दः अक्रमेण स्फुरन् सन् क्रमं विहाय प्रसरन् सन् विश्वं संसारम् आक्रामति आक्रमणं करोतीत्यर्थः।स कीदृशः।दर्पेण उत्पाटिताः तुंगाः उन्नता ये पर्वताः तेषां शतस्य ग्रावाणः पाषाणाः तेषां प्रपातेन या आहतिः आघातः तथा क्रूरम् उत्कटं यथा तथा आक्रंदंतः चीत्कारं कुर्वतो ये अतुच्छाः महांतः कच्छपाः तेषां कुलस्य समूहस्य क्रोंकारेण शब्दविशेषेण घोरीकृतः रौद्रीकृतः इत्यर्थः अत्र समासबाहुल्यात् गौडीरीतिः ॥ १५२ ॥

अर्थ--वर्वर राक्षस या वर्वरदेशाधिपतिने जब सिप्रा नदीका जल बंध करदिया (रोकदिया) समुद्रमें न जाने दिया (तब) उसके चढावसे यह तरंगोंका कोलाहल (शब्द) क्रमरहित फैलकर देशपर आक्रमण करने लगा (कैसा तरंगोंका कोलाहल है) कि दर्प (वेग या चढाव) से उखाडे हैं ऊँचे ऊँचे सैंकडों पहाड जिसने जिससे पडने वाले बडे बडे पाषाणोंके आघातसे बहुत आक्रंदित हुए चीत्कार करते हुए जो बहुत बडे

कछवे उनके समूहका जो केंकार शब्द जिस करके घोर होरहाहै वह तरंगोंका शब्द यह समासकी विशेषतासे गौडी रीति हुई॥१५२॥

वैदर्भीका उदाहरण।

विप्राः प्रकृत्यैव भवंति लोला लोकोक्तिरेषा न मृषा कदाचित् ॥ यच्चुंब्यमानां मधुपैर्द्विजेशः श्लिष्यत्यसौ कैरविणीं कराग्रैः ॥ १५३ ॥

टीका–विप्राः प्रकृत्या एव लोलाः भवंति एषा लोकोक्तिः कदाचित् मृषा न यत् असौ द्विजेशः मधुपैः चुंब्यमानां कैरविणीं कराग्रैः श्लिष्यति इत्यन्वयः॥ विप्राः ब्राह्मणाः प्रकृत्या स्वभावेनैव लोलाः चपला भवंति इति लोकोक्तिः जनप्रवादः कदाचित् अपि मृषा मिथ्या न यत् यतः असौ द्विजेशः द्विजराजश्चंद्रः द्विजश्रेष्ठश्च मधुपैः भ्रमरैः मद्यपैश्च चुंब्यमानां कैरविणीं कुमुदिनीं निषादपत्नीं वा कराग्रैः किरणाग्रैः हस्ताग्रैः वा श्लिष्यति आलिंगनं करोतीत्यर्थः (कैरवः निषादः के जले रवते गच्छतीति केरवः रु गतौ धातोः)॥१५३॥

अर्थ–विप्र (ब्राह्मण स्वभावसेही लोल चपल होतेहैं यह लोकोक्ति कभी मिथ्या नहीं है इस कारणसे कि द्विजेश चंद्रमा भी भ्रमरोंसे चुंबित कमोदनीको किरणोंसे आलिंगन करता है अथवा द्विजेश (श्रेष्ठ ब्राह्मण) भी कोई मद्यपोंसे चुंबित कैरविणी निषादपत्नीको कराग्रों हाथोंकी अंगुलियोंसे आलिंगन करता है यहां

द्विजेश मधुप कैरविणी और कराग्र इन पदोंके श्लेषसे दो दो अर्थ हो जाते हैं यहां समासांत पद प्रायः न होनेसे वैदर्भी रीति है ॥ १५३ ॥

अलंकारकी भांत हिंदी भाषामें रीतियोंका वर्णन संस्कृतके अनुसार नहीं होसक्ता इसलिये दोहोंमें रीतियोंका वर्णन नहींकिया॥

अर्थेन येनातिचमत्करोति प्रायः कवित्वं कृतिनां मनस्सु । अलंक्रियात्वेन स एव तस्मिन्नभ्यूह्यतां प्राज्ञ दिशानयैव ॥ १५४ ॥

टीका--हे प्राज्ञ कवित्वं प्रायः येन अर्थेन कृतिनां मनस्सु अतिचमत्करोति तस्मिन् स एव (अर्थः) अलंक्रियात्वेन अनया एव दिशा अभ्यूह्यताम् इत्यन्वयः ॥ कवित्वं काव्यं कृतिनां पंडितानां मनस्सु अतिचमत्करोति अतिचमत्कारं करोति तस्मिन् कवित्वे स एव अर्थः अलंक्रियात्वेन अलंकारत्वेन अनया एव दिशा अनया एव मदुक्तया संकलनया अभ्यूह्यताम् विचार्यताम् (प्राज्ञ इत्यत्र दत्त इति वा केषुचित् पुस्तकेषु पाठांतरम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे प्राज्ञ कवित्व (काव्य) प्रायः जिस अर्थसे पंडितोंके मनमें अत्यंत चमत्कारी मालूम हो उस कवित्वमें वही अर्थ अलंकारता करके इस मेरी वर्णन करी हुई संकलना (रीति) से ही विचार लेना चाहिये ॥ १५४ ॥

इति वाग्भटालंकारे चतुर्थपरिच्छेदः ।

अथ पंचमपरिच्छेदः।

साधुपाकेप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं यथा। तथैव नीरसं काव्यमिति ब्रूमो रसानिह ॥ १ ॥

टीका--यथा साधुपाके अपि निर्लवणं भोज्यम् अनास्वाद्यं तथा एव नीरसं काव्यम्, इति इह रसान् ब्रूमः इत्यन्वयः ॥ साधुपाके सुष्ठुपाके नीरसं रसवर्जितम् ॥ १ ॥

अर्थ--जैसे अच्छे पके हुए भी विना लवणके भोजन सुस्वाद नहीं लगते उसी प्रकार रस वर्जित काव्यभी हृदय प्रिय नहीं होते हैं इसी कारणसे अब हम रसोंका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः। आरोप्यमाण उत्कर्षं स्थायी भावः स्मृतो रसः ॥ २ ॥

टीका--विभावैः सात्त्विकैः व्यभिचारिभिः अनुभावैश्च उत्कर्षम् आरोप्यमाणः स्थायी भावः रसः स्मृतः इत्यन्वयः ॥ विशेषेण भावयंति उत्पादयंति रसम् इति विभावाः स्त्रीवसंतादयः विभावो रसकारणम् इत्यर्थः ॥ अनुभूयते लक्ष्यते रसः यैः इति अनुभावाः कंपप्रस्वेदप्रलापमोहादयः रसोत्पत्तौ सत्यां ये भावाः

जायंते ते अनुभावा ज्ञातव्या इति रजस्तमोभ्याम् अस्पृष्टमनोवृत्तिविशेषः सत्त्वं तत्संभूताःविकृतिविशेषाः सात्त्विकाः उक्तं च साहित्यदर्पणे "रजस्तमोभ्याम-स्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते ।विकाराः सत्त्वसंभूताः सा-त्त्विकाः परिकीर्तिताः॥स्तंभःस्वेदोथ रोमांचः स्वरभंगो-ऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥ सत्त्वमात्रोद्भवत्वात्ते भिन्ना अप्यनुभावतः"। इति सत्त्व-मात्रोद्भवात् केवलसत्त्वोद्भवात्ते अनुभावतः भिन्नाः गोबलीवर्दन्यायेन यथा गामानयेत्युक्ते बलीवर्दस्य च गोत्वात्तदानयने निष्यन्नेऽपि वलीवर्दग्रहणं तथा अनु-भावरूपत्वेऽपि सात्त्विकानां विशेषग्रहणमिति भावः "व्यभिचारिणो यथा" दर्पणे--विशेषादाभिमुख्येन चरंतो व्यभिचारिणः । स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रय-स्त्रिंशच्च तद्भिदाः॥स्थायिनि रत्यादौ उन्मग्नाः कदाचित उद्रिक्ता निर्मग्नाः कदाचित् तिरोहिताः ये धर्माः ते व्यभिचारिणः (" निर्वेदावेगदैन्यश्रममदजडता औ-ग्र्यमोहौ विबोधः स्वप्नापस्मारगर्वामरणमलसतामर्ष-निद्रावहित्थाः॥ औत्सुक्योन्मादशंकास्मृतिमतिसहिता व्याधिसत्रासलज्जाः हर्षासूयाविषादाः सधृतिचप-लताग्लानिचिंतावितर्काः॥ " इति) स्थायीभावः दर्पणे--अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः। आ-

स्वादांकुरकंदोसौ भावः स्थायीति संमतः॥ तस्य भेदाः क्रमेण यथा। रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोपि च॥ यथा। शृंगारस्य रतिः हास्यस्य हासः करुणायाः शोकः रौद्रस्य क्रोधः वीरस्य उत्साहः भयानकस्य भयं वीभत्सस्य जुगुप्सा अद्भुतस्य विस्मयः शांतस्य शमः स्थायी भाव इति॥ २॥

अर्थ–विभाव अर्थात् रसके उत्पत्तिके कारण जैसे शृंगार रस के कारण स्त्री वसंत चंद्रिकादिकहैं और सात्त्विक और व्यभिचारी अनुभाव अर्थात् जिनसे रसका प्रभाव प्रतीत होवे जैसे कंप, प्रस्वेद, प्रलाप, मोह आदि इनमेंसे रजोगुण और तमो गुण से पृथक् जो मनकी वृत्ति विशेष होती है उन्हें सात्त्विक अनुभाव कहते हैं देखो साहित्यदर्पण यथा। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप वर्ण विपरीतहोना अश्रुपात और प्रलय (लयहोजाना तन्मय होजाना) इस प्रकार ये आठ सात्त्विक अनुभाव कहलातेहैं यद्यपि ये सात्त्विक अनुभाव हीहैं तौभी सत्त्व मात्रसे उत्पन्न होनेसे इन में कुछ भिन्नता मानतेहैं और व्यभिचारी उन्हें कहतेहैं जो स्थायी रसोंके ऐसे अनुभावहों जो कभी उत्पन्नहों कभी प्रबलहों और शांत होजावें जैसे निर्वेद,आवेग, दैन्य, श्रम,मद,जडता, उग्रता, मोह,विबोध,स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मृत्यु, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, और लज्जा,हर्ष,असूया, विषाद,धृति,चपलता,ग्लानि चिंता और तर्क ये ३३ व्यभिचारि साहित्यदर्पणमें लिखे हैं (इनमेंसे मरण की जगह कोई अमरण अर्थात् मूर्च्छा ऐसा मानते हैं) और

साहित्यदर्पणमें स्थायी भावके विषयमें यह लिखा है कि अविरुद्ध या विरुद्ध जिसको छिपा न सके वह उस रसका स्थायी भाव होता है मानो आस्वादके अंकुरका यह मूल है जैसे शृंगार रसका स्थायी भाव रति हास्य रसका हँसपडना करुणाका शोक रौद्रका क्रोध वीरका उत्साह अर्थात् उमंग भयानकका भय (डर जाना) बीभत्सका जुगुप्सा अद्भुतका विस्मय और शांतरसका शम स्थायी भाव होताहै ॥ २ ॥

शृंगारवीरकरुणाहास्याद्भुतभयानकाः ॥
रौद्रबीभत्सशांताश्च नवैते कथिता बुधैः ॥ ३ ॥

टीका—शृंगारादयः एते नव (रसाः) बुधैः कथिताः (यथा) शृंगारवीरकरुणाहास्याद्भुतभयानकाः च रौद्रबीभत्सशांताः इत्यन्वयः॥अत्र प्रथमं शृंगारस्य सर्वप्राणिनामतीव मनोज्ञत्वात् उपादानं शांतस्य सर्वेषामवसानत्वात् अंते समुपादानम् एभ्योतिरिक्तःदशमरसो वात्सल्यनामापि चास्ति प्रत्यक्षचमत्कारित्वात् उक्तं च साहित्यदर्पणे-वत्सलश्च रस इति तेन स दशमो रसः "स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालंबनं मतम्॥उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्योदयादयः । आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुंबनमीक्षणम्॥पुलकानंदवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः॥ संचारिणोऽनिष्टशंका हर्षगर्वादयो मताः इति ॥ ३ ॥"

अर्थ—ये शृंगार आदिक रस ९ हैं १ शृंगार,२ वीर, ३करुण, ४ हास्य, ५अद्भुत, ६ भयानक, ७ रौद्र, ८ वीभत्स, ९शांत इनके सिवाय दशवाँ रस वात्सल्य भी मानतेहैं क्योंकि उसका प्रत्यक्ष चमत्कार है साहित्यदर्पणमें लिखाहै कि स्फुट चमत्कारी होनेसे दशवां वत्सल रस भीहै इस वात्सल्य रसका स्थायी भाव स्नेह है (जो प्राणी मात्रमें अनुभाव उत्पन्न करताहै) पुत्रादिके आलंबन विभाव हैं और पुत्रादिकी चेष्टा विद्या शौर्य आदिक उद्दीपन हैं और उनका आलिंगन अंगस्पर्श (प्यारकरना) शिरचूमना प्रेमसे देखना रोमांच होजाना आनंद और प्रेमाश्रुपातादिक उसके अनुभाव हैं और अनिष्टशंका हर्ष गर्वादिक संचारी भाव होते हैं इससे अवश्य वात्सल्य रस दशवां है यहां सबप्राणियोंका अति प्रिय होनेसे शृंगार रस प्रथम रक्खा और शांत रस सबका अवसान रूप होनेसे सबके अंतमें वर्णन किया गया।

(भाषा) दोहा—साधुपके भोजन यथा, विन लवणादि न स्वाद। तैसे विन रस काव्य सब, ताते कहु रस बाद ॥ १ ॥ नव रस हैं शृंगार अरु, वीर जु करुणा हास। अद्भुत भय बीभत्स सुन, रौद्र शांत परकाश ॥ २ ॥ दशवां रस वात्सल्यहै, पुत्रादिकपर प्रीति, विभाव अरु अनुभावते, हो प्रत्यक्ष प्रतीति ॥ ३ ॥

जायापत्योर्मिथो रत्यां वृत्तिः शृंगार उच्यते ॥ संयोगो विप्रलंभश्चेत्येष तु द्विविधो मतः ॥ ४ ॥ तौ तयोर्भवतो वाच्यौ बुधैर्युक्तवियुक्तयोः ॥ प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च पुनरेष द्विधा मतः ॥ ५ ॥

टीका-अस्यान्वयस्तु सरलः जायापत्योः स्त्रीपुरुषयोः मिथः अन्योन्यं मिलित्वा च रत्यां सुरते वृत्तिः स एव शृंगाररसः उच्यते स एष तु शृंगारः द्विविधः मतः संयोगः विप्रलंभश्च संयोगः संयुज्येते स्त्रीपुरुषौ यत्र इति संयोगः विप्रलंभ्येते वंच्येते केनचित् कारणेन संभोगात् यत्र स विप्रलंभः ॥ ४ ॥ तौ (संयोगविप्रलंभौ) तयोः (जायापत्योः) युक्तवियुक्तयोः वाच्यौ भवतः च पुनः एष प्रच्छन्नः च प्रकाशः बुधैः द्विधा मतः (इत्यन्वयः) ॥ युक्तयोः मिलितयोः तयोः संयोगः संभोगः वियुक्तयोः विरहितयोः पृथक् भूतयोः तयोः विप्रलंभः इत्यर्थः पुनश्च स द्विविधः प्रच्छन्नः गुप्तरूपेण वर्तते प्रकाशः प्रकटतया वर्तते इत्यर्थः अस्य शृंगाररसस्य श्यामवर्णः विष्णुर्देवता तथाचोक्तं साहित्यदर्पणे (शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः । उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार उच्यते ॥ १ ॥ परोढां वर्जयित्वात्र वेश्यां चाननुरागिणीम् ॥ आलंबनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ॥ २ ॥ चंद्रचंदनरोलंबरुताद्युद्दीपनं मतम् ॥ भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनभावः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥ त्यक्तौग्र्यरणालस्यजुगुप्साव्यभिचारिणः॥ स्थायी भावो रतिः श्यामवर्णोयं विष्णुदैवतः) इति ॥ ५ ॥

अर्थ–स्त्री पुरुषोंकी परस्पर जो रति (रमण) में वृत्ति (प्रवृत्ति) हो उसे शृंगार रस कहते हैं वह शृंगार रस विद्वानोंने २ प्रकारका कहा है (१) संयोग (या संभोग) दूसरा विप्रलंभ (जिसमें स्त्रीपुरुषोंके परस्परमें मिलकर रमणादि हो वह संयोग है और जहां किसी भी कारणसे उनके संयोगमें क्षति या विलंब या विरह या वियोग हो उसे विप्रलंभ कहते हैं ॥४॥ वह रस स्त्री पुरुषोंकी संयुक्तिसे संयोग और वियुक्ति वियोगसे विप्रलंभ कहाता है फिर वह भी दो प्रकारका होता है एक प्रच्छन्न अर्थात् गुप्त दूसरा प्रगट साहित्यदर्पणमें विस्तारसे यों लिखा है कि शृंग नाम कामदेवके उद्भेदका है और जिसमें कामके उद्वेगका आगम हो उसे शृंगार कहते हैं परोढा (परकीया) और वेश्या और विना प्रेमवतीको छोडकर जो रमणी स्त्री है वह इसका आलंबन विभाग है और अनुकूल दक्षिण आदि पुरुष नायक हैं चंद्र चंदन भ्रमरादिका शब्द ये उद्दीपन हैं और भ्रूविक्षेप कटाक्ष आदि अनुभाव हैं और उग्रता मरण आलस्य जुगुप्सा इन्हें छोड़कर शेष व्यभिचारी हैं और रतिस्थायी भाव है वर्ण श्याम है विष्णु इसका देवता है ॥ ५ ॥

(भाषा) दोहा–कांत कामिनी दुउनकी, वृत्ति सुरतिमें होय। ताहि कहें शृंगार रस, भोग वियोग सुदोय ॥ १ ॥ भोग कहे संयोगको, विरह वियोग विचार। पुनि प्रच्छन्न प्रकाशते, चार भाँत शृंगार ॥ २ ॥

नायक लक्षण।

रूपसौभाग्यसंपन्नः कुलीनः कुशलो युवा ॥ अनुद्धतः मूनृतगीः ख्यातो नेतात्र सद्गुणः ॥ ६ ॥

टीका-अत्र रूपसौभाग्यसंपन्नः कुलीनः कुशलः अनुद्धतः सूनृतगीः सद्गुणः युवा नेता ख्यातः इत्यन्वयः ॥ अत्र शृंगारे अनुद्धतः औद्धत्यरहितः सूनृतगीः सत्यमधुरवादी सद्गुणः श्रेष्ठगुणसंपन्नःनेता नायकः॥६॥

अर्थ-यहां शृंगार रसमें रूप सौभाग्य युक्त कुलीन चतुर और जो उद्धत न हो सत्य और मधुर भाषी जिसमें क्षमादि श्रेष्ठ गुण हों ऐसा तरुण पुरुष नायक कहलाता है ॥ ६ ॥

नायकभेदाः ।

अयं च विबुधैरुक्तोऽनुकूलो दक्षिणः शठः॥धृष्टश्चेति चतुर्थः स्यान्नायकाः स्युश्चतुर्विधाः ॥ ७ ॥

टीका--अयं च विबुधैः अनुकूलः दक्षिणः शठः उक्तः च चतुर्थः धृष्टः स्यात् इति नायकाः चतुर्विधाः स्युः इत्यन्वयः ॥ अयं नायकः विबुधैः साहित्यपंडितैः ॥ ७ ॥

अर्थ-यह नायक साहित्य शास्त्रके ज्ञाता पंडितोंने चार प्रकारका कहा है अनुकूल, दक्षिण, शठ और चौथा धृष्ट इस भांति नायकके चार भेद कहे हैं ॥ ७ ॥

(श्लो० ७) धृष्टश्चेति चतुर्धा स्यान्नायिकाः स्युश्चतुर्विधा इति वा पाठांतरः तत्र तु विबुधैः अयं नायकः चतुर्धा उक्तः स्यात् अनुकूलः दक्षिणः शठः धृष्टश्च इति च नायिका अपि चतुर्धा स्युः अनूढा, स्वकीया, परकीया, सामान्या इति वक्ष्यमाणभेदादित्यर्थः ।

(अनुकूल और दक्षिणके ल०)

नीलीरागोनुरक्तः स्यादनन्यरमणीरतः ॥ दक्षिणश्चान्यचित्तोपि यः स्यादविकृतः स्त्रियाम् ॥ ८ ॥

टीका--अनन्यरमणीरतः नीलीरागः अनुरक्तः स्यात् । च प्रदक्षिणः अन्यचित्तः अपि स्त्रियाम् अविकृतः स्यात् (इत्यन्वयः) ॥ अनन्यरमणीरतः न अन्यरमणीरतः सर्वथा परांगनापराङ्मुख इत्यर्थः नीलीरागः नीलीवत् परिपक्वः रागः अनुरागः यस्य स स्वांगनायां परिपक्वानुरागवानित्यर्थः दक्षिणस्तु अन्यचित्तः अपि अन्यवनितायां चित्तं यस्य स तथाभूतोऽपि स्त्रियां विकृतः न स्यात् ॥ ८ ॥

अर्थ-जो अन्य स्त्रियोंमें प्रेम नहीं रक्खे अपनी स्वकीया स्त्रीहीमें परिपक्व प्रेम रक्खे वह अनुरक्त अर्थात् अनुकूल नायक कहलाता है। और जो अन्य स्त्रियोंमें चित्त रखकर भी स्त्रीसे विकृत नहो अर्थात् बिगाड न करे (सर्वत्र यथा बुद्धि प्रेम व्यवहार रक्खे) उसे दक्षिण नायक कहते हैं ॥ ८ ॥

प्रियं वक्त्यप्रियं तस्याः कुर्वन् योऽविकृतः शठः ॥ धृष्टो ज्ञातापराधोऽपि न विलक्ष्योऽवमानितः ॥ ९ ॥

टीका--यः तस्याः अप्रियं कुर्वन् अविकृतः सन् प्रियं वक्ति (स) शठः ज्ञातापराधः अपि अवमानितः न विलक्षः (स) धृष्टः इत्यन्वयः ॥ तस्याः कांतायाः अप्रियं कुर्वन् अपि अविकृतः विकाररहितो यथा तथा प्रियं वाक्यं वक्ति स शठनायकः । यश्च ज्ञातापराधः अवमानितः तिरस्कृतः अपि न विलक्षः न लज्जितो भवति स धृष्टः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो स्त्रीका अप्रिय कार्य करके चित्तमें विना विकार लाये (सादे पनसे ही) प्रिय बोले प्यार प्यारकी बातें बनावे उसे शठ नायक कहतेहैं और जो अपने किये हुए अपराधको जान कर और स्त्रीसे तिरस्कार किये जाने पर भी लज्जित न हो उसे धृष्ट नायक कहतेहैं (साहित्यके ग्रंथोंमें इनके भेद धीरउदात्त, धीरउद्धत, धीरललित, धीरप्रशांत आदिभी लिखेहैं जिन्हें ग्रंथ बाहुल्य भयसे इस ग्रंथमें ग्रंथकारने नहीं लिखा) ॥ ९ ॥

(भाषा) दोहा-नायक रस शृंगारको, पुरुष युवा सुज्ञान । युवति सुंदरी कामिनी, ताहि नायिका जान ॥ १ ॥ नायकके साहित्यमें, भेद बताये चार। सुअनुकूल दक्षिण शठहु, धृष्ट लेह निर्धार ॥ २॥ परनारी रतिसे विमुख, सो अनुकूल बखान । दक्षिण परतिय चित दिये, तिय प्रिय परम सयान ॥ ३ ॥ कर अप्रिय विन विकृतिके, शठ बोले प्रिय बोल । नाहिं लाजे अपराधयुत, धृष्ट तिरस्कृत लोल ॥ ४ ॥

नायिका वर्णन ।

अनूढा च स्वकीया च परकीया पणांगना॥

त्रिवर्गिणः स्वकीया स्यादन्या केवलकामिनः॥ १०॥

टीका--(अन्वयस्तु सरलः) अनूढा अविवाहिता स्वकीया स्वस्य विवाहिता स्त्री परकीया परस्त्री पणांगना पण्यांगना सानान्यवनिता वेश्या इत्यर्थः एवं नायिकाः चतुर्विधाः तासु त्रिवर्गिणः धर्मकामार्थिनः पुरुषस्य स्वकीया एव स्त्री स्यात् अन्या परकीया सामान्या च केवलकामिनः कामिजनस्यैवेत्यर्थः॥ १०॥

अर्थ--अनूढा अर्थात् विना ब्याही नवयौवना, दूसरे स्वकीया, अपनी विवाहिता स्त्री, तीसरे परकीया, पराई स्त्री,परनारी, चौथे पणांगना बाजारू स्त्री अर्थात् वेश्या, इस प्रकार नायिका चार प्रकारकी होतीहैं इनमेंसे त्रिवर्ग धर्म, काम और अर्थके चाहने वालोंके लिये केवल स्वकीया अपनी विवाहिता स्त्री ही होती है और अन्य परकीया वेश्या आदि केवल कामियोंके ही लियेहैं १०

(भाषा) दोहा--होत नायिका चार विध, प्रथम अनूढा जान। स्वीया परकीया तथा, गणका और बखान॥ १॥ धर्म अर्थ अरु काममें, सुखद सुकीया नार। काम हेत् अपयश सहित, गणका अरु परनार॥ २॥

अनूढा लक्षण।

अनुरक्तानुरक्तेन स्वयं या स्वीकृता भवेत्॥ सानूढेति यथा राज्ञो दुष्मंतस्य शकुंतला॥ ११॥

टीका-या अनुरक्ता स्वयम् अनुरक्तेन स्वीकृता भवेत् सा अनूढा इति यथा दुष्मंतस्य राज्ञः शकुंतला इत्यन्वयः ॥ अनुरक्ता अनुरागिणी अनुरक्तेन अनुरागयुक्तेन नायकेन स्वयं स्वेच्छयैव स्वीकृता गृहीता अथवा यस्यामपरिणीतायां कस्यचित्पुरुषस्यानुरागः साप्यनूढा सा कन्यकापि कथ्यते उक्तं च साहित्यदर्पणे (कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना इति तदुदाहरणं रसमंजर्यां यथा "किंचित्कुंचितहारयष्टितरलभ्रूवल्लिसाचिस्मितं प्रांतभ्रांतविलोचनद्युतिभुजापर्यस्तकर्णोत्पलम्। अंगुल्यास्फुरदंगुलीयकरुचा गंडस्य कंडूयनं कुर्वाणा नृपकन्यका सुकृतिनं सव्याजमालोकते ॥" इति ॥ ११ ॥

अर्थ-जो विना विवाही नवोढा कन्या अनुरागयुक्त होकर अनुराग युक्त पुरुषसे स्वयं ग्रहण की जाय तो उसे अनूढा कहते हैं जैसे राजा दुष्मंतके शकुंतला अथवा जो नवयौवना कन्या किसी पुरुषमें अनुराग प्रगट करे वहभी अनूढा कहातीहै उसे कन्यका भी कहतेहैं ॥ ११ ॥

(भाषा) दोहा-अति सुंदर नवयौवना, हुवा न होय विवाह । ताहि अनूढा कहत जो, करे पुरुषकी चाह ॥ १ ॥(उदाहरण) मात अम्बिके भगवती, मैं नित पूजूं तोय । जैसो मम सखिको पती, वैसो दीज्यो मोय ॥ २ ॥

स्वकीया।

देवतागुरुसाक्ष्येण स्वीकृता स्वीयनायिका ॥ क्षमावत्यतिगंभीरप्रकृतिः सच्चरित्रभृत् ॥ १२ ॥

टीका-क्षमावती अतिगंभीरप्रकृतिः सच्चरित्रभृत् देवतागुरुसाक्ष्येण (या) स्वीकृता (सा) स्वीयनायिका (भवतीति शेषेणान्वयः) ॥ देवतानां गुरुजनानां साक्ष्येण सान्निध्येन स्वीकृता अंगीकृता स्वीयनायिका स्वकीया भवतीत्यर्थः (उक्तं च साहित्यदर्पणे) विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया॥ कथिता सापि त्रिविधा मुग्धा, मध्या, प्रगल्भेति ॥ १ ॥ स्वकीयोदाहरणं रसमंजर्य्यां यथा "गतागतकुतूहलं नयनयोरपांगावधि स्मितं कुलनतभ्रुवामधुर एव विश्राम्यति । वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति" ॥ २ ॥ इति तत्र अंकुरितयौवना लज्जावती मुग्धा समानलज्जामदना मध्या पतिमात्रकेलिकलापकोविदा प्रगल्भा इति रसमंजर्य्यां तदुदाहरणानि च मुग्धाया यथा "आज्ञप्तं किल कामदेवधरणीपालेन काले शुभे वस्तुं वास्तुविधिं विधास्यति तनौ तारुण्यमेणीदृशः॥ दृष्ट्वाखंजन-

चातुरी मुखरुचा सौधाधरी माधुरी वाचा किं च सुधा-समुद्रलहरीलावण्यमातन्यते" ॥ ३ ॥ मध्यायाः यथा "स्वापे प्रियाननविलोकनहानिरेव स्वापच्युतौ प्रियकरग्रहणप्रसंगः ॥ इत्थं सरोरुहमुखी परिचिंतयंती स्वापं विधातुमपहातुमपि प्रपेदे" ॥ ४ ॥ प्रगल्भाया यथा "आश्लिष्य स्तनमाकलय्य वदनं संश्लिष्य कंठस्थलीं निष्पीडयाधरबिंबमंबरमपाकृष्य व्युदस्यालकम् ॥ देवस्यांबुजिनीपतेः समुदयं जिज्ञासमाने प्रिये वामाक्षी वसनांचलैः श्रवणयोर्नीलोत्पलं निह्नुते ॥ इति ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षमायुक्त अतिगंभीर प्रकृति अज्ञावर्तित्वादिक अच्छे चरित्रोंकी धारण करने वाली ऐसी जो सत्कुल प्रसूता स्त्री सो देवता और गुरु जन (बडों) के समक्षमें अंगीकार करी जावे वही स्वकीया स्त्री होतीहै साहित्य दर्पणमें ऐसा लिखा है कि जो विनय (नम्रता) और ऋजुता सीधेपनसे युक्तहो और गृहस्थके कामोंमें रत रहने वाली और पतिव्रता स्त्री स्वकीया कहलातीहै यह स्वकीया अवस्था भेदसे तीन प्रकारकी होतीहै प्रथम मुग्धा दूसरे मध्या तीसरे प्रगल्भा इनमेंसे अंकुरितयौवना लज्जावती नवीन स्त्रीको मुग्धा कहतेहैं और जिसमें लज्जा और कामदेव समान हो उसे मध्या कहतेहैं और पतिकी क्रीडामें प्रवीण होगई हो उसे प्रगल्भा कहते हैं इनके उदाहरण ऊपर संस्कृत टीकामें देखो अथवा नीचे भाषा दोहोंमें ॥ १२ ॥

(भाषा) दोहा—जो गुरु देवनके निकट, करी जाय स्वीकार। अति सुशील गृह कर्म रत, सोइ स्वकीया नार ॥ १ ॥ इसहि

स्वकीया नारिके, होत उमर अनुसार। मुग्धा मध्या प्रगल्भा, तीन भेद निर्धार ॥२ ॥ मुग्धा हो नव यौवना, मध्या सम मद लाज। करे प्रगल्भा निपुणता, निज पति रति के काज ॥ ३ ॥ मुग्धा उदाहरण-लाजभरी अँखियानमूं, सन्मुख नाहिं लखाय। पति जल मांग्यो भवनमें, बाहर ही धर जाय ॥ ४ ॥ (मध्या उदाहरण) मदन कहे पिय मिलनकूं, लाज करे लाचार । चलन चहे फिर फिर रुके, मनमें करे विचार ॥ ५ ॥ प्रगल्भा उदाहरण । देख उजेरो प्रातको, विदित न हो भरतार । प्रेमालिंगनके सहित, झट देदिये किवार ॥ ६ ॥

परकीया ।

परकीयाप्यनूढेव वाच्यभेदोऽस्ति चानयोः ॥ स्वयमप्यतिकामैका सख्या चैका प्रियं वदेत् ॥ १३ ॥

टीका–परकीया अपि अनूढा इव (भवति) अनयोः च वाच्यभेदः अस्ति एका अतिकामा स्वयम् एका च सख्या प्रियं वदेत् इत्यन्वयः ॥ अनयोः परकीयानूढयोः वाच्यभेदः वचनभेदः अस्ति एका परकीया अतिकामा अतिकामवती स्वयं प्रियं कांतं वदेत् सुरताभिप्रायं प्रकाशयेत् एका च अन्या अनूढा सख्या सखीमुखेन प्रियं कांतं वदेत् स्वाभिप्रायं प्रकाशयेदित्यर्थः परपुरुषानुरक्ता परकीया अस्याश्चोदाहरणम् "स्वामी मुग्धतरो वनं धनमिदं बालाहमेकाकिनी।

क्षोणीमावृणुते तमालमलिनच्छायातमःसंततिः ॥ तन्मे सुंदर ! कृष्ण मुंच सहसा वर्त्मेति गोप्या गिरः श्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकलासक्तो हरिः पातु नः" इति १३॥

अर्थ-परकीया भी अनूढाकी भांत ही होतीहै इनमें सिरफ वचनोंका ही भेद होताहै इनमेंसे परकीया अति कामवती होनेसे स्वयं आपही पर पुरुषसे अपना अभिप्राय कहदेतीहै और अनूढा सखीके द्वारा प्रायः अपना अभिप्राय प्रकट करतीहै परकीयाका लक्षण मुख्य परपुरुषमें अनुरक्त होनाहै इसका उदाहरण ऊपर श्लोकमें अथवा नीचे दोहेमें देखो ॥ १३ ॥

(भाषा) दोहा-रुष्ट रहे निज जननसे, गृहका करे न कार । प्रेम करे पर पुरुष से, सो परकीया नार ॥१ ॥ (उदाहरण) मैं बाला रहुं एकली, वृद्ध सास रहे सोय । छैल रात मुझ घर रहो, बरजे तुमे न कोय ॥ २ ॥

सामान्या ।

सामान्यवनिता वेश्या भवेत्कपटपंडिता ॥ नहि कश्चित्प्रियस्तस्या दातारं नायकं विना ॥ १४ ॥ सर्वप्रकाशमेवैषा याति नायकमुद्धता ॥ वाच्यः प्रच्छन्नएवान्यस्त्रीणां प्रियसमागमः ॥ १५ ॥

टीका--सामान्यवनिता वेश्या कपटपंडिता भवेत् दातारं नायकं विना हि तस्याः कश्चित् प्रियः न एषा उद्धता सर्वप्रकाशम् एव नायकं (प्रति) याति अन्य

स्त्रीणां प्रियसमागमः प्रच्छन्न एव वाच्यः इत्यन्वयः ॥ कपटे अर्थग्रहणचातुर्ये पंडिता विचक्षणा एषा उद्धता उच्छृंखला सती सर्वप्रकाशं सर्वेषां जनानां समक्षं नायकं कांतं प्रति याति गच्छति अन्यस्त्रीणां स्वकीयापरकीयानां प्रियसमागमः कान्तं प्रति गमनं प्रच्छन्नः गुप्तत्वेनैव (उक्तं च रसमंजर्य्याम्) द्रव्यमात्रोपाधिसकलपरपुरुषाभिलाषा सामान्यवनिता तस्या उदाहरणम् "दृष्ट्वा प्रांगणसन्निधौ बहुधनं दातारमभ्यागतं वक्षोजौ तनुतः परस्परमिवाश्लेषं कुरंगीदृशः ॥ आनंदाश्रुपयांसि मुंचति मुहुर्मालामिषात् कुंतला दृष्टिः किंच धनागमं कथयितुं कर्णांतिकं गच्छति॥" इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

अर्थ—सामान्यवनिता अर्थात् वेश्या कपट करनेमें पंडिता होती है सिवाय द्रव्य देनेवालेके इसको कोई भी प्यारा नहीं होता है यह उद्धत निःशंक होके सबके सामनेही पर पुरुषके पास चली जाती है इसके सिवाय और स्त्रियों (स्वकीया परकीया सब)का पुरुषके पास गमन करना एक प्रकार गुप्त रूपसे ही होता है रसमंजरीमें लिखा है कि द्रव्य मात्रहीके कारण समस्त परपुरुषोंकी अभिलाषा रखनेवाली सामान्यवनिता अर्थात् वेश्या होती है इसका भी उदाहरण ऊपर श्लोकमें तथा नीचे दोहेमें ॥ १४ ॥ १५ ॥

(भाषा) दोहा—करे प्रीति उन नरनसूं, अधिक द्रव्य जो देत। ताको गणिका कहत हैं, विन धन करे न हेत ॥१॥ (उदाहरण) अति भूषण बहु वसनते, मम नित करे सिंगार। लाउ इती उस धनिककूं, गणिका कहे पुकार ॥ २ ॥

विप्रलंभ ।

पूर्वानुरागमानात्मप्रवासकरुणात्मकः ॥
विप्रलंभश्चतुर्धा स्यात् पूर्वः पूर्वो ह्ययं गुरुः ॥ १६ ॥

टीका--विप्रलंभः पूर्वानुरागमानात्मप्रवासकरुणात्मकः चतुर्धा स्यात् अयं हि पूर्वः पूर्वः गुरुः इत्यन्वयः॥ पूर्वानुरागात्मकः मानात्मकः प्रवासात्मकः करुणात्मकश्च एवं विप्रलंभः चतुर्धा भवति विप्रलंभः पूर्वं शृंगारभेदे चोक्तः अयं पूर्वः पूर्वः गुरुः यथा करुणात् प्रवासः प्रवासात् मानः मानात् पूर्वानुरागः श्रेष्ठ इत्यर्थ ॥ १६ ॥

अर्थ-(पहले शृंगारके दो भेद जो कहे थे कि संयोग और विप्रलंभ जिसमेंसे संयोगका संक्षिप्त वर्णन कुछ हो चुका अब विप्रलंभका वर्णन करते हैं) वह विप्रलंभ अर्थात् वियोग चार प्रकारका होता है पूर्वानुराग मान प्रवास और करुणा इनमेंसे पिछलेकी अपेक्षा पहला पहला श्रेष्ठ समझा जाता है जैसे करुणसे प्रवास प्रवाससे मान और मानसे पूर्वानुराग श्रेष्ठ होता है ॥ १६ ॥

पूर्वानुराग ।

स्त्रीपुंसयोर्नवालोकादेवोल्लसितरागयोः ॥
ज्ञेयः पूर्वानुरागोऽयमपूर्णस्पृहयोर्दशा १७॥

टीका—नवालोकात् उल्लसितरागयोः अपूर्णस्पृहयोः स्त्रीपुंसयोः दशा अयं पूर्वानुरागः ज्ञेयः इत्यन्वयः ॥ नवालोकात् नव्ययोः स्त्रीपुंसयोः आलोकात् दर्शनात् श्रवणादपि उल्लसितरागयोः उल्लसितः उद्भासितः रागः ययोः अपूर्णस्पृहयोः अपूर्णा स्पृहा ययोः अपूर्णमनोरथयोरित्यर्थः एवं भूतयोः स्त्रीपुंसोः या दशा स एव पूर्वानुरागः दशा अवस्था सा दशविधा दर्पणे "अभिलाषश्चिंतास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च—उन्मादोऽथ व्याधिर्जडतामृतिः" इति दशात्र इति॥१७॥

अर्थ—नवीन स्त्री या पुरुषके देखनेसे (तथा उसके गुण सुननेसे) उल्लसित अर्थात् उद्भासित हुवा है अनुराग (प्रेम) जिनका ऐसे जो स्त्री पुरुष अर्थात् नूतन स्त्रीके दर्शनादिसे पुरुष और नूतन पुरुषके दर्शनादिसे स्त्री उनकी जो दशा (अवस्था) उसे पूर्वानुराग कहते हैं वह दशा प्रायः दश प्रकारकी होती है जैसे अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता, मृति इति ॥ १७ ॥

(मान, प्रवास,)

मानोऽन्यवनितासंगादीर्ष्याविकृतिरुच्यते ॥ प्रवासः परदेशस्थे प्रिये विरहसंभवः ॥ १८ ॥

टीका--अन्यवनितासंगात् ईर्ष्याविकृतिः मानः उच्यते। प्रिये परदेशस्थे विरहसंभवः प्रवासः इत्यन्वयः॥ अन्यवनितासंगात् परस्त्रीणां संगः मैथुनालापादिकः तस्मात् तस्य दर्शनश्रवणानुमानात् या ईर्ष्याविकृतिः ईर्ष्यया विकारः स मानः मानात्मको विप्रलम्भः उच्यते इत्यर्थः। तथा प्रिये कांते परदेशस्थे यः विरहस्य संभवः स प्रवासात्मको विप्रलंभः॥ १८॥

अर्थ--परस्त्रीके संग मैथुनालापादिके देखने सुनने तथा अनुमानादिसे जो ईर्षासे विकार पैदा होजाता है उसे मान नामक विप्रलंभ शृंगार कहते हैं और पतिके परदेश रहनेसे जो विरह उत्पन्न होता है उसे प्रवास नामक विप्रलंभ शृंगार कहते हैं॥ १८॥

करुणा।

स्यादेकतरपंचत्वे दंपत्योरनुरक्तयोः॥
शृंगारः करुणाख्योयं वृत्तवर्णन एव सः १९

टीका--अनुरक्तयोः दंपत्योः एकतरपंचत्वे अयं करुणाख्यः शृंगारः स्यात् स एव वृत्तवर्णनः इत्यन्वयः॥ अनुरक्तयोः अनुरागयुक्तयोः दंपत्योः स्त्रीपुरुषयोः एकतरपंचत्वे द्वयोर्मध्ये कस्यचिदेकस्य मरणे (तथा प्रव्रजितेऽपि) अयं करुणाख्यो विप्रलंभः शृंगारः स्यादित्यर्थः स एव वृत्तवर्णनः गतस्य वर्णनरूपको भवति नतु वर्तमानस्य भाविनो वा वर्णनरूपः

एतेषां उदाहरणानि च यथाक्रमं द्रष्टव्यानि पूर्वानुरागस्य यथा " दृष्ट्वा चित्रितचित्रमूषा भूषा तु चित्रलेखातः॥अनिरुद्धस्य सुकृतिनो भूमौ पतिता निरुद्धचित्ता सा" ॥ १ ॥ मानस्य यथा दर्पणे "विनयति सुदृशो दृशोः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ॥ तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥ " ॥ २ ॥ प्रवासस्य यथा " इतः केकीनादैस्तुदति शतकोटिप्रतिभटैरितः कामः कामं कठिनतरबाणैः प्रहरति॥ इतो गर्जत्युच्चैर्जलधरगणो भीमानिनदैर्विना नाथं जाने न सखि भविता किं ननु मम ॥ ३ ॥" (करुणस्य यथा) "जातिं न याति नहि गच्छति यूथिकायां नायाति कुंदकलिकामपि सौरभाढ्याम्॥ भग्नोद्यमस्तुहिनाशितमल्लिकायाः शोकाकुलः क्वणति रोदति षट्पदोऽसौ ॥ ४ ॥" इति एषां मध्ये पूर्वानुरागस्य नायिका प्रायशः अनूढा कुत्रचित् परकीयापि मानस्य मानवती क्वचित् खंडितापि प्रवासस्य प्रोषितभर्तृका करुणस्य शोकवती इति आसां मध्ये ज्येष्ठाकनिष्ठा धीराऽधीरादिभेदास्तथा च स्वाधीनपतिकाखंडिताऽभिसारिकाकलहांतरिताविप्रलब्धाउत्का प्रोषितभर्तृकावासकसज्जा इत्यादिभेदाः संति ग्रंथबाहुल्यभयान्नात्र लिखिताः ॥ १९ ॥

अर्थ-प्रेमी दोनों स्त्रीपुरुषोंमेंसे एक किसीकी मृत्यु होजानेसे या (पतिके संन्यस्तादि होजानेसे) करुणा नामक विप्रलंभ शृंगार होताहै इसमें गई हुई बातोंका वर्णन होता है ॥ १९ ॥

इन पूर्वानुराग मान प्रवास और करुणा विप्रलंभके उदाहरण क्रमसे ऊपर टीकामें लिखे श्लोकोंमें देखिये तथा नीचे दोहोंमें (विप्रलंभ वर्णन) (भाषा दोहा) विप्रलंभ इमि चार विध, प्रथम पूर्व अनुराग । दूजो मान प्रवास पुनि, चौथे करुण विराग ॥ १ ॥ (इनके यथाक्रम लक्षण) सो पूरब अनुराग हैं, देखे सुने जु प्रीति । रोष होय पति विमुखते, यहै मानकी रीति ॥ २ ॥ पीय बसे परदेशमें, ताको विरह प्रवास । करुण मरण संन्यासते, जामें होय निरास ॥ ३ ॥ (उदाहरण) (पूर्वानुराग) देव ऋषिनसे कृष्णगुन, सुनकर भीम कुमारि । भइ अनन्य अनुरागिनी, मिलिहो कृष्ण मुरारि ॥ ४ ॥ (मान) बंशीवट तट कृष्ण सन, कोउ सुंदर व्रज नारि । रोष भरी मुख मोरके, लख वृषभानु दुलारि ॥ ५ ॥ (प्रवास) पीत भये सखियन वसन, खेलत पीतम संग । मैं विन पी पीरी परी, भयो केसरी अंग ॥ ॥ ६ ॥ (करुणा) कर विलाप पुनि सिर धुने, गोपीचंदकी नार। कर पकरेकी नाकरी छोड चले मझधार ॥ ७ ॥

इनमेंसे पूर्वानुरागकी नायिका प्रायः अनूढा होती है कदाचित् कहीं परकीया भी होजाती है । और मानकी मानवती कभी खंडिता भी होती है प्रवासकी प्रोषितभर्तृका और करुण की शोकवती होती है इनके सिवाय ज्येष्ठा, कनिष्ठा, धीरा, अधीरा, स्वकीयाके भेद होते हैं और अनुशयना कुलटा आदि परकीयाके तथा स्वाधीनपतिका-खंडिता, अभिसारिका, कलहांतरिता,विप्रलब्धा, उत्का प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा इत्यादि भेद भी होतेहैं जो ग्रंथ बाहुल्य भयसे यहां नहीं लिखे रसमंजरी रसराज आदिमें देखें ।

वीररस ।

उत्साहात्मा भवेद्वीरस्त्रिधा धर्माजिदानतः ॥ नायकोत्र भवेत्सर्वैः श्लाघ्यैरधिकतो गुणैः ॥ २० ॥

टीका--धर्माजिदानतः उत्साहात्मा वीरः त्रिधा भवेत् अत्र सर्वैः श्लाघ्यैः गुणैः अधिकतो नायको भवेदित्यन्वयः॥ धर्मतः आजितः दानतः एवं त्रिधा उत्साहात्मा वीरः आजिः युद्धम् यथा च धर्मवीरः युद्धवीरः दानवीरः (उक्तं च साहित्यदर्पणे) "उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साह स्थायिभावकः॥ महेंद्रदैवतो हेमवर्णोयं समुदाहृतः॥१॥ आलंबनविभावास्तु ।वजेतव्यादयो मताः॥ विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥ २ ॥ अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ॥ ३ ॥ संचारिणस्तु धृति मतिगर्वस्मृतितर्करोमांचाः ॥ स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्द्धा॥४॥ (युद्धवीरस्योदाहरणम्) भो लंकेश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते कोयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचित् कृतम् ॥ नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कंठासृजा पंकिलः पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्यांबंधबंधूकृतः॥५॥" ॥२०॥

अर्थ-धर्म और युद्ध और दान इनमें उत्साहरूपी होनेसे वीर रस तीन प्रकारका होताहै, जैसे धर्मवीर, युद्धवीर और दानवीर इसमें नायक सब प्रशंसनीय गुणोंसे अधिक होता है (साहित्य दर्पणमें) चारप्रकारका लिखा है जैसे युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर, और दयावीर इस वीररसका स्थायीभाव उत्साह है और महेंद्र देवता है सुनहरा वर्ण है और युद्ध वीरका आलंबन विभाव विजेतव्यादि हैं विजेतव्यकी चेष्टादि उद्दीपन है और सहायादिका अन्वेषणादि अनुभावहैं धृति, मति, गर्वादिक संचारी हैं २०

(भाषा) दोहा-युद्ध धर्म और दानमें, हो अविकल उत्साह। ताहि वीररस कहत हैं, उद्दीपन वाहवाह ॥ १ ॥ (उदाहरण) यश राख्यो यशवंतने, भुजबल प्रबल बढ़ाय । हटे न तब तक जब तलक, नाहर ना हर जाय ॥ २ ॥

करुणा ।

शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र प्रणतरोदने ॥
वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलापाश्रूणि कीर्तयेत् २१

टीका-करुणः शोकोत्थः ज्ञेयः तत्र प्रणतरोदने वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलापाश्रूणि कीर्तयेत् इत्यन्वयः ॥ शोकोत्थः शोकात् इष्टनाशानिष्टावाप्तिजनितात् उत्थितः करुणः करुणारसो ज्ञेयः तत्र रसे प्रणतं रोदनं च वैवर्ण्यं विवर्णत्वं मोहो मूर्च्छा निर्वेदः वैराग्यं प्रलापः प्रलपनम् अश्रूणि नयनजलानि इत्यादयो अनुभावाः कीर्तितव्या इत्यर्थः अस्य स्थायीभावः शोकः (उक्तंच सा०दर्पणे)"इष्टनाशादनिष्टाप्तेःकरुणाख्यो रसो भवेत्॥

धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः॥ १ ॥ शोकोत्र स्थायिभावास्याच्छोच्यमालंबनं मतम्॥ तस्य स्मृत्यादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ॥ २ ॥ अनुभावा दैवनिंदाभूपाताक्रंदनादयः ॥ वैवर्ण्योच्छ्वासविश्वासस्तंभप्रलयनानि च ॥ ३ ॥ निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः॥ विषादजडतोन्मादचिंताद्याः व्यभिचारिणः ॥ ४ ॥ उदाहरणम्–विपिने क्व जटानिबंधनं तव चेदं क्व मनोहरं वपुः ॥ अनयोर्घटना विधेः स्फुटं ननु खड्गेन शिरीषकर्तनम् ॥ ५ ॥" इति ॥ २१ ॥

अर्थ–वांछित पदार्थके नाश तथा अनिष्टकी अप्राप्ति इनसे हुवा जो शोक उससे उठा हुवा करुणा रस होताहै उसमें प्रणत नम्रता या पतन तथा रुदन और वर्ण बिगड जाना मोह मूर्च्छा होना निर्वेद अर्थात् वैराग्य होजाना प्रलाप (बकवाद) होना तथा नेत्रोंसे आंसू गिरना इत्यादि (अनुभाव) कीर्तन किये जातेहैं इस रसका स्थायीभाव शोक है (साहित्य दर्पणमें) लिखा है कि इस रसका वर्ण कपोतके रंगका (खाखी) है इसको देवता यम है शोक स्थायीभाव और शोच्य वस्तु आलंबन है उसकी याद आना आदि उद्दीपनहैं और दैवकी निंदा पृथिवीमें पडना विलाप करना आदि अनुभाव हैं और वर्ण विगडना, ऊंची श्वास लेना स्तंभित होजाना प्रलाप, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जडता,उन्माद,चिंता इत्यादि व्यभिचारी भावहैं उदाहरण ऊपर श्लोकमें तथा नीचे दोहेमें देखो २१

(भाषा) दोहा–इष्टनाश या दुख मिलें, होय शोक फिर जासु। मोह विषाद विलाप हो, करुणा रस कहि तासु ॥ १ ॥

(उदाहरण) पत उतरत मम बसन सन, हे पत राखन हार ।
आरत हो द्रौपदि निबल, रो रो करत पुकार ॥ १ ॥

हास्य ।

हासमूलः समाख्यातो हास्यनामा रसो बुधैः ॥ चेष्टांगवेषवैकृत्याद्वाच्यो हास्यस्य चोद्भवः ॥ २२ ॥ कपोलाक्षिकृतोल्लासो भिन्नोष्ठः समहात्मनाम् ॥ विदीर्णास्यश्च मध्यानामधमानां सशब्दकः॥२३॥

टीका--हासमूलः हास्यनामा रसः बुधैः समाख्यातः चेष्टांगवेषवैकृत्यात् हास्यस्य च उद्भवः वाच्यः॥स महात्मनां कपोलाक्षिकृतोल्लासः अभिन्नोष्ठः मध्यानां च विदीर्णास्यः च अधमानां सशब्दकः इत्यन्वयः॥हासःमूलं यस्य स हासमूलः चेष्टांगवेषवैकृत्यात् चेष्टया अंगस्य वेषस्य च वैकृत्यात् विकृतिभावात् हास्यस्य च उद्भव उत्पतिरित्यर्थः स हासः प्रकृतिभेदेन त्रिधा महात्मना तु कपोलाक्षिकृतोल्लासःकपोलाभ्याम् अक्षिभ्यां च कृतः उल्लासः विकासः यस्मिन् तथाभूतः अभिन्नोष्ठश्च न भिन्नौ ओष्ठौ यस्मिन् तथाभूतश्च मध्यानां विदीर्णास्य विदीर्णम् आस्यं मुखं यस्मिन् एवं भूतः अधमानां तु सशब्दकः शब्दसहितः इत्यर्थः (उक्तं च साहित्यदर्पणे) "विकृताकारवागवेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्॥हासो हास्य-

स्थायिभावः श्वेतः[1] प्रथमदैवतः ॥ १ ॥ विकृताकार-वाक्चेष्टं यदालोक्य हसेज्जनः ॥ तदत्रालंबनं प्राहुस्त-च्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥ २ ॥ अनुभावोऽक्षिसंकोच वदन-स्मरेतादिकः॥निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचा-रिणः॥३॥ (उदाहरणम्) (सा० दर्पणे) गुरोर्गिरः पंच दिन्यान्यधीत्य वेदांतशास्त्राणि दिनत्रयं च॥अमी समा-घाय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः ॥ ४ ॥" इति ॥ २२ ॥ २३ ॥

अर्थ–पंडितोंने कहाहै कि हँसी जिससे हो उसे हास्य रस कहाहै चेष्टा अंग और भेषकी विकृति इत्यादिसे हास्यकी उत्पत्ति वर्णन करी है वह हास्य (हँसना) ऐसे तीन प्रकारका है कि महात्माओंका हँसना ऐसाहै कि जिसमें कपोल और नेत्रोंहीमें उल्लास रहे होठ खिलें नहीं और मध्यम लोगोंके हँसनेमें मुह खुल-जाताहै दाँत दिख जातेहैं और अधमोंके हँसनेंमें तो खूब कह-कहाटेका शब्द होताहै साहित्यदर्पणमें लिखाहै कि हास्यरसका स्थायी भाव हँसना है और वर्ण श्वेतहै प्रमथ देवताहै विकृता-कारादि देखना जिनसे हँसी आवे सो आलंबन विभावहैं और विकृताकारादिकी चेष्टा उद्दीपनहैं और नेत्र संकोच मुह फेरना आदि अनुभाव हैं और निद्रा आलस्य अवहित्थ (अंग गोपन अन्यथा भाषणादि) व्यभिचारी भावहैं उदाहरण ऊपर श्लोकमें तथा नीचे देखो ॥ २२ ॥ २३ ॥

(भाषा) सोरठा–मुख्य हास जिह मूल, हास्य नाम रस होत सो । ये इसके अनुकूल, वेष वचन चेष्टा विकृत ॥ १ ॥

---

१ श्वेतः पांडुच्छविरस्य वर्णः धवलस्तु शांतस्येति भेदः ।

(उदाहरण) दोहा-तीन दिना सब शास्त्र पढ, एक दिना पढ वेद । कुक्कुट मिश्र पधारिहैं, सिर पर धरे लवेद ॥ १ ॥

अद्भुत ।

विस्मयात्माद्भुतोज्ञेयः सचासंभाव्यवस्तुनः ॥ दर्शनाच्छ्रवणाद्वापि प्राणिनामुपजायते ॥ २४ ॥ तत्र नेत्रविकासः स्यात्पुलकः स्वेद एव च ॥ निस्यंदनेत्रता साधु साधु वा गद्गदा च गीः ॥ २५ ॥

टीका-विस्मयात्मा अद्भुतः ज्ञेयः स च प्राणिनाम् असंभाव्यवस्तुनः दर्शनात् श्रवणात् अपि वा उपजायते तत्र नेत्रविकासः पुलकः च एव स्वेदः निस्यंदनेत्रता वा साधु साधु गद्गदा च गीः स्यात् इत्यन्वयः ॥ विस्मयात्मा विस्मयः आत्मा स्थायीभावः यस्य स च अद्भुतः असंभाव्यवस्तुनः न संभवितुं योग्यम् असंभाव्यं तादृशस्य वस्तुनः दर्शनात् श्रवणात् वा प्राणिनां प्राणवताम् उपजायते संभवतीत्यर्थः तत्र रसे नेत्रयोः विकासः पुलकः रोमांचः निस्यंदनेत्रता नेत्रयोः किंचित्स्थैर्यमित्यर्थः वा साधु साधु इत्येवंरूपा गद्गदा च गीः वाणी स्यात् (उक्तं च साहित्यदर्पणे)"अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गंधर्वदैवतः॥ पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालंबनंमतम्॥ १॥गुणानांत-

स्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः॥ स्तंभः स्वेदोथ रोमांच-गद्गदस्वरसम्भ्रमाः॥२॥तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ॥ वितर्कावेगसंभ्रांतिहर्षाद्या व्यभिचारिणः ॥ ३ ॥ लोकातिगम् अलौकिकम् । (अत्रोदाहरणम्) दोर्दंडांचितचंद्रशेखरधनुर्दंडावभंगोद्यतष्टंकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिंडिमः ॥ द्राक् पर्यस्तकपालसंपुटमिलद्ब्रह्माण्डभांडोदरभ्राम्यत्पिण्डितचंडिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति॥४॥"इति ॥२४॥ २५ ॥

अर्थ–विस्मय आश्चर्यरूप स्थायी भाववाला अद्भुत रस जानना चाहिये यह असंभवरूप पदार्थोंके देखने अथवा सुननेसे प्राणियोंको उत्पन्न होता है इसमें नेत्रोंका खुला रहना तथा रोमांच होना पसीना आजाना अथवा नेत्र स्तंभितसे रहजाना तथा बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसी गद्गद वाणी हो जाना आदि होते हैं देखो साहित्यदर्पण इस अद्भुत रसका स्थायी भाव आश्चर्य होता है गंधर्व देवता है पीला वर्ण है अलौकिक वस्तु आलंबन है उसके गुणोंकी महिमा उद्दीपन है और स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गद्गद स्वर, संभ्रम, नेत्रविकास इत्यादि अनुभाव हैं वितर्क, आवेग संभ्रांति,हर्ष इत्यादि व्यभिचारी हैं उदाहरण ऊपर श्लोकमें देखो तथा नीचे ॥ २४ ॥ २५ ॥

(भाषा) दोहा–अद्भुत रस आश्चर्य मय, कह कवि चतुर सुजान। सो अद्भुत वस्तूनके, देखे सुने बखान॥ १॥ (उदाहरण) तव यश मुतियन तव गुनन, दुउ लै पोवत माल। अछिद आद्य गुन अनत लख, भइ विस्मित सुर बाल ॥ २ ॥

भयानक ।

भयानको भवेद्भीतिप्रकृतिर्घोरवस्तुनः ॥
स च प्रायेण वनितानीचबालेषु शस्यते ॥
॥ २६ ॥ दिगालोकास्यशोषांगकंप-
गद्गदसंभ्रमाः । त्रासवैवर्ण्यमोहाश्च व-
र्ण्यंते विबुधैरिह ॥ २७ ॥

टीका—घोरवस्तुनः भीतिप्रकृतिः भयानको भवेत् स च प्रायेण वनितानीचबालेषु शस्यते । इह दिगालोकास्यशोषांगकंपगद्गदसंभ्रमाः च त्रासवैवर्ण्यमोहाः बुधैः वर्ण्यंते इत्यन्वयः ॥ घोरवस्तुनः राक्षसादितः व्याघ्रादितश्च भीतिप्रकृतिः भीतिः भयम् एव प्रकृतिः स्वभावः स्थायीभावः यस्य तथाभूतो भयानकः भयानकरसः स रसः प्रायेण वनितादिषु शस्यते प्रशस्यते इत्यर्थः । इह अस्मिन् रसे दिगालोकादयः त्रासादयश्च (अनुभावाः) वर्ण्यंते (उक्तं च साहित्यदर्पणे) "भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः ॥ स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः ॥ ॥ १ ॥ यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालंबनं मतम् ॥ चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः ॥२॥ अनुभावोत्रवैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम् ॥ प्रलयस्वेदरोमांचकंपदिक्प्रेक्षणा-

दयः॥ जुगुप्सावेगसंमोहः शंकाद्या व्यभिचारिणः॥३॥ (उदाहरणम्) घनविटपतिमिरपुंजे काननकुंजे दिनांतसंप्राप्ते। उत्फालितमतिभीता व्याघ्रं दृष्ट्वा पलायिता भिल्ली (मु० ध)॥ २६॥ २७॥

अर्थ—घोर (डरावनी) वस्तुसे उसके दर्शनादि शब्दादिसे (उत्पन्न होता है) ऐसा भय प्रकृतिवाला अर्थात भय स्थायीभाववाला भयानक रस होता है वह भयानक रस विशेषकर स्त्री नीच बालक इनमें अच्छा लगता है इसमें दिशावोंकी ओर (चारों तरफ) देखना मुहसूखना शरीर कांपना गद्गदवाणी संभ्रम त्रास वैवर्ण्य मोह ये पंडितोंने (अनुभाव) वर्णन किये हैं (देखो सा० दर्पण) भयानकका स्थायी भाव भय काल देवता स्त्री नीच प्रकृति कृष्णवर्ण कहाहै जिससे भयहो वह आलंबन उसकी घोर चेष्टा उद्दीपन और वैवर्ण्य गद्गद स्वर प्रलय पसीना रोमांच कंप आदिक अनुभाव हैं और जुगुप्सा आवेग मोह शंका इत्यादिक व्यभिचारी भाव होते हैं (उदाहरण ऊपर श्लोकमें देखो या नीचे भाषामें)॥ २६॥ २७॥

(भाषा) दोहा—कहत भयानक नाम रस, जिसमें अति भय होय। नीच प्रकृति अरु बाल तिय, तिनमें सोहत सोय॥ १॥ (उदाहरण) घन तरू तिमिर समूह वन, तामें बाघ लखाय। त्रास युक्त कंपत भगी, भिल्ल नारि भय खाय॥ २॥

रौद्र।

क्रोधात्मको भवेद्रौद्रः क्रोधश्चारिपराभवात्॥भीष्मवृत्तिर्भवेदुग्रः सामर्षस्तत्र नायकः॥ २८॥ स्वांसापातस्वसंश्लाघाक्षेप-

भ्रुकुटयस्तथा ॥ अत्रारातिजनाक्षेपो दलनं चोपवर्ण्यते ॥ २९ ॥

टीका--रौद्रः क्रोधात्मको भवेत् च क्रोधः अरिपराभवात् (भवेत्) तत्र सामर्षः भीष्मवृत्तिः उग्रः नायकः भवेत् । अत्र च स्वांसापातस्वसंश्लाघाक्षेपभ्रुकुटयः तथा अरातिजनाक्षेपः दलनं च उपवर्ण्यते इत्यन्वयः ॥ क्रोधात्मकः क्रोधस्थायिभावः अरिपराभवात् शत्रुतः अवमानात् भीष्मवृत्तिः भयंकरावृत्तिः सामर्षः अमर्षेण कोपेन सहितः नायकः वर्णनीयः स्वांसापातः स्वस्य अंसस्य जहल्लक्षणया बाहोः आपातः स्वसंश्लाघा स्वस्य आत्मनः भूतभविष्यद्रूपा श्लाघा न तु वार्तमानिका आक्षेपः निर्भर्त्सनं भ्रुकुटिः भ्रुकुटिसंकोच इत्यर्थः अरातिजनाक्षेपः अरातिजने आक्षेपः उपालंभः दलनं मर्दनम् उपवर्ण्यते अनुभावरूपेण वर्ण्यते इत्यर्थः(उक्तं च सा०दर्पणे)"रौद्रःक्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवतः॥ आलंबनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥ ॥ १ ॥ अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः ॥ उग्रता वेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदः॥ मोहामर्षादयश्चात्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ॥ २ ॥ (उदाहरणम्) कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ॥ नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां समीम-

किरीटिनामयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥ २८ ॥ २९ ॥

अर्थ–शत्रुसे हारजाने इत्यादिसे क्रोध उत्पन्न होताहै और क्रोधही है स्थाई भाव जिसका ऐसा रौद्र रस होताहै और इस रसका नायक क्रोध युक्त उग्र और भयानक वृत्ति वाला होताहै और अपने भुजा पटकना अपनी श्लाघा करना परायेको भर्त्सना करना भ्रुकुटी चढाना तथा पराये को उपालंभ देना मर्दन ये अनुभाव रूपसे वर्णन कियेहैं (देखो सा० दर्पण) रौद्र रसका क्रोध स्थायी भाव है रक्त वर्णहै रुद्र देवता है और शत्रु (तथा अन्य अप्रियादि) आलंबनहैं और उसकी चेष्टादि उद्दीपन हैं और आक्षेप, क्रूर दर्शन,उग्रता,आवेग,रोमांच, स्वेद, कंप, मद इत्यादि अनुभावहैं और मोह अमर्ष इत्यादि व्यभिचारी हैं (रौद्र और युद्धवीर रसमें भेद यह है कि युद्ध वीरमें उत्साह स्थायीभाव होताहै और इस रौद्र रसमें क्रोध स्थायीभावहै) उदाहरण ऊपर टीकाके श्लोकमें देखो या नीचे भाषामें ॥ २८ ॥ २९ ॥

(भाषा) दोहा–अरिते हारे क्रोधहो, क्रोध रौद्रको भाव। भीष्म वृत्ति कोपित यहां, नायक उग्र सुभाव॥ १ ॥ (उदाहरण) मनुजपशू गुरुपातकी, कीने कर्म कठोर। तुम तनु आमिष रुधिरकी देहु बली चहुँ ओर ॥ २ ॥ (यह अश्वत्थामाका वचन पांडवोंके प्रति है)

वीभत्स ।

वीभत्सः स्याज्जुगुप्सा तु सद्यो यच्छ्रवणेक्षणात् ॥ निष्ठीवनास्यभंगादि स्यादत्र महतां न च ॥ ३० ॥

टीका--यच्छ्रवणेक्षणात् सद्यः जुगुप्सा (स) वीभत्सः स्यात् अत्र निष्ठीवनास्यभंगादि स्यात् च महतां न इत्यन्वयः ॥ यच्छ्रवणेक्षणात् यस्य श्रवणात् दर्शनात् वा सद्यः शीघ्रं जुगुप्सा घृणा भवति स वीभत्सः वीभत्सनामा रसः स्यात् अत्र अस्मिन् रसे निष्ठीवनास्यभंगादि निष्ठीवनं थूत्करणम् आस्यभंगः मुखविकारः इत्यादिस्यात् निष्ठीवनादिःअनुभावः स्यादित्यर्थः महतां समदृष्टीनां महात्मनां च न महात्मन निष्ठीवनादिकं न स्यादिति फलितोर्थः(उक्तं च साहित्यदर्पणे)जुगुप्सास्थायिभावस्तु वीभत्सःकथ्यते रसः॥नीलवर्णो महाकालदैवतोयमुदाहृतः॥१॥दुर्गंधमांसापिशितमेदांस्यालंबनं मतम् ॥ तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ॥२॥ निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः। अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः। मोहोपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः॥३॥(उदाहरणं सा० दर्पणे)उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसान्यंसस्फिक्पृष्ठपिंडाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ॥ अंतःपर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरंकः करंकादंकस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥ ४ ॥ इति ॥ ३० ॥

अर्थ-जिस सडे पदार्थके देखने या सुननेसे उसी वखत घृणा उत्पन्न हो वह वीभत्स रस होता है इसमें थूकना मुह सिकोडना

आदिक अनुभाव होते हैं परंच समदर्शियोंको ये मुहँ सिकोडना आदि नहीं होते देखो साहित्य दर्पणमें इस भांत लिखा है कि इस बीभत्स रसका जुगुप्सा (घृणा) स्थायी भाव है नीलावर्ण और महाकाल देवता है और दुर्गंध, मांस, चरबी आदि आलंबन हैं और उसमें दुर्गंध कृमिपडना आदि उद्दीपन है थूकना,मुँहसिकोडना, नेत्रमूंदना,नाक बंदकरना इत्यादि अनुभाव हैं और मोह,अपस्मार, आवेग,व्याधि और मृत्यु इत्यादि व्यभिचारी हैं उदाहरण टीकाके श्लोकमें या नीचे भाषामें देखो॥३०॥

(भाषा) दोहा-ग्लानि रूप बीभत्स रस, रक्त मांस विट् घाव। आलंबन नासा ढकन, मुख मोरन अनुभाव॥ १॥ (उदाहरण) जैसे-हाड मास मल मूतकी, बँधी पोट नर देह। ढके चाम उघरे कुव्रण, कुष्ट दस्त और मेह॥ २॥

शांतः।

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शांतो निस्पृहनायकः॥ रागद्वेषपरित्यागात्सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः॥ ३१॥

टीका--सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः निस्पृहनायकः शांतः (अत्र) च रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञानस्य उद्भव इत्यन्वयः॥ सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः सम्यग्ज्ञानात् समुत्थानम् उत्पत्तिः यस्य स निस्पृहनायकः निस्पृह इच्छारहितः नायको यस्य स तथाभूतः शांतः शांत

नामा रसो भवति अत्र रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञानस्य उद्भवः उत्पत्तिः स्यात् इति (उक्तं च साहित्य दर्पणे)" शांतः शमस्थायिभावः उत्तमप्रकृतिर्मतः ॥ कुंदेंदुसुंदरच्छायः श्रीनारायणदैवतः ॥ १ ॥ अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिः सारता तु या ॥ परमात्मस्वरूपं वा तस्यालंबनमिष्यते ॥ २ ॥ पुण्याश्रमहरिक्षेत्रं तीर्थरम्यवनादयः ॥ महापुरुषसंगाद्यास्तस्योद्दीपन रूपिणः ॥ ३ ॥ रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ॥ निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः ॥ ४ ॥ (उदाहरणम्) कुसुमशयनं पाषाणो वा श्रियं भवनं वनं पतनुमसृणस्पर्शं वासत्वगम्यथ तारवी ॥ सरसमशनं कुल्माषो वा धनानि तृणानि वा शमसुखं सुधापानक्षैव्ये समं हि महात्मनाम् ॥" इति ॥ ३१ ॥

अर्थ-सम्यग्ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला शांतरस होताहै संसारी सुखोंकी इच्छा रहित इसका नायक होताहै राग और द्वेषके परित्यागसे इसमें सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होतीहै (देखो साहित्यदर्पणमें) यूं लिखाहै कि शांत रसका स्थायी भाव शम है उत्तम प्रकृति है कुंद चंद्रमाके समान श्वेत वर्ण है श्रीनारायण देवताहै और अनित्यत्व आदिसे सब वस्तुवोंमें निःसारता तथा परमात्माका रूप ये आलंबन हैं पुण्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थ रम्य वन महात्माओंका सत्संग इत्यादि उद्दीपनहैं और रोमांचादिक अनु

भाव हैं निर्वेद हर्ष स्मरण भूतों (जीवों) पर दया इत्यादिक व्यभिचारी हैं उदाहरण ऊपर श्लोकमें या नीचे भाषा दोहेमें देखो ॥ ३१ ॥

(भाषा) दोहा—आलंबन निःसारता, शांति रूप रस शांत। द्वेष राग विन जग्रातसे, निस्पृह जाको कांत ॥ १॥ (उदाहरण) शिला पुष्प सय्या सदृश, अहि अरु हार समान। मित्र शत्रु दोउ एकसे, पूर्ण शांत तिह जान ॥ २ ॥

(परिशिष्टः)

रसाभासभावाभासौ साहित्यदर्पणे यथा ।

टीका--(अनौचित्यप्रवृत्तत्वेःआभासो रसभावयोः (यथा) उपनायकसंस्थायां मुनिगुरुपत्नीगतायां च॥ बहुनायकविषयायां रतौ तथानुभयनिष्ठायाम् ॥ १ ॥ प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वदधमपात्रतीर्यगादिगते ॥ शृंगारे नौचित्यं रौद्रे गुर्वादिकृतकोपे ॥ २ ॥ शांते च हीन निष्ठे गुर्वाद्यावलंबने ॥हास्ये ब्रह्मवधाद्युत्साहेऽधमपात्रग ते तथा वीरे ॥३ ॥ उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेव मन्यत्र ॥ भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषये स्यात् ॥ ४ ॥

अर्थ—अनुचित रूपसे प्रवृत्त होनेपर रस और भाव इनका आभास (निंदनीय रूप) होजाताहै जैसे शृंगार रसमें उपनायक अर्थात् उपपति जारकी रतिमें अथवा मुनि गुरु इत्यादि

की स्त्रियोंकी रतिमें अथवा जहां अनेक नायकहों अथवा जहां दोनों स्त्रीपुरुषोंमें प्रेम नहींहो अथवा जहां पतिकी रतिमें जारका सामीप्यादि हो अथवा अधम पात्रकी रति तथा तिर्यक् जीवोंकी रति इत्यादिमें रसाभास होताहै (अर्थात् ऐसे अवसरोंके वर्णनमें शृंगार रस निंदनीय तथा दूषणरूप और अनुचित है) और रौद्र रसमें गुरु आदि पर कोप करना अनुचित दूषण रूप है, शांत रसमें हीन (नीच) में उसका वर्णन अनुचित है हास्य रसमें गुरु आदिकी हँसी करना दूषित है वीर रसमें नीचमें ब्राह्मणके मारने आदिका उत्साह दूषित है भयानक रसमें उत्तममें भयका वर्णन दूषित होताहै इसी प्रकार बीभत्स रसमें गुरुपुत्रादिकके व्रणादिकी परिचर्यामें ग्लानिका वर्णन भी दूषित रूपसे होताहै और इसी भांत वेश्यादिके वर्णनमें लज्जा आदिका होना यह भावाभास (भाव दूषणहोता है) इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये ॥ १ ॥ २॥३॥४॥

रसानां विरोधः दर्पणे ।

टीका--आद्यः करुणबीभत्सरौद्रवीरभयानकैः ॥ भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोधभाक् ॥ १ ॥ करुणो हास्यशृंगाररसाभ्यामपि तादृशः॥रौद्रस्तु हास्य शृंगार भयानक रसैरपि ॥ २ ॥ भयानकेन शांतेन तथा वीररसः स्मृतः॥शृंगारवीररौद्राख्यहास्यशांतैर्भयानकः ॥ ३ ॥ शांतस्तु वीरशृंगाररौद्रहास्यभयानकैः ॥ शृंगारेण तु बीभत्स इत्याख्याता विरोधिनः ॥ ४ ॥

अर्थ-आद्य अर्थात् "शृंगाररस" करुणा, बीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक इनका विरोधी है और " हास्यरस " भयानक और करुणाका विरोधी हो जाताहै ॥ १ ॥

और "करुणारस" हास्य और शृंगारका विरोधी है इसी भांत "रौद्ररस" हास्य शृंगार और भयानकका विरोधी होता है॥२॥ और "वीररस" भयानक और शांतका विरोधी है तथा " भयानकरस" शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य, शांत इनका विरोधी है॥३॥ "शांतरस" वीर शृंगार रौद्र हास्य और भयानक इनका विरोधी है और "बीभत्सरस" शृंगारका विरोधी है इत्यादि (इनके अतिरिक्त इसी भांत रसोंकी मैत्री भी होती है जैसे अद्भुतकी हास्यसे मैत्री है इसी प्रकार और भी जानो (इति परिशिष्ट)

दोषैरुज्झितमाश्रितं गुणगणैश्चेतश्चमत्कारिणं नानालंकृतिभिः परीतमभितो रीत्या स्फुरंत्या सताम् ॥ तैस्तैस्तन्मयतां गतं नवरसैराकल्पकालं कविस्रष्टारो रचयंतु काव्यपुरुषं सारस्वताध्यायिनः ॥ ३२ ॥ इति पंचम परिच्छेदः ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

टीका-सारस्वताध्यायिनः कविस्रष्टारः आकल्पकालं काव्यपुरुषं रचयंतु कीदृशं काव्यपुरुषं दोषैः

उज्झित पुनः गुणगणैः आश्रितं पुनः नानालंकृतिभिः चेतश्चमत्कारिणं पुनः स्फुरंत्या सतां रीत्या अभितः परीतं पुनः तैस्तैः नवरसैः तन्मयतां गतम् इत्यन्वयः॥ दोषैः अनर्थकादिकैः उज्झितं रहितं गुणगणैः माधुर्याद्यैः आश्रितं युक्तं नानालंकृतिभिः चित्राद्यैः उपमाद्यैश्च चेतश्चमत्कारिणं चेतसि चमत्कारं कुर्वंतं सतां लाटादीनाम् अभितः स्फुरंत्या रीत्या परीतं निबद्धं तैस्तैः शृंगारादिभिः नवरसैः तन्मयतां गतं तन्मयरूपिणम् एवंभूतं काव्यपुरुषं सारस्वतं सरस्वतीनिर्मितं शास्त्रमित्यर्थः तदध्यायिनः शास्त्रपाठिनः इति कविस्रष्टारः कवयश्च ते स्रष्टारश्च कविस्रष्टारः काव्यरचयितार इत्यर्थः आकल्पकालं कल्पपर्यंतं काव्यपुरुषं काव्यरूपपुरुषं रचयंतु सृजंतु ॥ अत्र सारस्वताध्यायिनः इति कथनेन सरस्वतीप्रणीतसूत्र व्याकरणशास्त्रस्य प्राचीनता द्योतिता ॥ ३२ ॥

अर्थ-सरस्वतीके निर्मित शास्त्र जिनके पढनेवाले कविता रचनेवाले कवि दोषोंसे अनर्थकादि पूर्वोक्त दोषोंसे रक्षित और माधुर्यादि गुणोंसे संयुक्त और चित्रादि शब्दालंकारों और उपमादि अर्थालंकारोंसे चित्तमें चमत्कार पैदा करनेवाले और सत्पुरुषोंकी स्फुरित रीतियोंसे निबद्ध और शृंगारादिक उन उन

रसोंसे तन्मयताको प्राप्त हुए ऐसे काव्यरूपी पुरुषको कल्पकाल पर्यंत रचते रहो यहां (सारस्वताध्यायिनः)ऐसा कहनेसे सरस्वती सूत्र संबंधी व्याकरणकी भी प्राचीनता प्रघट होतीहै शुभम्॥३२॥

पूर्त्तिः ।

टीकाकारस्य मे परिचायकाः श्लोकाः।

(श्लो०) रम्ये रैवतपत्तने जनिरभूद् ग्रामाधिपानां कुले मे तातो भुवि लब्धमानविभवः श्रीरामकर्णः सुधीः॥श्रीमद्रामसहायकस्तदनुजो यस्य प्रसादान्मया विद्या कीर्तिविवर्द्धिनी सुकविता प्राप्ता च भक्तिर्हरेः॥१॥ कुशालीरामाख्यः स्फुरकनगरे सत्कविरभूत्सदाचारो निष्ठः सुपथिं मम मातामह इति ॥ तदागारे स्फारे विपुलपरिवारे सुविभवे मया लब्धा धीश्रीभृतिरति विभाकीर्तिधृतयः ॥ २ ॥ शैलाननेशनृपवर्यसमाश्रितेन सद्वैद्यशास्त्रिमुरलीधरशर्मणेयम् ॥ टीका कृता भवतु वाग्भटभूषणस्य साहित्यशास्त्ररसिकेषु विलासरूपा ॥ ३॥ द्विरसांकेन्दुके वर्षे तृतीयाया दिनेऽक्षये ॥ अक्षयानंददा चास्तु टीकेयं पूर्तितां गता ॥ ४ ॥

अर्थ–रमणीक रैवतपत्तन अर्थात् रेवाडी शहरमें ग्रामाधिप (खेडा पतियों) के वंशमें मुझ टीकाकारका जन्म हुवा और पृथ्वीमें बहुत मानरूप विभव प्राप्त करने वाले श्रीपंडित राम कर्णजी मेरे पिता हुए और उनके लघु भ्राता (मेरे चचा) श्री

पं० रामसहायजी हैं जिनके प्रसाद (कृपा) से मुझे विद्या और कीर्तिके बढाने वाली सुंदर कविता तथा परमात्माकी भक्ति प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तथा स्फुरकनगर अर्थात् फर्रुखनगर में पं० कुशालीरामजी अच्छे कवि हुए जो सदाचारी और सन्मार्गमें निष्ठ थे सो मेरे मातामह (नाना) हुए उनके विपुल परिवार और अच्छे विभव युक्त विशाल घरमें मुझको बुद्धि लक्ष्मी भरण पोषण रति (आनंद) विभा (शोभा) कीर्ति (यश) और धृति (सुख अथवा धैर्य) ये सभी प्राप्त हुए ॥ २ ॥ और शैला नन अर्थात् सैलाना राजधानीके अधीश नृपवर्य (हिज हाइनेस श्रीमहाराजाधिराज श्री १०८ श्रीयशवंतसिंहजी धीरवीर जी. सी. आइ. ई. उनके समाश्रित मुझ सद्वैद्य शास्त्री मुरलीधर शर्माने वाग्भटालंकारकी यह टीका बनाई है जो साहित्यशास्त्रके रसिकहैं उनको विलास रूप होवे ॥ ३ ॥ द्वि (२) रस (६) अंक (९) इंदु (१) (अंकानां वामतो गतिके क्रमसे) संवत् १९६२ की अक्षय तृतीयाके दिन (अर्थात् वैशाख शुक्ला तृतीया को) यह टीका संपूर्ण हुई जो अक्षय आनंदकी देने वाली हो ४

इतिश्रीराजवैद्यशास्त्रि पं० मुरलीधरशर्मविरचितायां श्रीवाग्भटालंकारस्य टीकायां पंचमपरिच्छेदः समाप्तः ॥ ५ ॥

समाप्तोयं ग्रंथः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

जाहिरात ।

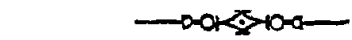

सुश्रुतके सान्वय टीकाकार आयुर्वेद विद्यालय दिल्लीके परीक्षक प्रसिद्ध राजवैद्य पं० मुरलीधर शर्माका आरोग्य सुधाकर ।

"कार्यालय"

इस कार्यालयसे सब प्रकार देशीय औषधें श्रेष्ठ शास्त्रोक्त बनी सस्ती मिलती हैं जैसे–

१–"नयनामृत अंजन" नेत्रोंके अनेक विकार नाशक दृष्टि स्थिर कर्ता व तन्दुरस्तीमें भी लगानेसे गुणकारी १) तोला ।

२–"मूत्रशोधनी सिद्ध शिलाजीत गुटी" मूत्रमें पीप रुधिर शुक्र शर्करा कुछ ही आताहो चीस जलन सुजाक प्रमेह स्त्रियोंके प्रदर सबको जादूकी तरह आराम करती हैं रक्तशोधन कर पाचनशक्ति बढा शरीरको पुष्ट और कांतिमान् करती है ४० गुटी २)

३–ज्वरहरी गुटी अनुमानसे सब ज्वरोंको नष्ट करती है काष्टादि है तौ भी कौनैनसे चढ़कर १०० गुटी १-)

४–धातुपुष्टि चूर्ण सिद्ध सुश्रुतोक्त परम प्रमेहनाशक बलकर्ता पुष्टिकर्ता १० तोला २० मात्रा १॥)

विशेष ।

यदि कोई प्रतिष्ठित महाशय किसी भारी रोगके निदान चिकित्सादिके लिये हमारा कुछदिन आवाहन करना चाहैं तौ वह भी परस्पर पत्र व्यवहारसे निश्चय होसक्ता है ।

शुभचिंतक–

पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्य,

फर्रुखनगर पंजाब.

हमारे रचित पुस्तक ।

१–सुश्रुतसंहिताकी सान्वय सटिप्पणीक सपरिशिष्ट भाषाटीका मूल्य १२)

२–"शरीरपुष्टिविधान" शरीरस्थ पुष्ट करने और रखनेकी विधि मू. ।=)

३–"डाक्टरी चिकित्सा सार" इसमें डाक्टरी मत से और साथही देशीवैद्यकसे हरेक रोगका नाम लक्षण उपायादि लिखाहै संक्षिप्त डाक्टरी निघंटु भी है ॥।)

४–महामारीविवेचन जिसमें प्रचलित महामारी प्लेगके निदान लक्षण उत्पत्तिका कारण यत्न आदि वैद्यकसे लिखाहै ।-)

५–सर्व विषचिकित्सा इसमें स्थावर अफीम संखिये आदि जंगम सर्प विच्छु आदिके विषोंके सहल उपायादि लिखेहैं ॥ =)

६--सत्कुलाचरण इसमें शिक्षा धर्म कुरीतिशोधन व्यापार कृषि शिल्प गृहस्थ स्वास्थ्यरक्षादि ११ विषयहैं यह नये ढंगका एक उत्तम उपन्यास है ॥)

७--वाग्भटालंकारकी यह टीका जिसमें ऊपर मूल फिर अन्वय और संस्कृत टीका फिर सरल हिंदी भाषा टीका है फिर उसी विषयके संक्षिप्त दोहे बना कर लिखेहैं ऐसी उत्तम टीका किसी ग्रंथकी नहीं छपी ।

ये सभी पुस्तकें सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीके श्रीवेंकटेश्वर छापेखाने बंबईसे मिलती हैं ।

निवेदक–

पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्य,

फर्रुखनगर निवासी टीकाकार.

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय
काल नं० 2८१२ सुरत्ना
लेखक शर्मा मुरलीधर
शीर्षक वाग्भटालङ्कार : ७४
खण्ड क्रम संख्या